'हिन्दी ग़ज़ल परम्परा में ग़ज़लकार ज़हीर कुरैशी का स्थान (एक विवेचनात्मक अध्ययन)'

"Hindi Gazal Parampara main Gazalkar Zaheer Qureshi ka sthan (Ek Vivechnatmak Adhyyan)"

शोध प्रबंध

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की पीएच-डी.
उपाधि हेतु प्रस्तुत
हिन्दी
(कला संकाय)

रामावतार मेघवाल

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. मनीषा शर्मा

हिन्दी विभाग, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय,
कोटा - (राज.)

हिन्दी विभाग

जा.दे.ब.राजकीय कन्या महाविद्यालय, कोटा - (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2017

घोषणा - पत्र (शोधार्थी)

मैं घोषणा करता हूँ कि शोध-प्रबंध 'हिन्दी ग़ज़ल परम्परा में ग़ज़लकार ज़हीर कुरैशी का स्थान (एक विवेचनात्मक अध्ययन)' में, जो शोध कार्य मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है, वह पीएच-डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए आवश्यक है। मैंने यह शोध कार्य डॉ. मनीषा शर्मा (हिन्दी विभाग राजकीय कला कन्या महाविद्यालय कोटा) के निर्देशन में पूर्ण किया है। यह मेरा मौलिक कार्य है। मैंने अपने विचारों को अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है और जहां दूसरे विचारों और शब्दों का प्रयोग किया गया है, वह मेरे द्वारा विभिन्न मान्य स्त्रोतों से लिये गये हैं। अपरिहार्य स्थिति में ली गई ऐसी हर सामग्री का यथास्थान संदर्भ एवं आभार व्यक्त कर दिया गया है। जो कार्य इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है, वह कहीं और किसी और डिग्री के लिए किसी भी संस्था में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मैंने विश्वविद्यालय के सभी अकादमिक नियमों का निष्ठा एवं ईमानदारी से पालन किया है तथा किसी तथ्य को गलत प्रस्तुत नहीं किया गया है। मैं समझता हूँ कि किसी भी नियम का उल्लंघन करने पर मेरे खिलाफ प्रशासनिक कार्यवाही की जा सकती है और मेरे खिलाफ जुर्माना भी लगाया जा सकता है। यदि मैंने किसी स्त्रोत से बिना, उसका नाम दर्शाये या जिस स्त्रोत से अनुमति की आवश्यकता हो, बिना अनुमति के लिया हो।

दिनांकः

रामावतार मेघवाल
शोधार्थी

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी रामावतार मेघवाल (RS/1080/13) द्वारा उपर्युक्त सभी सूचनाएं मेरी जानकारी के अनुसार सही है।

दिनांकः

डॉ. मनीषा शर्मा
शोध पर्यवेक्षक

प्रमाण-पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी ग़ज़ल परम्परा में ग़ज़लकार ज़हीर कुरैशी का स्थान (एक विवेचनात्मक अध्ययन)' शोधार्थी रामावतार मेघवाल ने, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के पीएच-डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है:-

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया है।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूर्ण किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी का बताई गई शोध पत्रिका में शोध-पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच-डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देती हूँ।

दिनांकः

डॉ. मनीषा शर्मा
शोध पर्यवेक्षक

पीएच-डी. उपाधि हेतु शोध-प्रबन्ध का अनुमोदन

यह शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी ग़ज़ल परम्परा में ग़ज़लकार ज़हीर कुरैशी का स्थान (एक विवेचनात्मक अध्ययन)' शोधार्थी रामावतार मेघवाल (पंजीयन संख्या RS/1080/13) राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (कोटा विश्वविद्यालय, कोटा) द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसे पीएच-डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए अनुमोदित किया जाता है।

दिनांकः

परीक्षक

.....

.....

.....

शोध पर्यवेक्षक

.....

.....

.....

प्राक्कथन

आज हिन्दी ग़ज़ल साहित्य की एक लोकप्रिय विधा है। तो इसकी लोकप्रियता में श्रीवृद्धि करने वाले ग़ज़लकारों में ज़हीर कुरेशी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ग़ज़ल को हिन्दी विशेषण के साथ प्रयुक्त करने एवं प्रकाशित करने की विगत 45 वर्षों की दृढ़ मानसिकता उन्हें यह स्थान प्रदान करती है। ग़ज़ल के मूल शिल्प को स्वीकार करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा कि, "जब ग़ज़ल की अवधारणा हिन्दी बोली–बानी, हिन्दी मुहावरों में संभव होती है, तो उसे हिन्दी ग़ज़ल कहा जाता है। भाषा के साथ पूरी संस्कृति जुड़ी होती है भाषा बदलने के साथ उसका मुहावरा भी बदलता है।" इसी क्रम में वे आगे कहते हैं कि "यह आपसे किसने कह दिया कि हिन्दी ग़ज़ल केवल भाषिक आधार पर हिन्दी ग़ज़ल से अभिहित की जाती है। हिन्दी भाषा का अपना एक इतिहास है, संस्कृति है, परम्परा है मिथक है उनके आधार पर ही किसी भाषा में शे'र कहना संभव होता है।" इतने स्पष्ट एवं बेबाक रूप से हिन्दी ग़ज़ल की पक्षधरता करने वाले ज़हीर कुरेशी ने 'गीतिका', 'मुक्तिका', 'द्विपदिका', जैसे सुझाये गए नामों से दूर रहकर उन्होंने ग़ज़ल को हिन्दी विशेषण के साथ प्रयुक्त कर यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दी ग़ज़ल, हिन्दी साहित्य की एक सशक्त विधा है और हिन्दी ग़ज़ल को विश्वविद्यालयों के हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रमों में स्थान दिलवाकर उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया हिन्दी ग़ज़ल को लिखने वालों की इतनी बड़ी तादात की अवहेलना अधिक समय तक कर पाना मुश्किल है।

अमीर खुसरो से प्रारम्भ होकर वर्तमान तक पहुँची हिन्दी ग़ज़ल की सुदीर्ध एवं व्यवस्थित परम्परा है। मध्यकाल में यह परम्परा अगर थोड़ी क्षीण दिखलाई पड़ती है तो इसका कारण यही है हमने उस दौर के सभी ग़ज़लकारों को उर्दू ग़ज़लकार मान लिया है। आज मध्यकालीन ग़ज़लों में भारतीयता को तलाशने की महती आवश्यकता है, जिससे हिन्दी ग़ज़ल के क्षीण तंतु स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे। जैसा कि ज़हीर कुरेशी ने भी कहा है कि केवल भाषिक आधार पर किसी ग़ज़ल का उर्दू या हिन्दी मान लेना पर्याप्त नहीं है, किसी भी शे'र या ग़ज़ल की

परख इस आधार पर होनी चाहिए कि वह भाव एवं अर्थ संप्रेषण के लिए किस इतिहास, संस्कृति, परंपरा और मिथकों से जुड़ी है। बहरहाल ये गहरे शोध और श्रम–साधना का कार्य है, आशा है आगामी शोधकर्ता इस दिशा में कार्य करेंगे।

हिन्दी ग़ज़ल परम्परा में ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी का स्थान विषय पर शोधरत होने पूर्व मैंने अपने ग़ज़ल–प्रेम और रूचि के कारण कई पत्र–पत्रिकाओं में ज़हीर कुरेशी को अनवरत छपते हुए देखा। लगभग प्रत्येक माह किसी न किसी पत्रिका या समाचार–पत्र और विशेषांकों में अपना स्थान बनाते चले जा रहे हैं। जब मैंने और गहराई से ज़हीर कुरेशी के बारे में पढ़ा तो यह ज्ञात हुआ कि नवगीत और उर्दू ग़ज़ल में अपार संभावना होते हुए भी उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल का कठिन और कंटकाकीर्ण मार्ग चुना, यह जानते हुए भी कि ग़ज़ल के विद्वान शिल्प और बहर के नाम पर दुष्यंत कुमार को भी खारिज कर चुके हैं। लेकिन दुष्यंत की लोकप्रियता ने उनका पथ–प्रशस्त किया। देश के आम–आदमी की आवाज़ को अपने कहन में ढ़ाल उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल के साहित्य संसार को एक के बाद एक पूरे नौ ग़ज़ल संग्रह पाठकों को सोंपे। समकालीन साहित्य की सभी प्रवृत्तियों से ओत–प्रोत उनकी ग़ज़लें खासो–आम द्वारा सराही गयी। परिणाम स्वरूप आज उनकी ग़ज़लें हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम में पढ़ाई जा रही हैं। आलोचना की व्यक्तिगत पुस्तकें उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर लिखी जा रही है। बार–बार ज़हीर कुरेशी को पढ़ते–पढ़ते मेरा शोधार्थी मन “हिन्दी ग़ज़ल परंपरा में ग़ज़लकार जहीर कुरेशी का स्थान” विषय की ओर प्रवृत हुआ। शोध निर्देशिका डॉ॰ मनीषा शर्मा की स्वीकृति की मोहर जब इस विषय पर लगी तो मेरा विश्वास और दृढ़ होता चला गया। राजकीय महाविद्यालय बारां में मेरे वरिष्ठ साथी रहे डॉ॰ प्रवीण माथुर, डॉ॰ पी॰के॰ शर्मा, डॉ॰ विवेक शंकर, डॉ॰ संदीप सिंह चौहान, प्रो॰विजयराम मीणा, प्रो॰महेन्द्र कुमार मीणा, प्रो॰ रामकेश मीणा ने मेरे उत्साह को कम नहीं होने दिया। राजस्थान की अन्नपूर्णा नगरी बारां के ऊर्जावान साहित्यिक मित्रों श्री प्रद्युम्न वर्मा श्री ब्रजभूषण चतुर्वेदी ‘बृजेश’, श्री श्याम ‘अंकुर’ श्री मयंक सोलंकी, श्री हिसामुद्दीन, ‘रजा’ श्री भैरूलाल भास्कर ने समय–समय पर मेरा मार्गदर्शन कर मुझे सहयोग प्रदान किया। भाई प्रधुम्न जी के साथ तो मुझे भोपाल जाकर ज़हीर कुरेशी जी से मिलने का अवसर भी प्राप्त हुआ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है –

प्रथम अध्याय में ग़ज़ल की परिभाषा, अरबी, फारसी, उर्दू, हिन्दी ग़ज़ल पर चर्चा की गई है। विभिन्न परिभाषाओं के आलोक में ग़ज़ल के संरचना विधान एवं शिल्प पर भी चर्चा की गई है। हिन्दी ग़ज़ल के उद्‌भव, विकास और उसकी परंपरा का विस्तृत परिचय भी इस अध्याय के अन्तर्गत दिया गया है। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल की अवधारणा और प्रमुख ग़ज़लकारों का भी उल्लेख इस अध्याय के अन्तर्गत किया गया है।

द्वितीय अध्याय में हिन्दी ग़ज़ल परंपरा पर विस्तार से चर्चा की गई है। इस अध्याय को दो उपभागों में विभक्त कर हिन्दी परंपरा के ग़ज़ल कारों का विस्तृत परिचय दिया गया है। प्राचीन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा में अमीर खुसरो, कबीर तो आधुनिक हिन्दी परंपरा में भारतेन्दु हरिश्चंद्र से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक के ग़ज़लकारों का परिचय इस अध्याय के अन्तर्गत दिया गया है।

तृतीय अध्याय में ज़हीर कुरेशी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर विस्तृत विवेचन किया गया है। इस अध्याय में ज़हीर कुरेशी के व्यक्तिगत जीवन यथा जन्म, परिवार, शिक्षा–दीक्षा, व्यवसाय, रुचि–अभिरुचि पर विस्तृत चर्चा की गई है। इस अध्याय के अभिव्यक्ति भाग में ज़हीर कुरेशी के रचना संसार की जानकारी विस्तार से प्रस्तुत की गई है। अध्याय के इस भाग में ज़हीर कुरेशी के अब तक प्रकाशित सभी नौ ग़ज़ल संग्रहों और दो संस्मरणात्मक पुस्तकों को सम्मिलित करते हुए उन पर विस्तृत विवेचना की गई है। इस प्रकार इस अध्याय में उनके व्यक्तिगत जीवन से लेकर उनके ग़ज़लकार के रूप में स्थापित होने तक के संघर्ष को विवेचित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय ज़हीर कुरेशी के संवेदनात्मक पक्ष को लेकर लिखा गया है इस अध्याय में ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में अभिव्यक्त विभिन्न आयामों पर विस्तार से अनुशीलन किया गया है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक सरोकारों पर विस्तार से वर्णन किया गया है।

पंचम अध्याय पंचम अध्याय में समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों के विस्तृत विवेचन के साथ–साथ ज़हीर कुरेशी के हिन्दी ग़ज़ल साहित्य की शिल्पगत विशेषताओं को भी सम्मिलित किया गया है। इस अध्याय में ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में प्रतिबिंबित साहित्य के विविध प्रतिमानों का उदाहरण सहित विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय के अन्तर्गत ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों की भाषा, शब्द–प्रयोग, प्रतीक, बिंब, मिथक, मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं अलंकारों का विस्तृत अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

छठे अध्याय के अन्तर्गत ज़हीर कुरेशी का समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न विद्वानों के द्वारा समय–समय पर दिये गये महत्त्वपूर्ण उद्धरणों के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा में ज़हीर कुरेशी का महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय स्थान है।

सप्तम और अन्तिम अध्याय 'उपसंहार' है जिसमें समस्त अध्यायों का निष्कर्ष एवं मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। इस शोध प्रबन्ध के अंत में स्वयं शोधार्थी द्वारा लिया गया ज़हीर कुरेशी का साक्षात्कार भी प्रस्तुत किया गया है जिसमें हिन्दी ग़ज़ल परंपरा के कई महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर समाहित हैं। इस अध्याय के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची प्रस्तुत की गई है।

राजकीय महाविद्यालय कोटा में स्थानान्तरित हो जाने के बाद निश्चित रूप से इस शोधकार्य में गति आई है। यहाँ की हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ॰ कंचना सक्सेना, डॉ॰ विनीता कौशिक, डॉ॰ विवेक शंकर, डॉ॰ लालचंद कहार, डॉ॰ अनिता वर्मा, डॉ॰ आदित्य कुमार गुप्ता, डॉ॰ विवेक कुमार मिश्रा, डॉ॰ शशिप्रभा, डॉ॰ लड्डू लाल मीणा, डॉ॰ यशोदा मेहरा ने भी समय–समय पर मेरा मार्ग–दर्शन एवं उत्साहवर्धन कर इस शोध प्रबन्ध को शीघ्र पूरा करने में सहयोग प्रदान किया। राजकीय महाविद्यालय कोटा के ही वरिष्ठ सहयोगी डॉ॰ विजय कुमार पंचोली, डॉ॰ गीताराम शर्मा, डॉ॰ शिव कुमार मिश्रा, डॉ॰ कामिनी जोशी, डॉ॰ प्रमिला श्रीवास्तव, डॉ॰ एम॰जेड॰ए॰ खान जैसे विद्वतजनों का भी मार्ग दर्शन एवं सहयोग मुझे प्राप्त हुआ जिसका मैं सदैव आभारी रहूँगा। आदरणीय गुरूदेव डॉ॰ एम॰एल॰ साहू, डॉ॰ हेमलता लोया,

एवं डॉ॰ प्रहलाद दुबे ने समय–समय पर यथायोग्य सहयोग मुझे दिया जिसके लिए मैं हृदय से उनको धन्यवाद देता हूँ। इस अवसर पर मैं शोध कार्यावधि में मेरे प्राचार्य रहे सभी विद्वतजनों को भी धन्यवाद देना चाहूँगा जिन्होंने बिना किसी अवरोध के इस शोध कार्य में मुझे पूर्ण सहयोग दिया।

आदरणीय ज़हीर कुरेशी और डॉ॰ मनीषा शर्मा (शोध निर्देशिका) के सहयोग एवं मार्गदर्शन के बिना इस शोध कार्य के पूर्ण होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखन में परपम् आदरणीया डॉ॰ मनीषा शर्मा, व्याख्याता हिन्दी विभाग, जानकी देवी बजाज राजकीय कन्या महाविद्यालय, कोटा का स्नेहिल निर्देशन–मार्गदर्शन निरन्तर मिलता रहा। इस कार्य के आरम्भ से लेकर सम्पन्न होने तक जिस सहृदयता एवं आत्मीयता के साथ समय–समय पर मुझे बहुमूल्य सुझाव देकर इस शोध–प्रबंध को पूरा करने में सहायता की उसके लिए मैं सदैव उनका ऋणी रहूँगा। आदरणीय ज़हीर कुरेशी जी ने भी समय–समय पर प्रत्यक्ष–परोक्ष रुप में मुझे मार्गदर्शन प्रदान कर इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने में मेरी भरपूर सहायता की है। अनुपलब्ध ग़ज़ल संग्रहों की फोटो कॉपी से लेकर नवीन ग़ज़ल संग्रह की प्रति मुझ तक प्रेषित करने की परेशानी का भार वहन कर उन्होंने मेरे इस शोध–प्रबंध के को इसके परिणाम तक पहुँचाने के कार्य को आसान कर दिया। इसके लिए मैं सदैव उनका आभारी रहूँगा। और इस शोध–प्रबंध के कलात्मक एवं त्रुटि रहित मुद्रण कार्य के लिए मैं कम्प्यूटर ऑपरेटर श्री अरविन्द सक्सेना (संचालक–चित्रांश ग्राफिक्स, कोटा –(राजस्थान) मो॰नं॰ 9461420977 एवं 414670257) को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपनी व्यस्तता और व्यक्तिगत कार्यों की मजबूरी के बाद भी अथक सहयोग प्रदान किया उनके सहयोग से ही अपने शोध प्रबंध को इच्छित समय में प्रस्तुत करने में मैं सक्षम हो पाया हूँ। अन्यथा इस शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने में अयन प्रकाशन के भूपाल सूद एवं वरिष्ठ गज़लकार हरे राम समीप, डॉ॰ अनिरूद्ध सिन्हा और हर्षाली हंसराजानी का भी आभारी हूँ उनके द्वारा उपलब्ध करवाये गए संदर्भ ग्रंथों एवं मार्ग दर्शन से यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हुआ है। उनके आत्मिक सहयोग के लिए मैं सदैव उनका ऋणी रहूँगा। मई, 2012 से प्रारंभ हुए इस शोध कार्य को अपनी पूर्ण आहुति तक पहुँचने में लगभग 4–5 वर्षों का लम्बा

समय लगा। पाँच वर्षों में मेरे परिवारजनों स्नेही मित्रों एवं आत्मिक स्वजनों ने भी मेरे हौसले को बनाए रखने में मुझे हमेशा आशीर्वाद प्रदान किया। आप सभी के स्नेहभाव के प्रति मैं नतमस्तक हूँ।

अंत में उन सभी प्राध्यापकगणों, मित्रों, सहयोगियों जिन्होंने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में मुझे सहयोग प्रदान किया, मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

रामावतार मेघवाल

हिन्दी ग़ज़ल परंपरा में ग़ज़लकार ज़हीर dj;'kh का स्थान

अनुक्रमणिका

अध्याय	शीर्षक	पृष्ठ क्रमांक
अध्याय प्रथम	ग़ज़ल : उद्‌भव एवं विकास	01 – 24
अध्याय द्वितीय	हिन्दी ग़ज़ल परम्परा और विकास	25 – 56
अध्याय तृतीय	ज़हीर कुरेशी : व्यक्ति और अभिव्यक्ति	57 – 84
अध्याय चतुर्थ	ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में संवेदनाओं के विविध आयाम	85 – 135
अध्याय पंचम	समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार और ज़हीर कुरेशी	136 – 198
अध्याय षष्टम	ज़हीर कुरेशी का समग्र मूल्यांकन	199 – 219
अध्याय सप्तम	उपसंहार	220 – 230
परिशिष्ट –	(अ) संदर्भ–ग्रंथ सूची	231 – 238
	(ब) ज़हीर कुरेशी से साक्षात्कार	239 – 246

विषयानुक्रमणिका

अध्याय प्रथम : ग़ज़ल का उद्‌भव एवं विकास

1.1 ग़ज़ल – एक सामान्य परिचय

1.1.1 ग़ज़ल का अर्थ

1.1.2 ग़ज़ल की परिभाषाएँ

1.1.3 ग़ज़ल का संरचनात्मक स्वरुप

1.1.4 ग़ज़ल का शिल्प

1.1.4.1 ग़ज़ल के अंग

1.1.4.2 ग़ज़ल की भाषा

1.1.4.3 छंद विधान

1.1.4.4 अलंकार विधान

1.1.4.5 रस–योजना

1.1.4.6 बिंब एवं प्रतीक

1.1.4.7 गेयता

1.1.5 ग़ज़ल के प्रकार

1.1.5.1 मुकम्मल ग़ज़ल

1.1.5.2 बेमतला ग़ज़ल

1.1.5.3 बेमकता ग़ज़ल

1.1.5.4 कतायुक्त ग़ज़ल

1.1.5.5 मुसलसल ग़ज़ल

1.2 अरबी, फारसी एवं उर्दू ग़ज़ल

1.3 हिन्दी ग़ज़ल का उद्‌भव एवं विकास

1.4 समकालीन हिन्दी ग़ज़ल

अध्याय द्वितीय : हिन्दी ग़ज़ल परम्परा का परिचय

2.1 प्राचीनकालीन हिन्दी ग़ज़लकार

2.1.1 अमीर खुसरो

2.1.2 कबीर

2.1.3 गिरधर राय

2.1.4 प्यारे लाल शौकी

2.2 अर्वाचीन हिन्दी ग़ज़लकार

2.2.1 भारतेन्दु युगीन ग़ज़लकार

2.2.2 द्विवेदी युगीन ग़ज़लकार

2.2.3 छायावादी युगीन ग़ज़लकार

2.2.4 उत्तर छायायवादी युगीन ग़ज़लकार

2.2.5 स्वातंत्र्योत्तर ग़ज़लकार

अध्याय तृतीय : ज़हीर कुरेशी : व्यक्ति और अभिव्यक्ति

3.1 जीवन परिचय

3.1.1. जन्म

3.1.2. परिवारिक परिचय

3.1.3. शिक्षा–दीक्षा

3.1.4. व्यवसाय

3.1.5. व्यक्तित्व के विविध पक्ष –

1. कवि के रूप में

2. ग़ज़लकार के रूप में

3.1.6. रूचि–अभिरूचि

3.1.7. वैचारिक पृष्ठभूमि

3.2 अभिव्यक्ति – मुख्य ग़ज़ल कृतियाँ

3.2.1 लेखनी के स्वप्न (1975 ई॰)

3.2.2 एक टुकड़ा धूप (1979 ई॰)

3.2.3 चाँदनी का दुःख (1986 ई॰)

3.2.4 समन्दर ब्याहने आया नहीं है (1992 ई॰)

3.2.5 भीड़ में सबसे अलग (2003 ई॰)

3.2.6 पेड़ तनकर भी नहीं टूटा (2010 ई॰)

3.2.7 बोलता है बीज भी (2013 ई॰)

3.2.8 निकला ना दिग्विजय को सिकन्दर (2016 ई॰)

3.2.9 रास्तों से रास्ते निकले (2017 ई॰)

3.2.10 अन्य कृतियाँ

अध्याय चतुर्थ : ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में संवेदनाओं के विविध आयाम

4.1 सामाजिक सरोकार

4.1.1. युगीन सामाजिक परिवेश

4.1.2. मानवीय मूल्यों का पतन

4.1.3. महानगरीय जीवन

4.1.4. स्त्री विमर्श

4.1.5. वर्ग–चेतना

4.1.6. आम आदमी का दुखः दर्द

4.2. राजनीति सरोकार

4.2.1. युगीन राजनैतिक परिवेश

4.2.2. भारतीय लोकतंत्र

4.2.3. राजनीतिक विसंगतियाँ

4.2.4. चुनाव

4.2.5. प्रशासनिक विसंगतियाँ

4.2.6. दिशाहीन राजनीति

4.2.7. स्वार्थी राजनीतिज्ञ

4.2.8. दलगत राजनीति

4.2.9. भ्रष्टाचार

4.3 आर्थिक सरोकार

4.4. सांस्कृतिक सरोकार

4.4.1. धर्म

4.4.2. प्रेम

4.4.3. संस्कृति

4.4.4. रिश्ते–नाते–परिवार

4.4.5. प्रकृति–पर्यावरण

अध्याय पंचम – समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार और ज़हीर कुरेशी

5.1 समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार

5.1.1 दुष्यन्त कुमार

5.1.2 गोपालदास 'नीरज'

5.1.3 बालस्वरूप 'राही'

5.1.4 श्रीराम 'शलभ'

5.1.5 रामावतार त्यागी

5.1.6 सूर्यभानु गुप्त

5.1.7 डॉ॰ कुँअर 'बेचैन'

5.1.8 चंद्रसेन 'विराट'

5.1.9 पुरुषोत्तम 'प्रतीक'

5.1.10 भवानी शंकर

5.1.11 डॉ॰ शेरजंग गर्ग

5.1.12 अदम 'गोंडवी'

5.1.13 राम कुमार 'कृषक'

5.1.14 रामदरश मिश्र

5.1.15 ज्ञानप्रकाश 'विवेक'

5.1.16 डॉ॰ गिरिराज शरण अग्रवाल

5.1.17 डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना

5.1.18 डॉ॰ उर्मिलेश

5.1.19 बेकल 'उत्साही'

5.1.20 औंकार गुलशन

5.1.21 तारादत्त 'निर्विरोध'

5.1.22 अंजना संधीर

5.1.23 आचार्य सारथी 'रूमी'

5.1.24 राजकुमारी रश्मि

5.1.25 हस्तीमल 'हस्ती'

5.1.26 डॉ॰ धनंजय सिंह

5.1.27 अशोक 'अंजुम'

5.1.28 विज्ञान व्रत

5.1.29 नूर मोहम्मद 'नूर'

5.1.30 राजेश रेड्डी

5.1.31 लक्ष्मीशंकर वाजपेयी

5.1.32 हरेराम 'समीप'

5.1.33 डॉ॰ हनुमंत नायडू

5.1.34 डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष'

5.1.35 डॉ॰ विनय मिश्र

5.1.36 डॉ॰ दिनेश सिंदल

5.1.37 डॉ॰ आलोक श्रीवास्तव

5.1.38 अशोक रावत

5.1.39 डॉ॰ कुमार विनोद

5.1.40 ज़हीर कुरेशी

5.2 जहीर कुरेशी और उनका शिल्प–विधान :

5.2.1 ग़ज़ल के अंग

5.2.2 छंद–विधान

5.2.3 ग़ज़ल की भाषा

5.2.4 बिंब–विधान

5.2.5 प्रतीक–विधान

5.2.6 मिथक

5.2.7 अलंकार योजना

5.2.8 व्यंग्यात्मकता

अध्याय षष्टम – ज़हीर कुरेशी का समग्र मूल्यांकन

अध्याय सप्तम – उपसंहार

परिशिष्ट – (अ) संदर्भ–ग्रंथ सूची

(ब) ज़हीर कुरेशी से साक्षात्कार

अध्याय प्रथम

अध्याय – प्रथम
ग़ज़ल का उद्‌भव एवं विकास

मानव आदिकाल से ही अपने सुख–दुःख की अभिव्यक्ति किसी न किसी माध्यम से प्रकट करता रहा है। गीत–संगीत और मनोरंजन के अनेकानेक साधन अपने भावोद्रेकों एवं संवेदनाओं को प्रकट करने के लिए तलाश किये। गीत मानव–मन की सहज अभिव्यक्ति है। सुख हो, चाहे दुःख संवेदनशील ह्रदय गा उठता है। अभिव्यक्ति के अनेक साधनों में कभी लोक–कला, कभी चित्रकला, तो कभी काव्य–कला के माध्यम से यह अनवरत् प्रकट होती रहती है। जब यह अभिव्यक्ति काव्य–कला के माध्यम से प्रकट होती है तो कविता, छंदबद्ध पद, प्रबन्ध काव्य आदि पद्य में तो कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत्, जीवनी, आत्मकथा आदि गद्य में इसके माध्यम बनते हैं। देश–प्रदेश एवं परिवेश के आधार पर इनके नाम व स्वरूप परिवर्तित होते रहते हैं। भारतीय परिवेश में काव्य–कला के माध्यम से अभिव्यक्ति की बात करें तो आज साहित्यकार छंद मुक्त कविता, गीत, नवगीत, ग़ज़ल, हाईकू आदि विधाओं में रचनाएँ कर रहे हैं। इन सब में भी ग़ज़ल अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनकर सामनें आई है। "गागर में सागर" भरने की अपनी क्षमताओं के कारण ग़ज़ल आज सफलता के नित–नये आयाम स्थापित कर रही है। ग़ज़ल संकलनों के प्रकाशनों एवं पत्र–पत्रिकाओं में ग़ज़ल विशेषांकों की बाढ़–सी आई हुई हैं। समकालीन भारतीय साहित्य में ग़ज़ल के प्रति जो आकर्षण है, वो स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। यह ग़ज़ल का जादू ही है, जिसने कमोबेश सभी रचनाकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।

1.1 ग़ज़ल : एक सामान्य परिचय

1.1.1 ग़ज़ल का अर्थ

यह सर्वविदित है कि ग़ज़ल अरबी से फारसी, फारसी से उर्दू, और उर्दू से अन्य भारतीय भाषाओं के साथ–साथ हिन्दी में भी आई। कहा जाता है कि "ग़ज़ल" अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है – प्रेमिका से वार्तालाप। यह भी प्रचलित है कि "ग़ज़ल" मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका कोशीय अर्थ होता है – कातना, बुनना। यह भी कहा गया है कि "ग़ज़ल" फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है – मृगनयनी।[1] यह भी माना जाता है कि ग़ज़ल शब्द की व्युत्पत्ति "मुगाझेलत"

या "तेगझसु" शब्द से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है – अविवाहित युवा स्त्री के संग संवनन करना या प्रेमालाप करना होता है।[2] यह बात भी मशहूर है कि "वाजनान गुफ्तगुँ करदन" अर्थात "औरतों से बातचीत"।[3] अंग्रेजी में भी यह कहा गया है "The conversation with Woman"।[4] निशांत ओड्स के अनुसार "The word Ghazal comes from Mugzhalat, to make Love।" जिसका सार यह है कि ग़ज़ल शब्द का अर्थ है – औरत से प्यार भरी बातचीत।[5] एक किंवदंती के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि अरब देश में ग़ज़ल का नाम एक व्यक्ति था जो युद्ध में थके–मांदे लोगों को मनोरंजन के लिए रात भर हुस्न और इश्क से सराबोर कविताएँ सुनाया करता था। कालांतर में उसी व्यक्ति के नाम पर उसकी काव्य शैली 'ग़ज़ल' के नाम से प्रसिद्ध हुई। अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जिस कविता में औरतों से प्यार भरी बात हो या हुस्नों–इश्क की बात हो लोग उसे ग़ज़ल कहते हैं; उसमें दर्दे–जुदाई, साकी–पैमाना, गुलो–बुलबुल, सागरो–मीना आदि का जिक्र समय–समय पर परिस्थिति अनुसार होता है।

1.1.2 ग़ज़ल की परिभाषाएँ

ग़ज़ल की संरचनात्मक चर्चा करने से पूर्व विभिन्न परिभाषाओं के आलोक में ग़ज़ल पर दृष्टिपाँत करना भी यहाँ समीचीन होगा।

(1) हिन्दी शब्दकोष में ग़ज़ल की परिभाषा देते हुए स्पष्ट किया गया है कि ग़ज़ल "ग़ज़ल (अ.स्त्री) प्रेमिका से वार्तालाप, उर्दू कविता का एक प्रकार"।[6]

(2) महंमद मुस्तुफा खां "मदाह" द्वारा सम्पादित उर्दू–हिन्दी शब्दकोश में ग़ज़ल की परिभाषा इस प्रकार दी गई है। "ग़ज़ल स्त्री या प्रेमिका से वार्तालाप, उर्दू–फारसी कविता का एक प्रकार का विशेष, जिसमें प्रायः 5 से 11 शे'र होते हैं और पहला शे'र 'मतला' कहलाता है, जिसके दोनों मिसरे (पंक्तियाँ) सानुप्रास होते हैं और अंतिम शे'र 'मकता' कहलाता है, जिसमें शायर का उपनाम (तखल्लुस) आता है। ग़ज़ल के संग्रह को दीवान एवं सम्पूर्ण प्रकार के पद्य–संग्रह को 'बेयाज' कहते हैं।[7]

(3) रामदेव वर्मा द्वारा सम्पादित देवनागरी–उर्दू–हिन्दी कोश में 'ग़ज़ल' शब्द की परिभाषा देते हुए लिखा है– "ग़ज़ल (स्त्री–अरबी) फारसी और उर्दू में एक प्रकार की कविता है जिसमें एक वजन और काफिये के अनेक शे'र होते हैं और प्रत्येक शे'र का विषय प्रायः एक–दूसरे से स्वतंत्र होता है।[8]

(4) डॉ॰ कुँवर बेचैन लिखते हैं – सामान्यतः विभिन्न काफ़ियों से सुसज्जित एक ही वज़न तथा एक ही 'बहर' में लिखे गये अलग–अलग शे'रों के उस समूह को ग़ज़ल कहते हैं जो जीवनानुभवों को प्रतीकात्मक शैली में स्वयं समाए रखती है।[9]

(5) चंद्रसेन विराट – मेरी नज़र में ग़ज़ल एक ऐसी छंदोबद्ध काव्य रचना है जिसमें कवि को हर शे'र में विभिन्न कथ्य प्रतिपादित करने की छूट है तथापि सम्पूर्ण काव्य रचना में एक विशिष्ठ छंद विधान का अनुशासन पालित है एवं एक सांस्कृतिक, भावमयी, संप्रेषणयुक्त, रससिक्त भावव्यंजना अनुस्युत है।[10]

(6) ज़हीर कुरेशी – मेरी नज़र में 'ग़ज़ल' एक ऐसी काव्य विधा है जिसमें अनेक विषयों पर टुकड़े–टुकड़े बातचीत की जाती है। जिसका हर शे'र अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है और हर स्वतंत्र शे'र में एक स्वतंत्र चिंतन प्रक्रिया होती है।[11]

(7) आचार्य सारथी – ग़ज़ल कम शब्दों में 'प्रतीकों' के माध्यम से अपनी बात कहने की कला का पर्याय है ..... जीवन के जितने चित्र जितने पक्ष और जितने रंग हो सकते हैं ग़ज़ल में वे सब सिमट सकते हैं। इनमें व्यवस्था विरोध और परिस्थितियों में बदलाव की बेचैनी को अलग से जताने की ज़रूरत नहीं है।[12]

(8) Crown & Milton ने A dictionary of Morden Arabic Writer में ग़ज़ल के सम्बन्ध में अपना मत देते हुए लिखा है कि To flirt with woman, to eulogize in verses. [13]

(9) 'भारतीय साहित्य कोश' में डॉ॰ नगेन्द्र ने ग़ज़ल के लक्षणों को रेखांकित करते हुए उसकी व्याख्या इस प्रकार की है – "यह प्रायः प्रत्येक शे'र में लिखी जाती है, इसकी दो पंक्तियाँ परस्पर तुकारांत होती हैं। दो पंक्तियों के इस प्रथम शे'र को 'मतला' कहा जाता है। इस प्रकार के अनेक 'मत्लअ' भी किसी ग़ज़ल में संभव है। ग़ज़ल के शेष शे'रों (पदों') में केवल द्वितीय पंक्तियाँ ही आद्योपांत परस्पर तुकांत होती हैं। इसके आखिरी शे'र (पद) को 'मकता' कहा जाता है। इसी 'मकता' में कवि अपना उपनाम प्रयुक्त करता है।[14]

(10) इसी प्रकार पं. महादेव प्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित 'भारतीय साहित्य कोश' में ग़ज़ल पर चर्चा करते हुए लिखा गया है "ग़ज़ल एक पद्य प्रकार है। यह अरबी मूल का है, जो अरबी से फारसी और फारसी से उर्दू में आया। उर्दू से मराठी में आया। यह एक गणनात्मक वृत्त है इसमें तीन की जगह चार अक्षरों का गण माना जाता है। इसके भी अनेक प्रकार हैं जो मात्राओं और लय के आधार पर एक दूसरे से भिन्न हैं। चार, पाँच, छः सात और आठ आवृतों वाले वृत्त भी होते हैं। उसी के अनुसार ग़ज़लों को दीपचंदी, तेवरा, दादरा, झंपताल और केरवा जैसे तालों में गाया जाता है। गवैये मात्राओं को जोड़कर कव्वालियों में भी गा लेते हैं। कव्वाली केरवा ताल की ही एक विशेष शैली है।[15]

1.1.3 ग़ज़ल का संरचनात्मक स्वरुप

डॉ॰ नरेश 'निसार' अपनी पुस्तक "हिन्दी ग़ज़ल : दशा और दिशा" में ग़ज़ल के स्वरूप पर चर्चा करते हुए लिखा है कि ग़ज़ल के संरचनात्मक स्वरूप के निर्धारण में निम्नलिखित बिन्दु सहायक सिद्ध होंगें –

(1) ग़ज़ल विभिन्न शे'रों की एक निश्चित योजना होती है।

(2) ग़ज़ल का प्रत्येक शे'र कथावस्तु की दृष्टि से स्वतंत्र इकाई होता है।

(3) ग़ज़ल के किसी भी शे'र की कथावस्तु का प्रसार ऐसा नहीं होना चाहिए कि शे'र के अर्थ को जानने के लिए उसके पूर्व या बाद के शे'र की सहायता लेनी पड़े।

(4) ग़ज़ल के शे'रों को काफिया और रदीफ के नियमानुसार रचा जाना आवश्यक है।

(5) ग़ज़ल के शे'रों का एक ही लय खण्ड (बहर–वज़न) में रचा जाना अनिवार्य है।

(6) ग़ज़ल का प्रारम्भ 'मतले' से होना चाहिए।

(7) ग़ज़ल का अंत 'मकते' से किया जाना चाहिए।[16]

उपर्युक्त दी हुई विभिन्न परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ग़ज़ल अरबी–फारसी मूल की काव्य विधा है, जिसमें शेरों के माध्यम से अपनी बात कही जाती है। शेर दो पंक्तियों (मिसरों) में संगठित रहता है। ग़ज़ल का पहला शेर जिसकी दोनों पंक्तियाँ समान तुकान्त होती है को 'मतला' कहते हैं। इसी प्रकार ग़ज़ल का अंतिम शेर 'मकता' कहलाता है, जिसमें शायर अपने उपनाम या तख़ल्लुस का प्रयोग करते हैं। प्रत्येक शेर में काफ़िये और रदीफ के नियम का पालन किया जाता है।

उपर्युक्त अध्ययन के आलोक में देखें तो ग़ज़ल के संरचनात्मक तत्वों में निम्नलिखित रूप प्रमुखतः सामने आते हैं।

(1) शे'र – शेर वह काव्य रूप है जिसमें कवि ने काफिये की बंदिश में रहकर निश्चयपूर्वक "बहर–वज़न" में अपने भाव को प्रकट किया गया हो। शे'र के तीन प्रमुख अंग होते हैं –काफिया, लय तथा निश्चय'। ग़ज़ल शे'रों से बनती है। ग़ज़ल का पहला शे'र "मतला" कहा जाता है। मतले का अर्थ है – उदय स्थल अर्थात जहाँ से ग़ज़ल का उदय होता है। मतले के दोनों मिसरों (पंक्तियों) की तुक समान होती है। एक से अधिक समान तुक वाले मिसरों को हुस्न–ए–मतला (मतला–ए–सानी) कहा जाता है। ग़ज़ल का अन्तिम शे'र मकता कहा जाता है। जिसमें शायर प्रायः अपने नाम या उपनाम (तखल्लुस) का प्रयोग करते हैं। हिन्दी में बिना उपनाम के भी 'मकता' देखे जा सकते हैं। 'मतले' से 'मकते' तक ग़ज़ल में शे'र होते हैं। ग़ज़ल में शे'रों की कोई पाबंदी नहीं है। प्रायः ग़ज़ल के शे'रों की संख्या विषम मात्रा में देखने को मिलती है। जैसे – अनुस्वार, सात, नौ, ग्यारह .....

(2) काफिया – काफिया शे'र में रदीफ से पहले आने वाला वह शब्द है, जिसका अंतिम एक (या एकाधिक) अक्षर स्थायी होता है और उसमें पहले का अक्षर परिवर्तित होता है। काफिये के बाद जो भी अक्षर समूह शब्द या शब्द–समूह स्थायी रूप से आता है, उसे रदीफ कहते हैं।

(3) लय या बहर – शे'र का दूसरा महत्वपूर्ण भाग लय है, जिसे बहर भी कहा जाता है। हर बहर का एक निश्चित वज़न होता है। ग़ज़ल के शे'रों के दोनों मिसरों में समान वज़न होना आवश्यक है ; इसके अभाव में ग़ज़ल अपनी लय खो देती है।

(4) निश्चय – शे'र का अनिवार्य तत्व निश्चय है। काफिया तथा लय के होने पर भी कोई शे'र तब तक शे'र नहीं कहा जा सकता जब तक उसमें वर्णित विषय अर्थपूर्ण न हो।

1.1.4 ग़ज़ल का शिल्प

साहित्य की प्रत्येक विधा का अपना एक स्वरुप होता है, जिससे उसकी एक अलग पहचान बनती है। अतः ग़ज़ल का भी अपना एक शिल्प विधान है। जिसके अनुसार ग़ज़ल की पहचान की जा सकती है। ग़ज़ल के शिल्प–विधान के अर्न्तगत ग़ज़ल के अंग, ग़ज़ल की भाषा, अलंकार विधान, रस योजना, बिंब एवं प्रतीक, छंद, गेयता आदि आते हैं।

1.1.4.1 ग़ज़ल के अंग : ग़ज़ल के प्रमुख अंग हैं – शेर, काफिया, रदीफ, मतला एवं मतला है जिनके विषय में हमने पूर्व में ही 'ग़ज़ल के संरचनात्मक स्वरुप' में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली है।

1.1.4.2 ग़ज़ल की भाषा : भाषा विचारों एवं भावों की वाहक होती है। ग़ज़ल की प्रभावोत्पादक क्षमता भाषा पर ही अधिक निर्भर करती है। ग़ज़ल की भाषा में सम्प्रेषणीयता का भी विशेष महत्त्व होता है। ग़ज़लकार को कम से कम शब्दों में अपने

विचार अभिव्यक्त करने होते हैं। ग़ज़ल के लिए भाषा में सरलता, सहजता एवं सरसता का गुण आवश्यक है। ग़ज़ल नाजुक भावों की अभिव्यक्ति है इसलिए भारी भरकम तथा क्लिष्ट शब्द इसके उपयुक्त नहीं है। ग़ज़ल की भाषा मुहावरेदार एवं कहावतों से युक्त होनी चाहिए जिससे ग़ज़ल में कसावट एवं रोचकता का गुण आ सके। उदाहरणार्थ –

"लड़ते–लड़ते भी हारे नहीं
युद्ध बिन भी गुजारे नहीं
मैंने चखकर बताए हैं यार
आपके अश्रु खारे नहीं
ये गरीबों का आक्रोश है
ये किसी दल के नारे नहीं"

1.1.4.3 छंद विधान : जिस प्रकार हिन्दी के छंद–बद्ध काव्य में विभिन्न मात्रिक एवं शाब्दिक छंदों का प्रयोग किया जाता है। उसी प्रकार ग़ज़लों के लिए भी विभिन्न बहरें (छंद) सुनिश्चित की गयी हैं। इन्हें लय–खंड कहते हैं।) बहर में वर्ण, मात्रा, लय, गति एवं यति का ध्यान रखा जाता है। बहर को समझने के लिए 'अरकान' (गण) होते हैं। ये अरकान निम्न प्रकार से हैं –

क्रम सं.	अरकान	वज़न
1.	फाइलातुन	21211
2.	फाइलुन	2111
3.	मुफाईलुन	12111
4.	मफऊलान	11221
5.	फऊलुन	1211
6.	फेलुन	211

क्रम सं.	अरकान	वज़न
7.	मुस्तफेलुन	11211
8.	मुतफाइलुन	112111
9.	फाइलात	2121

इन अरकानों की निर्धारित आवृत्तियों एवं निश्चित संयोग से विभिन्न बहरों का निर्माण होता है। उर्दू–फारसी छंद–शास्त्र में लगभग 37 बहरों का उल्लेख मिलता है इनमें से निम्नलिखित 12 बहरें लोकप्रिय एवं प्रचलित हैं।

1. बहरे हज़ज
2. बहरे रज़ज
3. बहरे रमल
4. बहरे कामिल
5. बहरे मुतकारिब
6. बहरे मुतदारित
7. बहरे मुजारिअ
8. बहरे मुक्तजिब
9. बहरे मुजतस
10. बहरे सरीअ
11. बहरे मुसरह
12. बहरे खफीफ

हिन्दी ग़ज़लकारों को भी उर्दू–फारसी छंद–शास्त्र में वर्णित बहरों को ही अपनाना चाहिए। ज़हीर कुरेशी का तो स्पष्ट मानना है कि हिन्दी में ग़ज़ल लिखने के लिए अरबी–फारसी के छंद–शास्त्र को अपनाकर हम हिन्दी ग़ज़ल विधा का भला कर सकते हैं।

1.1.4.4 अलंकार विधान : अलंकार काव्य के सौंदर्य में अभिवृद्धि करते हैं। यद्यपि ग़ज़लकारों का स्वाभाविक आग्रह अलंकारों के प्रति इतना अधिक नहीं रहा लेकिन फिर भी ग़ज़ल लेखन में अलंकारों का समावेश हो ही जाता है। हिन्दी ग़ज़लकारों ने भी स्वाभाविक रुप से अनुप्रास, यमक, श्लेष, रूपक, उपमा, अतिश्योक्ति, विरोधाभास, मानवीकरण, पुनरुक्ति आदि अलंकारों का विशेष प्रयोग दिखाई देता है।

1.1.4.5 रस–योजना : भारतीय साहित्यशास्त्र में रस को काव्य की आत्मा माना गया है। इस के अभाव में काव्य नीरस प्रतीत होता है। अतः रसहीन कविता श्रोता एवं पाठक को प्रभावित नहीं कर पाती। ग़ज़ल पाठक या श्रोता को प्रभावित कर उनके हृदय में उतर जाने की क्षमता रखती है, क्योंकि ग़ज़ल में रसानुभूति कराने का सामर्थ्य विद्यमान है। उर्दू–फारसी ग़ज़ल साहित्य सुरा–सुंदरी एवं प्रेम से परिपूर्ण होने के कारण श्रृंगार रस से ओत–प्रोत है। हिन्दी ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल को यथार्थवादी स्वर प्रदान कर उसे जन–चेतना से जोड़ने का प्रयत्न किया। इसलिए हिन्दी ग़ज़लों में रस–निरुपण कम ही दिखलाई पड़ता है लेकिन जहाँ भी उन्हें अवकाश मिला वे हिन्दी ग़ज़ल को रससिक्त करने में पीछे नहीं रहे।

1.1.4.6 बिंब एवं प्रतीक : बिंब एवं प्रतीक भी काव्य के महत्त्वपूर्ण तत्व हैं। बिंब का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'इमेज' (IMAGE) है, जिसका अर्थ होता है – किसी पदार्थ को मूर्त बनाना। बिंब के कारण मानसिक प्रत्यक्षीकरण एवं प्रभावात्मकता का निर्माण होता है। इसलिए ग़ज़ल में इनका विशेष स्थान है। बिंब ग़ज़ल को सजीव एवं उत्कृष्ट बनाते हैं अतः ग़ज़ल लेखन में बिंब विधान अत्यंत आवश्यक है।

काव्यात्मक अभिव्यक्ति में प्रतीकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है ग़ज़ल में भी प्रतीक विधान का अनिवार्यता है क्योंकि इसमें कम से कम शब्दों में गहन–गंभीर भावों को भी आसानी से अभिव्यक्त किया जा सकती है। जहाँ तक उर्दू–फारसी ग़ज़लकारों का प्रश्न है उन्होंने गुल, चमन, गुलशन, बहार, पतझड़, बिजली, मय, मयखाना, मीना आदि प्रतीकों का प्रयोग अपनी ग़ज़लों में किया है। हिन्दी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों के लिए प्रतीक भी भारतीय परिवेश से संबंधित, पौराणिक एवं यहाँ के लोक–जीवन में ही तलाश किये। इसीलिए हिन्दी ग़ज़ल की अवधारणा को बल मिला।

1.1.4.7 गेयता : ग़ज़ल एक छंदबद्ध रचना है, जिसमें लय, गति और ताल का समावेश भी होता है। इसी कारण यह गेय भी है। ग़ज़ल को तरन्नुम में पढ़ा जाता है।

1.1.5 ग़ज़ल के प्रकार : ग़ज़ल के निम्नलिखित प्रकार होते हैं –

1.1.5.1 मुकम्मल ग़ज़ल : मुकम्मल ग़ज़ल उस ग़ज़ल को कहते हैं जो मतले से शुरू होकर मक्ते पर मुकम्मिल होती है। जिसका प्रत्येक शे'र एक ही बहर वज़न में रचा गया हो तथा जो काफ़िये और रदीफ से पाबंद हो।

1.1.5.2 बेमतला ग़ज़ल : ग़ज़ल की प्रथम दो पंक्तियों को, जिसमें दोनों पंक्तियों में समान तुक (रदीफ) होती है 'मतला' कहा जाता है। कभी कभी ग़ज़लकार ग़ज़ल के इस नियम का पालन नहीं करते और प्रथम दो पंक्तियों में भी अन्य शेरों की तरह ही दूसरी पंक्ति तुकांत होती है। ऐसी ग़ज़ल को 'बेमतला ग़ज़ल' कहा जाता है। अर्थात् जिसमें मतले के नियम का पालन न किया गया हो।

1.1.5.3 बेमकता ग़ज़ल : ग़ज़ल के अंतिम शेर में शायर/ग़ज़लकार अपने उपनाम या तखल्लुस का प्रयोग करते हैं। अगर किसी ग़ज़ल के अंतिम शेर में शायर ने अपने उपनाम या तखल्लुस का प्रयोग नहीं किया है तो ऐसी ग़ज़ल को 'बेमकता ग़ज़ल' कहा जाता है।

1.1.5.4 कतायुक्त ग़ज़ल : ग़ज़ल का प्रत्येक शेर स्वतंत्र इकाई होता है लेकिन कोई शायर किसी शे'र को स्वतंत्र इकाई रखने में असमर्थ होता है और अपनी बात को एक शे'र में नहीं रख पाता तो वह दो या अधिक शेरों में अपनी बात को व्यक्त करता है। ऐसी स्थिति में शेर की विषयगत इकाई भी तय नहीं होती और उक्त सभी शे'रों को संयुक्त रूप से इकाई माना जाता है। ऐसे शे'रों को एकत्र कर उन्हें कता शीर्षक दिया जाता है और ऐसी ग़ज़ल को कतायुक्त ग़ज़ल कहते हैं।

1.1.5.5 मुसलसल ग़ज़ल : जिस ग़ज़ल में आरम्भ से लेकर अंत तक एक ही विषय का प्रतिपादन किया जाता है उसे मुसलसल ग़ज़ल कहते हैं।

1.2 अरबी, फारसी, एवं उर्दू ग़ज़ल –

ग़ज़ल जिस प्रकार से अरबी से फारसी और फारसी से उर्दू में आई उसी प्रकार वह अन्य भारतीय भाषाओं के साथ–साथ हिन्दी में भी आई। वर्तमान में ग़ज़ल सर्वप्रिय विधा है और सभी साहित्यकार ग़ज़ल के फॉर्म में अपनी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करना चाहते हैं। हिन्दी ग़ज़ल के उद्‌भव और विकास को पढ़ने से पूर्व यह भूलना गलत होगा कि ग़ज़ल का जन्म अरब में हुआ और ये मूलतः अरबी काव्य की एक विधा है। प्रारम्भ में अरबी भाषा में जो ग़ज़लें कही गई उनके कथ्य के सामने रखकर इस विधा का ऐसा नामकरण हुआ। ऐसा माना जाता है कि भले ही ग़ज़ल का जन्म अरब में हुआ हो लेकिन अरबी भाषा में ग़ज़ल कहने कि परम्परा

ज्यादा नहीं मिलती। फारसी में आकर ग़ज़ल कहने की विधिवत् परम्परा दिखलाई पड़ती है। फारसी ग़ज़लकारों ने अरबी ग़ज़ल का शिल्पगत तो पूर्णतः पालन किया लेकिन विषयवस्तु की दृष्टि से उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। अरबी ग़ज़लों का दैहिक एवं भौतिक प्रेम फारसी में आकर पारलौकिक एवं आध्यात्मिक प्रेम में परिणत हो गया। इसका एक कारण तो यह था कि ग़ज़ल फारसी में आकर सूफी काव्य की सर्वप्रिय विधा बन गई। अरबी भाषा की 'इश्के-मिजाजी' फारसी में आकर 'इश्के-हकीकी' बन गयी। ग़ज़ल के मिजाज में जो मस्तानापन और दीवानापन पाया जाता है उसका बड़ा कारण गजल पर 'सूफीज्म' का प्रभाव ही है।

ग़ज़ल विधा का जन्म दसवीं शताब्दी में ईरान के रोंदकी नामक अंध कवि से माना जाता है। रोंदकी के बाद दकीकी, वाहिदी, निजामी, कमाल, बेदिल, फौजी, शेखसादी, अमीर खुसरो, हाफ़िज शीराजी ने ग़ज़ल विधा को समृद्ध किया। इस प्रकार दसवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ ग़ज़ल का सफर अठारहवीं शताब्दी तक अनवरत चलता रहा। अरबी–फारसी में 800 सालों के ग़ज़ल के सफर में प्रेम, माधुर्य एवं विरह की तीव्रानुभूति, आध्यात्मिक तत्व, जीवन–दर्शन, नीति आदि को ग़ज़लकारों ने अपना विषय बनाया। फारसी में सादी, शिराजी, अमीर खुसरो और अफीज शिराजी ने उत्कृष्ट ग़ज़लें कहीं।

उर्दू ग़ज़ल : भारत बहुभाषीय देश है। प्रत्येक प्रदेश व क्षेत्र की भाषा–बोली अलग – अलग है। भारतीय संविधान में 18 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है। बोलियाँ अलग–अलग हैं; फिर भी यह देश अखंड है, क्योंकि क्षैत्रीय भाषाओं और बोलियों के होते हुए भी हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है जो सभी भारतवासियों को आपस में जोड़ने का काम करती है। हिन्दी कई रूपों से गुज़रकर खड़ी बोली के इस रूप तक पहुँची है। इस कालखंड में मुस्लिम शासकों के साथ–साथ अरबी, फारसी और तुर्की भाषाएं भी भारत में आईं और भारतीय भाषाओं के साथ उनका मिलन हुआ। इस मिलन के परिणामस्वरूप भारत में उर्दू का चलन हुआ। उर्दू में ग़ज़ल की परम्परा मध्यकाल से प्रारम्भ हुई। डॉ॰ राम नरेश त्रिपाठी का मानना है कि "उर्दू शायरी का जन्म पहले दक्खन (दक्षिणी भारत) में हुआ। दक्षिणी भारत के लोगों की भाषा दक्षिणी हिन्दी कहलाती थी। मध्यकालीन इतिहास से हमें यह ज्ञात होता है

कि 13 वीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी ने सबसे पहले दक्षिणी राज्यों पर विजय पताका फहराई। 14 वीं शताब्दी में तुगलक वंश के शासक मुहम्मद–बिन–तुगलक ने दक्षिणी भारत में देवगिरी को अपनी राजधानी बनाया और इस तरह से उत्तरी तथा दक्षिणी भाषाओं के सम्पर्क में नयी भाषा का विकास हुआ जिसे दक्खिनी कहा गया। उर्दू के प्रारम्भिक ग़ज़लकारों ने इसी दक्खिनी का प्रयोग अपनी ग़ज़लों में किया। उर्दू के विद्वान गोलकुंडा के बादशाह मोहम्मद कुली कुतुबशाह को उर्दू का पहला शायर मानते हैं। उनका एक ग़ज़ल संग्रह भी प्राप्त हुआ है। उर्दू ग़ज़ल विधा के इतिहास को विद्वानों ने अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से चार कालों में विभाजित किया है, प्राचीनकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल और उत्तर आधुनिक काल (साठोत्तरी काल)। उर्दू ग़ज़ल के प्रारंभिक काल की समय–सीमा 1650 ई॰ से लेकर 1750 तक मानी जाती है। वली दकनी उर्दू गजल के पहले ग़ज़लकार माने जाते है। प्रेम एवं सौन्दर्य को लेकर वली ने उत्कृष्ट ग़ज़लों की रचना की। सिराजुद्दीन खाँ आरजू , शाह मुबारक 'आबरू', शाह हातिम, फाइज देहलवी, शाकिर नाज़ी, नुसरती, अशरफ अली खां 'फुंगा', मीर तकी 'मीर',सैय्यद मुहम्मद 'सोज' उर्दू ग़ज़ल के प्राचीनकाल श्रेष्ठ ग़ज़लकार माने जाते हैं।

मध्यकालीन उर्दू ग़ज़लों के इतिहास (1750 ई॰ से 1900 ई॰) में भाषा एवं भाव की दृष्टि से नयी खोज का श्रेय जिन ग़ज़लकारों को जाता है उनमें, प्रमुख रूप से मुहम्मद रफी 'सौदा', मीर तकी 'मीर', ख्वाज़ा मीर 'दर्द', सैय्यद मोहम्मद मीर 'सोज', का नाम आता है। मध्यकालीन भारत में जब 'तात्कालिक भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ परिवर्तित हो रही थी, उसका स्पष्ट प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी पड़ता है' हिन्दी काव्य की दृष्टि से भक्तिकाल समाप्ति की ओर था तो रीति कालीन कविता का अभ्युदय हो रहा था। इस काल के काव्य–विषयों में यह परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगता है। यह परिवर्तन उर्दू ग़ज़ल में भी दिखाई पड़ता है। नज़ीर अकबराबादी, कलन्दर बख्श 'जुरअत', इंशाअल्लाह खाँ 'इंशा', मोमिन खाँ 'मोमिन', मुहम्मद इब्राहीम 'जोंक', मिर्जा असदउल्ला खां 'गालिब', बहादुर शाह ज़फर, हैदर अली 'आतिश', पं. दयाशंकर 'नसीम', अल्ताफ हुसैन 'हाली', नवाब मिर्जा खाँ 'दाग', अमीर मीनाई आदि इस काल के प्रसिद्ध ग़ज़लकार हैं। इस काल के ग़ज़लकारों ने भी रीतिकाल कवियों की भाँति

नायिकाओं का नख–शिख वर्णन किया। इसकी भाषा प्रभावी, मुहावरेदार, कोमलता एवं माधुर्यता से परिपूर्ण है।

आधुनिककाल के उर्दू ग़ज़लकारों में डॉ॰ मुहम्मद 'इकबाल', असगर गोंडवी, सफ़ी लखनवी, अकबर इलाहाबादी, नज़र लखनवी, ब्रजनारायण 'चकबस्त्','फानी' 'बदायूँनी', जिगर मुरादाबादी, शब्बीर हसन 'जोश', असरारूल हक 'मिजाज' आदि प्रसिद्ध हैं। इस काल की ग़ज़लों में उदात्त प्रेम भावना, देश भक्ति की भावना, दार्शनिकता अपनी जीवनानुभूति और उसकी अभिव्यक्ति का सुन्दर रूप प्रकट हुआ है। साठोत्तरी उर्दू ग़ज़लकारों में जोश मलीहाबादी, फिराक गोरखपुरी, फैज अहमद 'फैज', जेब 'बरेलवी', गुलाम ख्बानी 'तौबा', मोहम्मद शफी खां लोदी, बेकल उत्साही, डॉ॰ बशीर बद्र, निदा फाजली, डॉ॰ वसीम बरेलवी, गुलजार, जावेद अख्तर, डॉ॰ मुनव्वर राणा, डॉ॰ राहत इन्दौरी आदि प्रसिद्ध नाम हैं जो उर्दू ग़ज़ल परम्परा को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी पूर्ण निष्ठा एवं उत्साह के साथ उठाए हुए हैं। आज ग़ज़ल हुस्नो–इश्क के अपने स्वाभाविक मिजाज को छोड़कर सामाजिक धरातल पर आ गई है। इन ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल की इस नयी ज़मीन को न केवल तलाशा वरन् उसे इतना तराशा कि आज ग़ज़ल उर्दू एवं हिन्दी के अवधारणात्मक धरातल को छोड़कर भारतीय ग़ज़ल का नया आकार ले रही है। अपनी परम्परा के विपरीत ग़ज़ल आज के हालातों का सच्चा चित्रण कर रही है। गहन मानवीय संवेदनाओं, सामाजिक विषमताओं एवं आम–आदमी की ज्वलंत समस्याओं को शे'रों में ढ़ालना आज की ग़ज़ल का प्रिय विषय है। आज की ग़ज़ल ने युगानुरूप भावों के साथ–साथ भाषा में भी परिवर्तन किया। उर्दू को देवनागरी लिपि में लिख जहाँ उसे भारतीय जन मानस के निकट लाने के सफल प्रयास किया वहीं भारतीय आवाम की पीड़ा को अभिव्यक्त कर लोकप्रियता के नये शिखरों को छूने का प्रयास भी किया। आज भी डॉ॰ मुनव्वर राणा, डॉ॰ वसीम बरेलवी, डॉ॰ राहत इन्दौरी, गुलजार देहलवी, अशोक साहिल, फयाज अहमद, मंजर भोपाली आदि नुमाना नाम उर्दू ग़ज़ल परम्परा को आगे बढ़ा उसे नयी ऊँचाईयाँ प्रदान कर रहे है।

"उर्दू शायरी में भारतीयता" शोधग्रंथ की लेखिका डॉ॰ बानो सरताज ने अपने इस महत्त्वपूर्ण शोध ग्रंथ में लिखा है –"पर विडंबना यह है कि उर्दू शायरी

पर हर ज़माने में यह आरोप लगता रहा है कि इसमें भारतीयता की कमी है। उर्दू शायरी इस देश के पशु–पक्षियों, पहाड़ों–नदियों, फसलों–वृक्षों से ईरान–इराक, मक्के–मदीने आदि के लोगों–वस्तुओं–प्राणियों से अधिक समीप है। उर्दू के प्रसिद्ध शायर फ़िराक गोरखपुरी ने कहा – 'शायरी हिन्दुस्तान की और इसकी जड़ें और बुनियादें (नींव) मक्के–मदीने ओर शीराज़ में ! यह बात मेरे गले के नीचे नहीं उतरती। भारतीयता की आत्मा यदि उर्दू शायरी में प्रवेश कर सके तो इस शायरी में भोलापन, विश्व और जीवन का तादात्म्य, एक पवित्रता, एक आध्यात्मिक रूप तथा विवेक आ जाएगा जिससे ऐसे संचार–संगीत फूट निकलेंगे जो स्वर्ग संगीत को भी मात कर देगें।"[17]

1.3 हिन्दी ग़ज़ल का उद्‌भव एवं विकास –

साहित्य भाषा से अधिक भावों का संवेदनाओं का विषय है भाषा चाहे जो भी हो, जैसी भी हो, साहित्य सीमाओं के बंधन तोड़ पूरे विश्व की धरोहर बन जाता है। किसी भी भाषा की श्रेष्ठ रचनाएँ भाषाई काराओं को लाँघ कर, राष्ट्र की सीमाओं का उल्लघंन करके भी पढ़ी जाती रही है। भाषाई दुरूहता उसे जरूर आम आदमी के नजदीक आने में गतिरोध उत्पन्न हो लेकिन अनुवाद, भाषानुवाद, लिप्यानुवाद के माध्यम से ही सही पर कालजयी साहित्य सभी सीमाओं से परे होकर पढ़ा जाता है, पढ़ा जाता रहेगा, यह सत्य है। लेकिन इतना ही सच यह भी है कि मानव का अन्वेषी मन सदा ही तथ्यों का विवेचन–विश्लेषण करता रहता है। उनका उद्‌गम – विकास तलाशता रहता है। उन तथ्यों का मानवोपयोगी महत्त्व प्रकट कर आने वाले संसार को सुन्दर रंग देना चाहता है। वो अपनी जमीन तलाशना चाहता है, वो अपना आसमां खोजना चाहता है। कभी किसी परंपरा से जोड़कर वो उन तथ्यों का अनुसंधान करता है; तो कभी परंपरा से तोड़ उन्हें नये आकार देता है। आज हिन्दी ग़ज़ल भी इसका अपवाद नहीं है। भले ही वो अरबी–फारसी की सीमाओं को तोड़कर आज भारतीय जन–मानस में रच–बस गई हो, लेकिन आलोचकों, सुधि विद्वानों एवं अध्येताओं ने हिन्दी ग़ज़ल के उद्‌गम एवं विकास को भी तलाशने का कार्य किया है। हिन्दी ग़ज़ल के उद्‌गम को लेकर भी विद्वानों में दो स्पष्ट मत दिखाई देते हैं। प्रथम यह कि हिन्दी ग़ज़ल का उद्‌भव हिन्दी के उद्‌भव अर्थात् आदिकाल के साथ ही दिखलाई पड़ता है। आदिकाल के प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो को हिन्दी का पहला

ग़ज़लकार स्वीकार करते हुए उदाहरण के तौर पर उनकी रचना को प्रस्तुत करते हैं –

"जब यार देखा नैन भर दिल की गई चिंता उतर
ऐसा नहीं कोई अजब, राखे उसे समझाय कर
अब आँख से औझल भया, तड़पन लगा मेरा जिया
हक्का इलाही क्या किया आँसू चले भर लाय डर
तू तो हमारा यार है, तुझ पर हमारा प्यार है
तुझ दोस्ती बिसियार है इक शब मिलो तुम आय कर
खुसरो कहे बातें ग़ज़ब दिल में न लाए कुछ अजब
कुदरत खुदा की है अज़ब जब जिय दिया गुल'लायकर।"[18]

इसके साथ ही दूसरा मत यह भी है कि जो हिन्दी ग़ज़ल का उद्भव आधुनिक काल से ही समझते है। उनका तर्क है कि कोई भी परम्परा अपने उद्भव के साथ ही समाप्त नहीं हो जाती। अमीर खुसरो में हिन्दी ग़ज़ल का उद्भव तलाशते है तो अमीर खुसरो के डेढ़ सौ साल बाद कबीर का नाम आता है और कबीर के लगभग 500 वर्षो बाद भारतेन्दु का नाम हिन्दी ग़ज़ल की विकास परंपरा में लिया जाता है। इनके बीच की शताब्दियों में यह परंपरा कहीं दिखाई नहीं देती। अपनी पुस्तक "हिन्दी ग़ज़ल दशा और दिशा" में डॉ॰ नरेश निसार लिखते है कि – "साहित्य के शोधार्थियो में यह प्रवृति आम देखी जाती है वे जिस विषय पर काम करते है तो सबसे पहले उसकी प्राचीनता सिद्ध करने में लग जाते है।"[19]

लेकिन यहाँ यह दृष्टव्य यह है कि आदिकाल में हिन्दी के उत्थान के साथ–साथ हिन्दी ग़ज़ल परंम्परा को अमीर खुसरों से जोड़ना अनर्थक नहीं है। अमीर खुसरों मुसलमान (सूफी) थे इसलिए ग़ज़ल के छंद शास्त्र की जानकारी उन्हें थी और उस समय तक हिन्दूस्तान में उर्दू का जन्म नहीं हुआ था इसीलिए उन्होनें हिन्दी में अपनी अभिव्यक्ति की। विद्वानो ने अमीर खुसरो की ऐसी ग़ज़ल भी खोज निकाली है जिसका एक मिसरा फारसी और दूसरा मिसरा हिन्दी भाषा का है। रही बात परंपरा की तो अमीर खुसरो के बाद कबीर का नाम आता है, जिनका लालन–पालन भी मुस्लिम परिवार में हुआ था। कबीर के समय तक भी हिन्दी भाषा में

अरबी – फारसी के शब्दों का प्रयोग होने लगा था लेकिन उर्दू का अस्तित्व नहीं था। इसलिए हिन्दी ग़ज़ल का उद्‌भव आदिकाल से मानने और उसकी विकास परंपरा अमीर खुसरो से मानने में कोई हर्ज नहीं है। हिन्दी ग़ज़ल परंपरा के अलावा मुकरियों की लेखन परंपरा में भी अमीर खुसरो के बाद सीधे ही भारतेन्दु का नाम आता है, तो क्या मुकरियों का उद्‌भव–विकास भी आधुनिक काल से मान लिया जाए जबकि सर्वविदित है कि मुकरिया भी अमीर खुसरो ने हिन्दी में सबसे पहले लिखी है। ध्यातव्य है कि मुकरिया भी फारसी का एक छन्द है। मध्यकाल में हुए ग़ज़ल के विकास को भी हमनें उर्दू परंपरा से जोड़ दिया जबकि उर्दू परंपरा के ग़ज़लकारों के भी कई शे'र ऐसे है, जिनमें हमें खड़ी बोली के दर्शन हो जाते है। उन्हें भी हिन्दी ग़ज़ल परंपरा से जोड़कर देखा जा सकता था। बहरहाल ऐसा क्यों नहीं हुआ यह शोध का विषय है। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है हिन्दी–उर्दू के बीच विभाजक रेखा खींचना नामुमकिन नहीं तो मुश्किल जरूर है इसलिए हिन्दी ग़ज़ल की विकास परंपरा को अमीर खुसरो से ही मानना समीचीन होगा। अपनी पुस्तक 'शामयाने काँच के' में इसी बात को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ कुँवर बेचैन लिखते है– हिन्दी ग़ज़ल की विकास –यात्रा अमीर खुसरो से आरंभ करना अधिक उपयोगी होगा। क्योंकि उसी युग में हिन्दी के अपने प्रारंभिक रुप में ग़ज़लें लिखी गयी। तुगलक दरबार में राजकवि खुसरो ने हिन्दुस्तान में ग़ज़ल की बुनियाद रखी। तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सूफी संत ख्वाजा मुईनुद्दीन भी फारसी और हिन्दी में ग़ज़ल लिखना शुरु कर चुके थे।"[20]

हिन्दी के साथ– साथ ग़ज़ल अन्य भारतीय भाषाओं में भी आयी। पंजाबी, मराठी, गुजराती, बांग्ला, ड़ोंगरी, सिंधी आदि भाषाओं में भी ग़ज़लें लिखी गयी, पर हिन्दी में इसकी समृद्ध एवं विकसित परंपरा दिखलाई देती है। डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष' ने हिन्दी में विकसित होती ग़ज़ल परंपरा के विषय में ठीक ही लिखा है कि –"हिन्दी के रचनाकारों ने इस विदेशी काव्य पौधे को अपनी धरती पर रोपा तथा भारत के पानी से सींचकर अधिक पानीदार और असरदार बनाने में साझेदारी की।"[21]

हिन्दी ग़ज़ल की विकास परंपरा को उल्लेखित करते हुए आरोह (ग़जल अंक) के पृष्ट 28 पर श्री रतीलाल शाहीन लिखते हैः "हिन्दी में अमीर खुसरो, कबीर,

बहादुर शाह जफर, भारतेन्दु हरिश चन्द्र, बद्री नारायण उपाध्याय, चौधरी प्रेमधन, प्रताप नारायण मिश्र, गया प्रसाद शुक्ल स्नेही, मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आदि प्राचीन कवियों ने भी ग़ज़ल विधा में अपने – अपने तरीके से आजमाईश की है।"[22]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि लगभग सभी साहित्यकार हिन्दी ग़ज़ल का उद्‌भव अमीर खुसरो से मानते है, साथ में यह भी स्वीकार करते है कि व्यवस्थित रुप हिन्दी में ग़ज़लें आधुनिक काल में कही जाने लगी। कोई छायावादी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के 'बेला' काव्य संग्रह से तो कोई सुधि समीक्षक जयशंकर प्रसाद से हिन्दी ग़ज़ल लेखन की परंपरा को स्वीकार करते है। इसलिए बिना किसी विवाद में पड़े यह मानना ही उचित होगा कि जिस प्रकार अमीर खुसरो ने मुकरिया लिखी वैसे ही हिन्दी में ग़ज़लें भी लिखी किन्तु मुगलों के साम्राज्य स्थापित करने के बाद यह परंपरा व्यवस्थित रुप नहीं ले सकी, हालांकि इस दौरान भी कई उर्दू ग़ज़लकारों ने कई शे'र ऐसे लिखे जिन्हें हिन्दी का माना जा सकता है, इसलिए अमीर खुसरो से प्रारंभ हुई यह ग़ज़ल– गंगा मध्यकाल में अंतः सलिला होकर बही और उचित अवसर पाकर फिर से मुखर होकर प्रवाहमान हो गयी। मध्यकाल की ग़ज़लों में भारतीयता को तलाश करने की दिशा में एक सराहनीय एवं महत्त्वपूर्ण प्रयास डॉ॰ बानो सरताज ने किया। उन्होंने अपने शोध–ग्रंथ 'उर्दू शायरी में भारतीयता' में मध्यकालीन शायरी में भारतीयता के ऐसे तत्वों को खोज निकाला है जिससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि अमीर खुसरो से प्रारम्भ हुई हिन्दी ग़ज़ल की यह परंपरा मध्यकाल में भी यथावत चलती रही थी। अपने इस शोध ग्रंथ में उन्होंने भारत : विभिन्न धर्मों की संगम स्थली, श्रद्धेय व्यक्तियों का भारत, भारत के पहाड़ / नदियाँ, भारत के नगर, ऐतिहासिक धरोहर, भारत के त्यौहार, कृषि प्रधान भारत देश, भारत की वन संपदा और भारतीय संगीत जैसे विषयों में मध्यकालीन शायरी में अभिव्यक्त ऐसी पंक्तियों को खोज निकाला है, जिसमें भारतीय मौसम, फल–फूल, पशु–पक्षी, तीज–त्यौहार, रीति–रिवाज़ और भारतीय सामाजिक जीवन के चित्र यहाँ–वहाँ बिखरे पड़े हैं। अपने इस शोध–प्रबंध में डॉ॰ बानो सरताज लिखती हैं – "नज़ीर अकबराबादी ने हिन्दू अवतारों, मेला–त्यौहारों, होली–दिवाली–राखी, बाँसुरी, बरसात का ऐसा क्रम पेश किया है जिसमें सिर्फ और

सिर्फ हिन्दुस्तान की मिट्टी की गंध बसी है।"[23]

1:4 समकालीन हिन्दी ग़ज़ल :

समकालीनता का अर्थ, परिभाषा, और व्याप्ति –

समकालीन शब्द 'कालीन' विशेषण में 'सम' 'उपसर्ग' को जोड़ने से बना है। कालीन का अर्थ है 'काल में'या 'समय में' 'सम' उपसर्ग का प्रयोग प्रायः 'एक ही'या 'एक साथ' के अर्थ में होता है। अतः 'समकालीन' शब्द समय की धारणा से सम्बद्ध एक विशेषण है जो सामान्यतया एक ही समय में रहने या होने वाले रचनाकारों का बोध कराता है। नालंदा अद्यतन कोश के अनुसार "समकालीन शब्द सम उपसर्ग को 'कालीन' काल की अवधारणा से जुड़ा हुआ एक विशेषण में लगाकर बनता है, जिसका अर्थ है – 'जो एक ही समय में हुआ है।"[24] महाराष्ट्र शब्द कोश में समकालीन को 'एकाच कालन्ये' अर्थात एक कालीन कहा गया है।[25]

मानक हिन्दी कोश में इस शब्द के दो अर्थ प्रस्तुत किये गये है –

(क) जो उसी काल या समय में जीवित अथवा वर्तमान रहा हो, जिसमें कुछ और विशिष्ट लोग भी रहे हो।

(ख) जो उत्पत्ति स्थिति आदि के विचार से एक ही समय में हुआ हो।"[26]

आदर्श हिन्दी –

संस्कृत कोश में समकालीन का अर्थ एक कालिक, एक कालीन तथा समकालीन बताया गया है।"[27]

संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर के अनुसार– "समकालीनता का अर्थ है दो या कई एक ही समय में हो।"[28]

हिन्दी राष्ट्र भाषा कोष में भी समकालीनता का अर्थ एक ही समय में होने वाला बताया गया है।"[29]

वृहत्त हिन्दी कोष में भी 'समकालीन' का अर्थ एक साथ में रहने वाले दिया गया है।"[30]

समकालीन शब्द का पर्याय देखें तो आधुनिक हिन्दी साहित्य तथा आलोचक समकालीन समसामयिक आदि शब्दों का प्रयोग अंग्रेजी भाषा के 'कॉण्टेन्पोरेरी' के पर्याय के रूप में करते हैं। " व्यावहारिक हिन्दी–अंग्रेजी कोश में समकालीन शब्द के लिए 'कॉण्टेन्पोरेरी' 'कॉण्टेपोटिनयम', आदि शब्द का प्रयोग हुआ है। डॉ॰ सूर्य कान्त, आर॰सी॰ पाठक, डॉ॰ पी॰एम॰ ठंडन तथा फादर कमिल बुल्के ने 'कॉण्टेन्पोरेरी' शब्द का पर्याय समकालीन बताया है।इस प्रकार हम देखते हैं कि 'समकालीन' शब्द अंग्रेजी के 'कॉण्टेन्पोरेरी' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ एक समय में रहने या होने से है।

विभिन्न शब्दकोशों के अर्थालोक के बावजूद भी समकालीन शब्द एक भ्रामक स्थिति भी उत्पन्न करता है। इस अर्थ में किये जा रहे प्रयोग पर व्यंग करते हुए निर्मल वर्मा कहते हैं कि "आज समकालीन शब्द काफी विकृत हो चुका है। इसका प्रयोग उन सब लेखकों के लिए हो रहा है जो जीवित और लिख रहे हैं।"[31]

डॉ॰ मैनेजर पाण्डेय ने समकालीनता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि कालजीवी हुए बिना कालजयी नहीं हुआ जा सकता। कालजीवी का अर्थ तीव्र समकालीन बोध है।"[32] डॉ॰मोहन का मानना है कि "समकालीनता एक अवधारणा है वह एक विचार है। यह समय से संबंधित है और मूल्यों से भी।"[33] समकालीनता की अवधारणा को और स्पष्ट करते हुए कवि रघुवीर सहाय ने कहा कि "समकालीनता मानव भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है। सही पहचान के लिए हमें कवि की भाषा और उसके भाव–बोध के परस्पर संबंध को जानना चाहिए।"[34]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में समकालीन शब्द को परिभाषित करें तो तीन शब्दों पर ध्यान देना आवश्यक होगा – 'कालजीवी', 'अवधारणा' और मूल्यबोध'। कालजीवी होने का अर्थ एक विशेष काल में जीवित एवं प्रासंगिक होना। समकालीन शब्द को अवधारणात्मक मानने पर भी यह एक विशेष काल खण्ड को ही परिभाषित करता है। जहाँ तक मूल्य बोधता की बात है हर युग के अपने मूल्य होते है, लेकिन मानवीय मूल्य प्रत्येक युग में समान होते है, जो आदर्शो की उच्च स्तरीय संकल्पनाओं से सुसज्जित रहते है। इन अर्थो में कई बार मध्यकाल में भी आधुनिक युगबोध की

चेतना दिखलाई पड़ती है, यही काल जीव्यता है, जो उच्चादर्शो से प्रेरित मूल्य बोध से संपृक्त रहती है। लेकिन समकालीनता का उसके अवधारणा में बाँधने का विशिष्ट अर्थ होता है, जहाँ वह प्राचीनता मध्य युगीनता, नवजागरण, आधुनिकता के अगले क्रम में आती है। विचार की पुष्टि से जहाँ नवजागरण का अंत होता है वहीं से आधुनिकता की शुरूआत होती है और जहाँ आधुनिकता का भविष्योन्मुक्तता की ओर अग्रसर होती है, वहीं से समकालीनता की शुरूआत होती है।

आधुनिक हिन्दी कविता का अवलोकन करें तो 1960 ई॰ तक आते–आते कविता की पृष्ठभूमि परिवर्तित होने लगती है जो अपनी पूर्ववर्ती कविताओं से भिन्न है। उसमें वस्तु, भाव और कलापक्ष तीनों ही दृष्टियों से पार्थक्य दिखलाई पड़ता है। डॉ॰ रामदरस मिश्र ने लिखा है – "मेरी स्पष्ट धारणा है कि सन् 1960 ई॰ के बाद कविता में जो स्वर उभरे हैं, नई कविता में बीज स्वरूप विद्यमान रहे हैं। साठ के बाद इस स्वर ने तीखे व्यंग्य तथा विद्रोह का रूप धारण कर लिया। "वस्तुतः ये रूप परिवर्तन न केवल काव्य के क्षेत्र में हुए वरन् सम्पूर्ण साहित्य जगत एवं समाज में भी परिलक्षित होते हैं। इनका एक बड़ा कारण है – आजादी से उत्पन्न मोह–भंग की स्थिति। आजादी के बाद जो आशाएं एवं अपेक्षाएं अपनी चुनी हुई सरकार से देश की जनता ने लगाई थी, वह मात्र 14–15 वर्षों में ही दम तोड़ती नज़र आने लगती है। व्यवस्था के प्रति के प्रति आक्रोश, विरोध एवं छटपटाहट के स्वर उभरने लगते हैं। जनतांत्रिक व्यवस्था की विकृतियों का, व्यवस्था के शोषण की स्थितियों का, लोकतंत्र में मनुष्य की नियति का, आज़ादी की निरर्थकता के साथ–साथ भूख, बेकारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, अन्याय, अमानवीयता, अजनबीपन, साम्प्रदायिक विद्वेष और खून–खराबा जैसे विषय साहित्य के केन्द्र में आने लगते हैं। मोटे तौर पर देखें तो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्पन्न हुई मोहभंग की परिस्थिति जनित समस्याओं का निवारण आज तक नहीं हो पाया। साहित्य के मूल केन्द्र में आज भी वही विषय –वस्तु है, जो इस मोहभंग ने हमें दी है। तात्कालिक समस्याएँ चाहे जो रही हों, लेकिन मूल उद्‌भव वहीं से दिखाई देता है। इसलिए 1960 के बाद के साहित्य को समकालीन साहित्य की अवधारणा से बाँधा जा सकता है, जहाँ आधुनिकता भविष्योन्मुखता की ओर मोड़ लेती है। तब से लेकर आज तक वर्तमान को बेहतर बनाने के प्रयास जारी हैं। काव्य के क्षेत्र में आज भी मुक्तिबोध, धूमिल, सर्वेश्वरदयाल

सक्सेना, शमशेर, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, रघुवीर सहाय, गिरिजा कुमार माथुर, श्रीकान्त वर्मा, कुँअर नारायण और केदारानाथ सिंह की अनुगूँज सुनाई देती है तो कथा साहित्य में मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, भीष्म सहानी, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, ज्ञानरंजन और कृष्णा सोबती की प्रतिच्छाया नज़र आती है। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में भी साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति एक नवीन चेतना का युग प्रारम्भ होता है और इस चेतना के सूत्रधार हैं – दुष्यंत कुमार। दुष्यंत कुमार के साथ अन्य ग़ज़लकारों ने भी समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परम्परा को विकसित करने में अपना योगदान दिया उनमें पद्मश्री गोपालदास नीरज, चन्द्रसेन विराट, बालस्वरूप शर्मा 'राही', श्रीराम 'शलभ', रामावतार त्यागी, अदम 'गोंडवी', कुँवर 'बेचैन', सूर्यभानु गुप्त, ओम प्रभाकर, राजेश रेड्डी, हस्तीमल 'हस्ती', विज्ञानव्रत आदि के साथ साथ–साथ जहीर कुरेशी का नाम भी महत्त्वपूर्ण है।

***

: संदर्भ सूची :

1. हिन्दी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नज़र में – डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 15
2. ग़ज़ल सौन्दर्य मीमांसा – डॉ॰ अब्दुल रशीद ए॰ शेख, पृ॰सं॰ 5
3. हिन्दी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नज़र में – डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 15
4. वही पृ॰सं॰ 15
5. वही पृ॰सं॰ 18
6. ग़ज़ल सौन्दर्य मीमांसा–डॉ॰ अब्दुल रशीद ए॰ शेख, पृ॰सं॰ 6
7. वही पृ॰सं॰ 7
8. वही पृ॰सं॰ 7
9. साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल में विद्रोह के स्वर– डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰सं॰ 17
10. हिन्दी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नज़र में – डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 31
11. वही पृ॰सं॰ 41
12. साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल में विद्रोह के स्वर– डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰सं॰ 17
13. ग़ज़ल सौन्दर्य मीमांसा–डॉ॰ अब्दुल रशीद ए॰ शेख, पृ॰सं॰ 7
14. वही पृ॰सं॰ 8
15. वही पृ॰सं॰ 8
16. हिन्दी ग़ज़ल दशा और दिशा, डॉ॰ नरेश 'निसार', पृ॰सं॰ 17
17. उर्दू शायरी में भारतीयता, डॉ॰ बानो सरताज, पृ॰सं॰ 99
18. अमीर खुसरो और उनकी हिन्दी रचनाएँ, डॉ॰ भोलानाथ तिवारी पृ॰सं॰ 122
19. हिन्दी ग़ज़ल दशा और दिशा, डॉ॰ नरेश 'निसार', पृ॰सं॰ 40
20. शामियाने काँच के, डॉ॰ कुँअर बैचेन, पृ॰सं॰ 8
21. हिन्दी ग़ज़ल का विवेचनात्मक अनुशीलन डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष', पृ॰सं॰ 47
22. आरोह ग़ज़ल अंक, पृ॰सं॰ 28
23. उर्दू शायरी में भारतीयता, डॉ॰ बानो सरताज, पृ॰सं॰ 100
24. नालंदा अद्यतन कोश, पुरूषोत्तम नारायण अग्रवाल, पृ॰ सं॰ 933
25. महाराष्ट्र शब्दकोश, भाग सातवाँ, पृ॰सं॰ 3020

26. मानक हिन्दी कोश, पाँचवां खण्ड, पं. रामचंद्र वर्मा/बद्रीनाथ कपूर, पृ॰सं॰ 278
27. आदर्श हिन्दी कोश, पं. रामस्वरूप शास्त्री, पृ॰सं॰ 565
28. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागरकोश, पं. रामस्वरूप शास्त्री, पृ॰सं॰ 976
29. हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश पृ॰सं॰ 1415
30. वृहत हिन्दी कोश पृ॰सं॰ 1367
31. व्यवहारिक हिन्दी अंग्रेजी कोश पं॰ महेन्द्र चतुर्वेदी/भोलानाथ तिवारी पृ॰सं॰ 657
32. समकालीन कविता की भूमिका,डॉ॰ मोहन पृ॰सं॰ 9
33. वही पृ॰सं॰ 12
34. समकालीन काव्य यात्रा, नन्द किशोर नवल, पृ॰सं॰ 8

***

अध्याय द्वितीय

अध्याय – द्वितीय

हिन्दी ग़ज़ल की विकास परम्परा का परिचय

प्राचीनकाल से ही हिन्दी साहित्य के अर्न्तगत किसी न किसी रुप में ग़ज़ल के तत्व विद्यमान रहे हैं। अमीर खुसरो से लेकर कबीर, प्यारे लाल 'शोकी' और गिरधरराय से होती हुई यह परम्परा आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चंद्र और उनके समकालीन कवियों तक पहुँचती है, जहाँ से हिन्दी ग़ज़ल की एक सुव्यवस्थित परम्परा प्रारम्भ होती है। हिन्दी ग़ज़ल की विकास परम्परा का विस्तृत अध्ययन करने के लिए हम इस अध्याय को निम्नलिखित कालक्रम में विभाजित कर सकते हैं।

हिन्दी ग़ज़ल परम्परा का परिचय

2.1 प्राचीनकालीन हिन्दी ग़ज़लकार

- 2.1.1 अमीर खुसरो
- 2.1.2 कबीर
- 2.1.3 गिरधर राय
- 2.1.4 प्यारे लाल शौकी

2.2 अर्वाचीन हिन्दी ग़ज़लकार

- 2.2.1 भारतेन्दु युगीन ग़ज़लकार
- 2.2.2 द्विवेदी युगीन ग़ज़लकार
- 2.2.3 छायावादी युगीन ग़ज़लकार
- 2.2.4 उत्तर छायायवादी युगीन ग़ज़लकार
- 2.2.5 स्वातंत्र्योत्तर ग़ज़लकार
- 2.2.6 समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार

हिन्दी ग़ज़ल की विकास परम्परा का निर्धारण कर लेने के पश्चात् प्रत्येक काल के हिन्दी ग़ज़लकारों एवं उनकी ग़ज़लों की प्रमुख विशेषताओं एवं प्रवृतियों को उन्हीं की ग़ज़लों के उदाहरण से जानने–समझने का प्रयास करते हैं।

2.1. प्राचीनकालीन हिन्दी ग़ज़लकार :

हिन्दी साहित्य का प्राचीन काल न केवल हिन्दी भाषा के साहित्य का प्राचीनकाल है अपितु यह काल साहित्य की कई अन्य विशेषताएँ भी लिये हुए है। हिन्दी साहित्य की कई प्रमुख प्रवृतियाँ इसी काल में अस्तित्व में आती है और आजकल प्रचलित है। इन्हीं में से एक हिन्दी ग़ज़ल भी है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल भारत पर मुस्लिम आक्रमण से लेकर मुगल साम्राज्य की स्थापना का काल है। 10 वीं – 11वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुए मुस्लिम आक्रमणों की परिणति भारत पर मुगल साम्राज्य की स्थापना के साथ होती है। इस काल खण्ड में सत्ता के संघर्ष के साथ–साथ भाषा साहित्य, संस्कृति एवं धर्मों का संघर्ष भी दृष्टिगोचर होता है। इस संघर्ष में विजेता जहाँ अपनी भाषा का निर्माण कर रहे थे, वहीं साहित्य में भी अपनी प्रवृतियों को स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। हिन्दी ग़ज़ल भी इसी संघर्ष का परिणाम है। डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना ने हिन्दी ग़ज़ल के उद्‌भव एवं विकास पर सटीक टिप्पणी करते हुए लिखा है "प्राचीन काल से ही हमारे साहित्य में किसी न किसी रूप में ग़ज़ल के तत्व विद्यमान रहे हैं। आज से लेकर भारतेन्दु युग एवं उनके पूर्व के हिन्दी साहित्य का सर्वेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि उक्त समय के कवियों ने स्वाभाविक रूप से ग़ज़ल छंद को अपनाया है। इनकी ग़ज़लों में अनुकरण की दुर्गंध नहीं अपितु मौलिकता के सुवास का आभास मिलता है।" [1]

2.1.1. अमीर खुसरो (1253 ई॰ से 1325 ई॰) :

अमीर खुसरो को समान रूप से हिन्दी एवं उर्दू का प्रथम ग़ज़लकार माना जा सकता है। अरबी, फारसी, तुर्की और हिन्दी आदि भाषाओं के ज्ञाता होने के कारण "तूती–ए–हिन्द" की उपाधि से सम्मानित अमीर खुसरो ने ऐसी ग़ज़लें लिखी जिसका एक मिसरा फारसी और दूसरा हिन्दी में था।

"जहाले मिस्की मकुन तगाफुस
दुराए नैना बनाय बतियाँ
किताबें हिजरां न दारम ऐ जाँ
न लेहु काहे लगाय छतियाँ
शबाने–हिजरां दराज चूँ जुल्फ
बरोजे वसलत चूँ उम्र को ताह
सखी पिया को जो मैं न देखूं
तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियां।"[2]

इस प्रकार अमीर खुसरो की रचनाओं में पहली बार हिन्दी ग़ज़ल के दर्शन होते हैं। बाद में ईसा की 13वीं शताब्दी में महमूद शीराजी को अमीर खुसरो की लिखी शुद्ध हिन्दी में लिखी ग़ज़ल भी प्राप्त हुई जिसके बाद अमीर खुसरो को हिन्दी का पहला ग़ज़लकार मानने में कोई संदेह नहीं रह जाता –

"जब यार देखा नैन भर, दिल की गई चिंता उतर
ऐसा नहीं कोई अजब, राखे उसे समझाय कर"
खुसरो कहे बाता गज़ब दिल में न लाय कुछ अजब
कुदरत खुदा की है अजब, जब जिव दिया गुललायकर।[3]

अमीर खुसरो की इस ग़ज़ल में मतले से लेकर मकते तक का पालन किया गया है और सबसे बड़ी बात यह है कि यह हिन्दी खड़ी बोली में है।

2.1.2 कबीर : (1399 ई॰ से 1494 ई॰) :

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। भक्तिकाल की संत परम्परा में कबीर का नाम सम्मान से लिया जाता है। तत्कालीन समाज के बाह्याडम्बरो, अंधविश्वासों और गलत रीति –रिवाजों पर अपने तीखे तेवर प्रकट करने वाले कबीर प्रेम के कवि के रूप में भी विख्यात हैं। यह दीगर बात है कि कबीर का प्रेम सांसारिक नहीं है, पारलौकिक है। कबीर के प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे वैश्विक

मानवता के प्रति प्रेम की बात कहते हैं। हिन्दी ग़ज़ल को व्यवस्था–विरोधी तेवर देने वाले कबीर की ग़ज़लों में निश्छल प्रेम की अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है –

"हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या ?
रहे आजाद या जग से हमन दुनियॉ से यारी क्या ?
जो बिछड़े हैं पियारे से भटकते दर–ब–दर फिरते
हमारा यार है हम में हमन का इंतजारी क्या ?
खलक सब नाम अपने को बहुत सिर पटकता है
हमन गुरनाम साँचा है हमन दुनियाँ से यारी क्या ?
न पल बिछुड़े पिया हमसे न हम बिछुड़े पियारे से
उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या ?
कबीर इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से
जो चलना राह नाजुक है हम सिर बोझ भारी क्या ?"[4]

कबीर को इसी रचना के आधार पर हिन्दी ग़ज़ल परम्परा से जोड़कर देखा जाता है। ग़ज़ल के छंद शास्त्र के अनुसार इस ग़ज़ल में 'मतला' और 'मकते' के साथ–साथ रदीफ–काफिये का प्रयोग 'मकते' में शायर का नाम –उपनाम का प्रयोग भली–भाँति हो रहा है।

2.1.3 प्यारेलाल शौकी

हिन्दी ग़ज़ल परम्परा को आगे बढ़ाने में जहाँगीर के समकालीन प्यारे लाल शौकी का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। प्यारे लाल शौकी ने हिन्दी में अनेक ग़ज़लें लिखीं। भक्तिकालीन परम्परा के अनुरूप उनकी ग़ज़लों की विषयवस्तु भी आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है। प्यारे लाल शौकी पर कबीर का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, क्योंकि उनकी ग़ज़लों में भी आध्यात्मिक प्रेम की सशक्त अभिव्यक्ति पायी जाती है –

"जिन प्रेम रस चाखा नहीं अमृत पिया तो क्या हुआ
जिन इश्क में सर ना दिया तो जग जिया तो क्या हुआ

ताबीज और तूमार में सारी उमर जाया किसी
सीखे मगर हीले घने मुल्ला हुआ तो क्या हुआ
जोगी न जंगम से बड़ा रंग लाल कपड़े पहन के
वाक़िफ नहीं इस हाल से कपड़ा रंगा तो क्या हुआ
जिउ में नहीं पी का दरद बैठा मशायख होय कर
मन का रहट फिरता नहीं सुमिरन किया तो क्या हुआ
जब इश्क के दरियाब में होता नहीं ग़रकाब ते
गंगा बनारस, द्वारका पनघट फिरा तो क्या हुआ
मारम जगत को छोड़कर दिल तन से तो खिलवत पकड़
शौकी पियारेलाल बिन सबसे मिला तो क्या हुआ।"[5]

प्यारेलाल शौकी की इस ग़ज़ल में मध्यकालीन प्रवृतियों के साथ–साथ ग़ज़ल के छंद शास्त्र का भी पूर्ण निर्वाह दिखलाई देता है।

2.1.4 गिरिधर दास (1833 ई॰ से 1873 ई॰ तक)

इनका वास्तविक नाम बाबू गोपाल चंद्र था। इन्होंने दास गिरधर उपनाम से ग़ज़लें लिखीं। उर्दू और हिन्दी के समानाधिकारी गिरधर दास की ग़ज़लों में दोनों ही भाषाओं का साधिकार प्रयोग दिखलाई देता है –

"हम भी उस बेपीर के आशिक हैं कहलाने लगे
आह हम मजनूँ–शुमारी में गिने जाने लगे
हो गया मुझसे खफा वह याद अब आता नहीं
जब से सब बेपीर आकर उसको बहलाने लगे
दास गिरधर तुम फकत हिन्दी पढ़े ये खूब सी
किस तरह उर्दू के शायर में गिने जाने लगे।"[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक काल से पूर्व भी हिन्दी ग़ज़ल का विकास भले ही अव्यवस्थित–सा दिखलाई पड़ता है लेकिन यह मानने में कोई हर्ज नहीं है कि हिन्दी ग़ज़ल का बीजारोपण आधुनिक काल से पूर्व ही हो चुका था।

व्यवस्थित परम्परा का अभाव इसलिए भी दिखलाई देता है क्योंकि तब तक हिन्दी भाषी प्रदेशों में भाषायी एकरूपता नहीं थी। आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक राजस्थानी, अवधी, ब्रज और इनकी बोलियाँ ही काव्य की भाषा रही है। सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संक्रमण के इस दौर में भाषाई पूर्वाग्रह भी हिन्दी ग़ज़ल के सफर में एक मुख्य बाधक तत्व साबित हुआ। उर्दू भाषा का उद्‌भव एवं उत्कर्ष भी हिन्दी ग़ज़ल परम्परा के अव्यवस्थित होने का एक प्रमुख कारण था। जब ग़ज़ल को अपने स्वभाव के अनुरूप भाषा और भाषा को बोलने/लिखने वाले रचनाकार मिले तो स्वाभाविक था कि इस दौर में ग़ज़ल का विकास उर्दू में होना था। इस दिशा में शोध की आवश्यकता है कि उर्दू ग़ज़लकारों ने भी अपनी ग़ज़लों में हिन्दी का प्रयोग किया। ऐसे में कतिपय कवियों के प्रयास भी हिन्दी ग़ज़ल की विकास परम्परा में महत्त्वपूर्ण मायने रखते हैं।

2.2 अर्वाचीन हिन्दी ग़ज़लकार

हिन्दी का आधुनिक काल कई अर्थों में आधुनिकता लिए आता है। यूरोपीय सम्पर्कों के प्रभाव एवं भारतीय जनमानस की छटपटाहट ने देश को अंग्रेजी दांस्ता से मुक्त कराने के प्रयासों को गति प्रदान की। राजनीतिक, सामाजिक, भाषिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर देश करवट बदलने का प्रयास कर रहा था। भारतेन्दु हरिशचन्द्र के 'निज भाषा उन्नति अहे, सबे उन्नति का मूल' मंत्र ने सम्पूर्ण राष्ट्र को हिन्दी खड़ी बोली के माध्यम से राष्ट्रव्यापी सोच बनाने का कार्य किया। सप्रयास खड़ी बोली में जब लेखन को बल मिला तो धारणाओं को तोड़ने का भी बल मिलने लगा। सर्वप्रथम भारतेन्दु ने इस धारणा को तोड़ा कि काव्य के लिए ब्रज भाषा ही सबसे उपर्युक्त भाषा है। इसके बाद भारतेन्दु ने नाटक एवं निबंध लिखकर तथा साथी लेखकों से लिखवाकर खड़ी बोली में गद्य परम्परा को विकसित करने का प्रयास किया। इसी कड़ी में हिन्दी बोली में ग़ज़ल लेखन कर उन्होंने इस धारणा को भी तोड़ने का सफल प्रयास किया कि ग़ज़लें सिर्फ उर्दू में ही लिखी जा सकती हैं। भारतेन्दु ने न केवल स्वयं हिन्दी ग़ज़ल लेखन किया बल्कि अपने समकालीन अन्य हिन्दी रचनाकारों बद्री नारायण प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र, स्वामी रामतीर्थ लाला, भगवानदीन आदि को ग़ज़लें लिखने के लिए प्रेरित किया।

भारतेन्दुकालीन साहित्यिक परिदृश्य पर चर्चा करते हुए डॉ॰ अनुरूद्ध सिन्हा लिखते है कि "आर्थिक धूँधलका और सामाजिक रूढि अन्धता की छटपटाहट का परिणाम था भारतेन्दु और उनका प्रभा मण्डल जिसने उस व्यग्रता को वाणी दी थी, तत्कालीन राजनीतिक स्तर पर घर कर गयी पराधीनता को झकझोरा था। भारतेन्दु उर्दू वालों की साम्प्रदायिकता से बेहद दुखी थे। वे उसे देशहित के विरूद्ध मानते थे।"[7] यह भारतेन्दु के प्रयासों का ही परिणाम था कि आधुनिक काल से हिन्दी ग़ज़ल की सुव्यवस्थित परम्परा हमें दिखलाई पड़ती है। इसी काल में हिन्दी का पहला ग़ज़ल संग्रह भी प्रकाशित हुआ।

2.2.1 भारतेन्दु युगीन ग़ज़लकार

(i) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (9 सितम्बर 1850 ई॰ से 1885 ई॰ तक) हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रणेता भारतेन्दु हरिशचन्द्र बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व के धनी थे। 9 सितम्बर 1850 ई॰ में जन्में भारतेन्दु मात्र 35 वर्ष की अवस्था में काल–कवलित हो गये लेकिन अल्पायु में ही उन्होंने अपने प्रखर व्यक्तित्व की गहरी छाप छोड़ी। यही कारण है कि 1885 ई॰ में देहावसान हो जाने के बाद भी साहित्य पर उनका प्रभाव 1900 ई॰ तक माना जाता है।

भारतेन्दु ने सर्व प्रथम खड़ी बोली में कविता की संभावनाओं को न केवल तलाशा बल्कि स्वयं काव्य लेखन कर एक सुव्यवस्थित परंपरा भी विकसित की। 'रसा' एवमं 'हरिशचन्द्र' उपनाम से ग़ज़लें लिख उन्होंने पूर्ववर्ती हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा को आगे बढ़ने कार्य किया। 'प्रेम' और 'राष्ट्रप्रेम' को कथ्य बना ग़ज़लें लिखने वाले भारतेन्दु ने भारतीय पर्व–त्यौहारों का सहजता से समावेश अपनी ग़ज़लों में किया। भारतेन्दु ने होली की मस्ती और प्रेम को ग़ज़ल में इस प्रकार अभिव्यक्त किया –

"गले मुझको लगा लो ऐ दिलदार होली में
बुझे दिल की लगी भी तो ऐ यार होली में

नहीं यह है गुलाले–सुर्ख उड़ता हर जगह प्यारे
ये आशिक की है उमड़ी आहें आतिशबार होली में
'रसा' गर जामे–मय गैरों को देते हो तो मुझको भी
नशीली आँख दिखलाकर करो सरशार होली में।"[8]

व्यंग्य भारतेन्दु के सम्पूर्ण साहित्य में देखा जा सकता है। तत्कालीन परिस्थितियों पर सार्थक व्यंग्य लेखन कर भारतेन्दु ने जहाँ जन–मानस को आन्दोलित किया, वहीं हिन्दी में व्यंग्य विधा का भी प्रारम्भ किया। भारतेन्दु की ग़ज़लों में भी व्यंग्य का पुट देखा जा सकता है। महारानी विक्टोरिया के संबंध में लिखी गई उनकी ग़ज़ल इस बात का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती है –

" उनको शहनशाही हरबार मुबारक होवे
केसरे – हिन्द का दरबार मुबारक होवे
बाद मुद्दत के है देहली के फिरे दिन यारब
तख्त ताऊस तिलाकर मुबारक होवे
बागवाँ–फूलों से आबाद रहे शहने चमन
बुलबुलों गुलशन को खार मुबारक होवे।"[9]

आधुनिक काल के प्रारम्भ में ही हमें हिन्दी ग़ज़ल की परंपरा सुदृढ़ होने का आभास भारतेन्दु देते है। उन्होंने सप्रयास एवं आन्दोलन के रुप में हिन्दी ग़ज़ल को अपनाया और आधुनिक काल में हिन्दी ग़ज़ल को मजबूती प्रदान करने के लिए एक आधार तैयार किया, एक दिशा तय की।

(ii) पण्डित बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' (1834 ई॰ से 1923 ई॰ तक)

प्रेमधन का जन्म सन् 1834 ई॰ में उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। भारतेन्दु की प्रेरणा से ब्रजभाषा से खड़ी बोली में काव्य – लेखन की ओर प्रेरित होने वाले 'प्रेमधन' ने ग़ज़ले, रेखता तथा लावणियाँ भी लिखी है, जो प्रेमधन सर्वस्व के प्रथम भाग में संग्रहित है। 'अब्र' उपनाम से भी ग़ज़लें लिखने वाले प्रेमधन की ग़ज़लों में 'प्रेम एवं श्रृंगार' की अभिव्यक्ति मिलती है –

तेरे इश्क में हमने दिल को जलाया
कसम सर की तेरे, मजा कुछ न आया
असर हो न क्यों दिल में दिल से जो चाहे
मसल सच है, जो उसको ढूँढा वो पाया
चमन में है बरसात की आमद–आमद
अहा! आसमां पर सियह अब्र छाया
परीशां हो क्यों अब्रे बेखुद भला तुम
कहो किस सितमगर से है दिल लगाया।"[10]

पं. बदरी नारायण 'प्रेमधन' की ग़ज़लों में उर्दू शब्दों की भरमार है। उनकी भाषा हिन्दुस्तानी के अधिक नजदीक है। अपनी दूसरी ग़ज़ल में प्रेमिका के नाजो–नखरे का चित्रणवो रस प्रकार करते है –

"मेरी जान से क्या नफा पाईयेगा
छुड़ा के ये दामन कहाँ जाईयेगा
जो कहता हूँ अब रहम हो जाये मुझ पर
वो कहते है फिर आप आ जाईयेगा।"[11]

(iii) प्रताप नारायण मिश्र (1856 ई॰ से 1894 ई॰ तक)

भारतेन्दु की भाँति ही अल्पायु प्राप्त प्रताप नारायण मिश्र भी बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्तित्व थे। स्वाध्याय से उर्दू, फारसी तथा बंगला भाषा का ज्ञान प्राप्त करने वाले मिश्र जी को अपनी पहली काव्य रचना 'प्रेम – पुष्पावली' पर स्वयं भारतेन्दु जी से प्रशंसा प्राप्त हुई थी । मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' पत्र का संपादन एवं संचालन किया और अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। मिश्र जी ने नाटक, उपन्यास, निबंध आदि के साथ–साथ कविताएँ एवं ग़ज़लें भी लिखी। सामाजिक जीवन के बाह्य–आडम्बरों पर व्यंग करते हुए मिश्र जी अपनी ग़ज़ल में लिखते है –

"बसो मूखते देवि! आर्यों के जी में
तुम्हारे लिए है मकां कैसे–कैसे
अनुदयोग, आलस्य, संतोष, सेवा
हमारे है अब मेहरबां कैसे–कैसे
अभी देखिए क्या दशा देश की हो
बदलता है रंग आसमां कैसे–कैसे
प्रताप अब तो होटल में निर्लज्जता के
मज़े लूटती है जिनां कैसे–कैसे।"[12]

इनके अलावा माधव शुक्ल, बदरी नारायण भट्ट आदि ने भी भारतेन्दु युग में ग़ज़लें लिखी। भारतेन्दु युगीन कवियों ने ग़ज़लें अवश्य लिखी लेकिन वे कवि ज्यादा थे, ग़ज़लकार कम, इसलिए किसी भी केवि ने ग़ज़ल को प्रमुख विधा के रूप में नहीं अपनाया। लेकिन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा को आगे बढ़ाने का उल्लेखनीय कार्य अवश्य किया। इस काल की ग़ज़लों पर भाव और भाषा दोनों ही स्तर पर उर्दू का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। ग़ज़ल को खड़ी बोली का रुप देने के प्रयासों में शिल्प कहीं न कहीं बाधित दिखलाई देता है, लेकिन भाषा के प्रति स्वाभाविक आग्रह इनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

2.2.2 द्विवेदी युगीन ग़ज़लकार

भारतेन्दु के बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। द्विवेदी जी 'सरस्वती पत्रिका' के माध्यम से नवयुवकों को काव्य सृजन की ओर प्रेरित किया। इनमें कई युवा रचनाकार ग़ज़ल लेखन की ओर भी प्रवृत हुए। द्विवेदी युगीन ग़ज़लों का विवेचनात्मक अध्ययन करते हुए डॉ॰ नित्यानन्द शर्मा ने लिखा है – "द्विवेदी युगीन कवियों ने ग़ज़ल के प्रेम मूलक प्रतीकों के अतिरिक्त उर्दू ग़ज़ल के बाहर पतझड़, गुल, चमन, पत्थर, बिजली, संग, मोम आबे – हयात, मीनार, गुंबद आदि अनेक प्रतीकों को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया। उर्दू के परवाने और शमा से प्रेरित होकर ही हिन्दी में दीपक–शलभ को आदर्श प्रेमी और प्रिय के रूप में ग्रहण किया। ये प्रतीक उपयोगी सिद्ध हुए।"[13] इस युग के प्रसिद्ध ग़ज़लकारों में श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय, 'हरिऔध', नाथू लाल शर्मा

'शंकर', लाला भगवानदीन, रामप्रसाद 'बिस्मिल' आदि थे। इन ग़ज़लकारों ने युगानुरूप समाज, प्रकृति, राष्ट्र तथा अन्य विषयों से संबंधित काव्य रचना के साथ –साथ नवीन छंद अपनाने की दृष्टि से हिन्दी ग़ज़लें लिखीं।

(i) पं. श्रीधर पाठक :

पं. श्रीधर पाठक का जन्म जोन्धारी ग्राम (आगरा) उत्तर प्रदेश में सन् 1860 ई॰ में हुआ। युगानुरूप पं. श्रीधर पाठक भी खड़ी बोली हिन्दी में काव्य लेखन की ओर प्रवृत हुए। अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित होकर इन्होंने भी ग़ज़ल शैली में अनेक रचनाएँ की। पं. श्रीधर पाठक की 'सुसंदेश' नामक रचना से कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

"कहीं पे स्वर्गीय कोई बाला सुमंजु वीणा बजा रही है
सुरों के संगीत की सी कैसी सुरीली गुंजार आ रही है
कभी नई तान प्रेममय है, कभी प्रकोपन, कभी विनय है
दया है, दक्षिण्य का उदय है, अनेको बानक बना रही है।" [14]

इन पंक्तियों में श्रीधर पाठक ने रहस्यवाद का रंग भरते हुए उस अदृश्य शक्ति की कल्पना एक गायिका के रूप में प्रस्तुत करते हुए संकेत किया है कि सारे विश्व में उसी की स्वर उर्मियाँ व्याप्त हैं। निःसंदेह यह रचना ग़ज़ल शैली से प्रभावित है। जिसमें विशुद्ध हिन्दी का प्रयोग हुआ है।

(ii) अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' :

हरिऔध जी का जीवन काल (सन् 1865 ई॰ से 1947 ई॰) तक माना जाता है। आधुनिक काल का प्रथम महाकाव्य रचने वाले हरिऔध जी ने शुद्ध हिन्दी में ग़ज़लें लिखी व्यंग्यात्मक लहजे में लिखीं उनकी एक गजल की बानगी दृष्टव्य है –

"क्यों पले पीसकर किसी को तू
है बहुत पॉलिसी बुरी तेरी

हम रहे चाहते पटाना भी
पेट तुझसे नहीं पटी मेरी।"[15]

(iii) नाथूराम शर्मा 'शंकर'

इनका जन्म हरदुआगंज (अलीगढ़) में सन 1859 में हुआ। द्विवेदीयुगीन कवियों में 'शंकर जी' का अपना अलग स्थान है। इनके काव्य में देश–प्रेम, स्वदेशी प्रयोग, समाज सुधार, हिन्दी अनुराग आदि प्रमुखता से चित्रित हैं। 'शंकर जी' हिन्दी, उर्दू, फारसी तथा संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे, इसीलिए इनका स्वाभाविक सुझाव ग़ज़ल लेखन की तरफ था। 'शंकर जी' की ग़ज़ल के ये दो शे'र उल्लेखनीय हैं –

"मीन बिन मारे मर जायेंगे सरोवर में
डूब–डूब शंकर सरोज सड़ जायेंगे।"[16]

और –

"खाल उनके गोरे रूख पर दिल चुराते हैं मेरा
चाँदनी में चोर पड़ते हैं अजब अँधेरे।"[17]

(iv) लाला भगवानदीन

लाला भगवानदीन द्विवेदी युगीन ग़ज़ल परम्परा के सशक्त हस्ताक्षर थे। सन् 1866 ई॰ में जन्में लाला भगवानदीन ने 1930 तक साहित्य–सेवा की। उन्हों ने सर्वप्रथम 'हिन्दी शब्द सागर' का संपादन किया जो काशी से प्रकाशित हुआ। उसके बाद आप 'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय' में अध्यापक बने। लाला भगवानदीन द्वारा रचित ग्रन्थों में 'नवीन–बीन', 'नदी में दीन', 'वीर क्षत्राणी', वीर बालक और वीर पंचरत्न आदि प्रमुख है। आपकी रचनाओं में उर्दू छंदों का प्रयोग अधिक मिलता है। आपके उर्दू प्रेम से प्रभावित होकर रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा– "वे हिन्दी की अपेक्षा उर्दू छन्दों की आत्मा के ही अधिक निकट रहते थे और अन्त्यानुप्रास चुनते हुए उनका ध्यान काफ़ियों और रदीफ पर रहता था।"[18]

लाला भगवानदीन ने 'ग़ज़ल' की शैली अंगीकार की और अपनी कृति'वीर पंचरत्न' इसी शैली में लिखी। 'मेंहदी' पर लिखी इनकी ग़ज़ल काफी चर्चित रही उदाहणार्थ प्रस्तुत है –

"तुमने पैरों में लगाई मेंहदी
मेरी आँखें में समाई मेंहदी
है हरी ऊपर मगर अन्तस है लाल
है ये जादू की जगाई मेंहदी
चुनरी से है सवाई मेंहदी
दीन को इस हेतु भाई मेंहदी।"[19]

इस ग़ज़ल में लाला भगवानदीन ने 'मतला' और 'मकता' के साथ 'काफिया–रदीफ' का सफल निर्वाह करते हुए खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग किया। डॉ॰ केसरी नारायण शुक्ल लिखते है कि "उर्दू छंदों को अपनाने में गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' और 'लाला भगवानदीन मुख्य है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इन कवियों के उर्दू छंदों की रचनाओं में खड़ी बोली का प्रवाह और प्रभाव है।"[20]

(v) मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी का जन्म 1886 ई॰ में चिरगाँव जिला झाँसी में हुआ था। गुप्त जी पहले कवि है, जिन्होंने समसामयिक नैतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय आकांक्षाओं को अपनी वाणी देकर खड़ी बोली काव्य को युगीन चेतना से जोड़ा। 'भारत–भारती' गुप्त जी की ख्याति का मूलाधार है। गुप्त जी ने भारत–भारती के अंत में विनय शीर्षक से एक रचना ग़ज़ल शैली में लिखी –

"इस देश को है दीन बंधो! आप फिर अपनाइये
भगवान भारत वर्ष को फिर पुण्य–भूमि बनाइये
जड़ तुल्य जीवन आज इसका विध्न बाधापूर्ण है
है! रम्ब अब अवलम्ब देकर विध्न हर कहलाइये।"[21]

भारत–भारती ' के बारे में अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए डॉ॰ हरदयाल ने कहा है – "यों तो भारत–भारती में गुप्त जी ने अंतिम कविता को ग़ज़ल बनाने की कोशिश की। इसकी पहली दो पंक्तियों में अन्त्यानुप्रास 'मतले' के अनुकूल और बाद की हर दूसरी पक्तियों में अन्त्यानुप्रास मिलता है। लेकिन इसके अतिरिक्त गुप्त जी की यह रचना ग़ज़ल की अन्य शर्तो को पूरा नहीं करती।"[22]

(vi) गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'

गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' का जीवन काल 1883 ई॰ से 1972 ई॰ तक माना जाता है। 'त्रिशुल' उपनाम से लिखने वाले 'सनेही जी' की ग़ज़लें 'त्रिशूलतरंग' नामक कृति में संग्रहीत है। 'सनेही' जी की रचनाओं पर उर्दू के छंदों का प्रभाव है। उन्होंने उर्दू के छंदों हिन्दीकरण भी किया हुआ है। सनेही जी ने राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत ग़ज़लें लिखी राष्ट्रीय एकता और कौमी एकता को ग़ज़ल के मिसरे बना सनेही जी लिखते है –

मुनक्कश अपने दिल पर हिन्द की तस्वीर होने दो
कदम से उसके अपने सीने पर तनवीर होने दो
कभी उलझन न डालो कौम के कामों में तुम कोई
तुम्हारे दर्दो गम की होती है तदबीर होने दो।"[23]

(vii) पं. जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी'(सन् 1865 ई॰ से 1952 ई॰ तक)

द्विवेदी युग में हिन्दी ग़ज़ल के सफर को बढ़ाने वाले नामों में एक प्रमुख नाम पं. जगदंबा प्रसाद 'हितैषी' का भी है। फारसी भाषा से परिचित होते हुए भी ये हिन्दी के अनन्य उपासक थे। उन्होंने धनाक्षरी और सवैया छंदों के साथ–साथ ग़ज़ल शैली को भी अपनाया। 'कल्लोलिनी', 'बैकाली' एवं 'दर्शना' इनकी प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं। 'हितैषी' जी की ग़ज़लों में स्वराज्य, देश–प्रेम एवं क्रान्ति के स्वर मुखरित हुए हैं। स्वतंत्रता दिवस पर आज भी उद्घोषित की जाने वाली कालजयी पंक्तियों के रचयिता पं. जगदंबा प्रसाद 'हितैषी' ही हैं, जो उनकी ग़ज़लों की बानगी भी प्रस्तुत करती

हैं –

"शहीदों की चिताओं पर लगेगें हर बरस मेले
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।[24]

(viii) रामप्रसाद 'बिस्मिल'

क्रांन्तिकारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' का जीवन काल (सन् 1867 ई॰ से 1927 ई॰ तक माना जाता है। 'बिस्मिल' ने अपनी गजलों के माध्यम से स्वतंत्रता सैनानियों में क्रान्ति की मशाल जलाई। उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ स्वतंत्रता की आवाज बुलन्द करने का कार्य अपनी गजलों के माध्यम से किया। 'बिस्मिल' की गजलों ने स्वतंत्रता सैनानियों के रक्त में वह उबाल पैदा किया कि वे हँसते–हँसते भारत–माता की रक्षा के लिए फाँसी पर चढ़ गये। रामप्रसाद 'बिस्मिल' की गजलों में क्रांति की ज्वाला है। उदाहरणार्थ –

"बला से हमको लटकाये अगर सरकार फाँसी से
लटकते आये अक्सर पैकरे–ईसार फाँसी से
लबे दम भी न खोली जालिमों ने हथकड़ी मेरी
तमन्ना थी कि करता मैं लिपटकर प्यार फाँसी से।[25]

'बिस्मिल' की ग़ज़लें जहाँ ग़ज़ल के शिल्प पर पूरा–पूरा खरा उतरती हैं, वहीं ग़ज़लों में खड़ी बोली का प्रयोग कर उन्होंने ग़ज़लों का नया आयाम स्थापित किया। इस मायने में वे एक सिद्धहस्त ग़ज़लकार हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदीयुगीन कवियों पर भी हिन्दी ग़ज़ल की पूर्ववर्ती स्थापित परम्परा का प्रभाव निरन्तर चलता रहा। लाला भगवानदीन, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', पं. जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी' और राम प्रसाद 'बिस्मिल' जैसे सिद्धहस्त ग़ज़लकारों ने हिन्दी ग़ज़ल के सफर को जो आयाम प्रदान किये। ग़ज़ल अब राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में एक हथियार बन अवाम को जगाने का कार्य बखूबी करने लगी। इस युग में ग़ज़ल का प्रसार–प्रचार इतना बढ़ गया था कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त भी उनके

प्रभाव में आने से नहीं बच सके। इस युग की ग़ज़लों में प्रकृति–प्रेम, सामाजिक परिस्थितियों पर व्यंग्य, स्वतंत्रता एवं क्रांति के विविध स्वर मुखरित हुये हैं।

2.2.3 छायावादी युगीन ग़ज़लकार

द्विवेदी युग के बाद हिन्दी काव्य में जिस नयी धारा का विकास हुआ उसे 'छायावाद' के नाम से जाना जाता है। हिन्दी साहित्य के प्रमुख आलोचक डॉ॰ नगेन्द्र ने छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह मानते हुए यह स्वीकार किया कि 'छायावाद' एक विशेष प्रकार की भाषा पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावनात्मक दृष्टिकोण है। इसी भावनात्मक दृष्टिकोण के परिणाम स्वरूप छायावादी काव्य में गीत–पद्धति का विशेष प्रयोग दिखलायी देता है। यह गीतात्मकता छायावादी काव्य का प्राण है और यही उसे हिन्दी ग़ज़ल के नज़दीक लाती है।

द्विवेदी युग के बाद हिन्दी कविता दो धाराओं में बही। एक संस्कृत की शब्द–लता से ओत–प्रोत थी तो दूसरी उर्दू की तीव्रता लेकर आयी। संस्कृत बहुलता परिवार में छायावादी काव्य रचा गया जिसमें में प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा के नाम प्रमुख हैं। उर्दू सम्मिश्रणयुक्त दूसरी धारा राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत थी जिसमें माखन लाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बाल कृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान, और रामधारी सिंह दिनकर के नाम प्रमुख हैं।

द्विवेदी युग में हिन्दी ग़ज़ल लेखन जो स्वरूप ग्रहण कर रहा था उसका उत्तरोत्तर विकास छायावादी काल में भी दिखायी देता है। यह अंग्रेजी दासता से मुक्ति के लिए किये जा रहे प्रयासों का समय था। उर्दू ग़ज़ल भी अब राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत होकर लिखी जा रही थी। आज जब छायावादी काव्य में राष्ट्रीयता के स्वर परवर्ती शोधकर्ताओं ने तलाश लिये हैं, ऐसे में छायावादी काल की हिन्दी ग़ज़ल को कैसे अलग माना जा सकता है। समकालीन हिन्दी के विद्वान अध्येता डॉ॰ सरदार मुजावर ने छायावादी ग़ज़लों पर शोध कार्य कर यह प्रमाणित कर दिया कि इस काल में भी हिन्दी ग़ज़ल लेखन हो रहा था। अपनी शोध पुस्तक 'हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल' में डॉ॰ सरदार मुजावर लिखते हैं – "हिन्दी ग़ज़लों पर मैं लगातार शोधपूर्ण एवं समीक्षात्मक दृष्टि से काम कर रहा हूँ इस सन्दर्भ में एक दिन प्रसाद

एवं निराला की ग़ज़लों को पढ़ते हुए मन में यह विचार आया कि छायावादी युग में भी खूब ग़ज़लें लिखी गयी, पर इनकी तरफ शोधार्थियों तथा समीक्षकों का जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था, उस मात्रा में नहीं जा पाया है।"[26] छायावादी ग़ज़लों के विषय वैविध्य पर वे लिखते हैं कि "हिन्दी की छायावादी ग़ज़लों का विषयगत परिप्रेक्ष्य विविधतापूर्व रहा है। ये विविधताएं छायावादी ग़ज़ल को एक विशिष्टता प्रदान करती है। छायावादी ग़ज़लों ने जहाँ एक ओर हिन्दी कविता के विकास में योगदान दिया है, वहाँ दूसरी ओर इन ग़ज़लों ने हिन्दी ग़ज़ल के विकास में भी उतना ही महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।"[27]

छायावादी युग में जयशंकर प्रसाद और निराला ने ग़ज़लें लिखी। जयशंकर प्रसाद और निराला की ग़ज़लें शिल्प और बहर की कसौटी पर भी खरी उतरती है। निराला जी के साहित्य का गहन अध्ययन करने वाले विद्वान डॉ॰ रमेश चन्द्र मेहरा लिखते हैं – "जहाँ निराला उर्दू–प्रधान ग़ज़लों के द्वारा इस भाषा संबंधी अपनी जानकारी और क्षमता को प्रकट करते हैं, वहीं दूसरी ओर हिन्दी पाठक को इक नई छंद शैली भी भेंट करते हैं, जिसमें संस्कृत की पदावली उर्दू पदों के साथ जुड़ी हुई है। दोनों ही भूमिकाओं पर निराला जी का यह उपक्रम उनकी प्रयोगधर्मी काव्य साधना का परिणाम कहा जा सकता है।"[28]

(i) जयशंकर प्रसाद (1889 ई॰ से 1937 ई॰ तक)

छायावादी युग के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद का जन्म सन् 1889 ई॰ वाराणसी में हुआ। अपनी अंतिम स्वांस तक साहित्य–साधना में लीन रहे प्रसाद का देहावसान 15 नवम्बर, 1937 को हुआ। अपने अल्पायु जीवन–काल में प्रसाद ने हिन्दी साहित्य की कालजयी कृति 'कामायनी' की रचना की। प्रसाद का काव्य लेखन सन् 1906 से आरम्भ होता है। 'भारतेन्दु' पत्रिका में 'कलाधर' नाम से इनकी प्रथम काव्य रचना प्रकाशित हुई। ब्रज भाषा में लिखी इनकी प्रारम्भिक रचनाएं 'चित्राधार' में सन् 1916 ई॰ में प्रकाशित हुई। 'प्रेम–पथिक', 'महाराणा का महत्व', 'कानन–कुसुम' झरना आदि उनकी कविताओं के संग्रह हैं। 'आँसू', 'लहर' और 'कामायनी' उनकी बाद की रचनाएं हैं। प्रसाद को हिन्दी जगत में एक कवि, नाटककार, कहानीकार और उपन्यासकार

के रूप में जाना जाता है, लेकिन युगानुरूप प्रवृत्ति के अनुसार उन्होंने ग़ज़लें भी लिखी। संस्कृतनिष्ठ भाषा में हिन्दी ग़ज़लें लिख प्रसाद ने हिन्दी ग़ज़ल परम्परा के विकास में अपना योगदान दिया। प्रसाद की ग़ज़लों की विशेषता है कि वे शिल्प की कसौटी पर खरी उतरती है। उदाहरणार्थ –

"अस्ताचल पर युवती संध्या की खुली अलक धुँधराली है
लो माणिक–मदिरा की धारा अब बहने लगी निराली है
भर ली पहाड़ियों ने अपनी झीलों की रत्नमयी प्याली
झुक चली चूमने वल्लरियों से लिपटी तरू की डाली है।"[29]

एक ओर उदाहरण द्रष्ट्रव्य है –

"अरूण अभ्युदय से मुदित मन प्रशान्त सरसी में खिल रहा है।
प्रथम पत्र का प्रसार करके सरोज अलीगन से मिल रहा है।
गगन में संध्या की लालिमा से किया संकुचित बदन था जिसने
दिया ना मकरन्द प्रेमियों को गले उन्हीं के वो मिल रहा है।"[30]

लम्बी बहर की ग़ज़लें लिखने में सिद्धहस्त प्रसाद की गजलों में प्रकृति चित्रण, उदात्त प्रेम का सुन्दर निरूपण हुआ है। उनकी ग़ज़लों में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति भी हुई है। देश की दुर्दशा से उभारने का आहवान प्रसाद ने अपनी इस ग़ज़ल के माध्यम से किया है –

"देश की दुर्दशा निहारोगे
डूबते को कभी उबारोगे
दीन जीवन बिता रहे अब तक
क्या हुए जा रहे विचारोगे।"[31]

(ii) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (1896 ई॰ से 1961 ई॰ तक)

छायावादी काव्य के आधार स्तम्भों में से एक सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म 1896 ई॰ में महिषादल स्टेट मदनीपुर बंगाल में हुआ।

1961 ई॰क अनवरत् साहित्य साधना में लीन निराला का जीवन संघर्ष का पर्याय रहा। जीवन–दृष्टि और भाषा–प्रयोग के धरातल पर निराले रहे निराला जी की गजलों में जहाँ प्रेम और श्रृंगार का समावेश है, वहीं सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार करने वाली वाणी भी है। 'कुकुरमुत्ता' 'नये पत्ते' और 'बेला' काव्य संग्रहों में निराला की ग़ज़लें देखने को मिलती हैं। विशेष रूप से 'बेला' में जिसमें निराला जी की 36 ग़ज़लें संग्रहीत हैं। 'बेला' की भूमिका में स्वयं निराला जी स्वीकार किया है कि "'बेला' नये गीतों का संग्रह है। प्रायः सभी तरह के गाये गीत इसमें हैं। इसमें भाषा सरल एवं मुहावरेदार है। गद्य करने की आवश्यकता नहीं। देश भक्ति के गीत भी हैं। इससे भी बढ़कर नयी बात यह है कि अलग–अलग बहरों की ग़ज़लें भी हैं जिसमें फारसी छंद शास्त्र का निर्वाह किया गया है। पाठकों की हिन्दी मार्जित हो जाएगी।"[32]

इसके अलावा पं. नारायण चतुर्वेदी के सम्पादन में प्रकाशित 'सांध्यकाकली' में भी निराला जी की ग़ज़लें मिलती हैं। निराला जी ने प्रेम एवं श्रृंगार के अतिरिक्त आध्यात्मिकता, सामाजिकता, राष्ट्रीयता एवं प्रकृति चित्रण की ग़ज़लें लिखी। निराला ने स्वानुभूत जीवनानुभव को ग़ज़लों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। विभिन्न विषयों पर निराला जी की ग़ज़लों के कुछ शे'र दृष्टव्य हैं –

प्रेम एवं श्रृंगार परक :

"तुम्हें देखा तुम्हारे स्नेह के नयन देखे ;
देखी सलिला नलिनी के सलिल शयन देखे।"[33]

"स्नेह की रागिनी बजी देह की सुर–बहार पर
वर विलासिनी सजी प्रिय के अश्रुहार पर।"[34]

आध्यात्मिकता :

"जीवन प्रदीप चेतन तुम से हुआ हमारा
ज्योतिष्क का उजाला ज्योतिष्क से उतारा।"[35]

और –

"साधना आसन हुई संसार के व्यापार में
सत्य की अनवद्यता से आ गये विस्तार में।"[36]

प्रगतिवादी विचारधारा :

"भेद कुल खुल जाय वह सूरत हमारे दिल में है
देश को मिल जाय जो पूँजी तुम्हारी मिल में है
हार होंगे हृदय के खुलकर सभी गाने नए
हाथ में आ जाएगा वह राज जो महफिल में है।"[37]

निराला की गजलों की भाषा पर विचार करते हुए डॉ॰ सरदार मुजावर लिखते हैं – "छायावादी कवि निराला की गजलों की भाषा के तीन आयाम स्पष्ट होकर सामने आते हैं। उनकी ग़ज़लों का पहला आयाम है – अरबी, फारसी, उर्दू शब्दावली का। निराला की गजलों की भाषा का दूसरा आयाम है शुद्ध हिन्दी शब्दों का प्रयोग और तीसरा आयाम है प्रचुर मात्रा में संस्कृत शब्दों का प्रयोग।"[38] इस प्रकार निराला की ग़ज़लों में संस्कृत हिन्दी और उर्दू की भाषायी त्रिवेणी प्रवहमान है जिसके कारण निराला की ग़ज़लें सहज बन पड़ी हैं, वहीं वह उतनी ही चित्ताकर्षक भी। निश्चित ही निराला जी ने छायावादी ग़ज़ल को प्रतिष्ठित करने का उल्लेखनीय कार्य किया। इसलिए कतिपय विद्वान निराला से ही हिन्दी ग़ज़ल की विधिवत् शुरूआत मानते हैं।

प्रसाद और निराला के अतिरिक्त छायावादी युग में ग़ज़ल लेखन में माखनलाल चतुर्वेदी का भी नाम आता है। छायावादी युग की ग़ज़ल रचना पर टिप्पणी करते हुए डॉ॰ रमेश चन्द्र मेहरा लिखते हैं – इस युग में जब–जब किसी कवि ने उर्दू में काव्य लिखने का उपक्रम किया है, तो इस दृष्टि में नहीं कि वह उर्दू के चमत्कार को हिन्दी में उतारे, वरन् इसलिए उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है कि उसे लोक जीवन के अधिक समीप लाया जा सके। इसीलिए हिन्दी कवियों ने उर्दू की विषय वस्तुओं से अस्पृश्य रहकर उनके छंदों और मुहावरों को अपनाने का प्रयत्न किया। इस

प्रकार इस सम्पूर्ण युग में हिन्दी कवियों ने उर्दू के कला–पक्ष से थोड़ी बहुत प्रेरणा ली है, उसके विषयवस्तु से नहीं।"[39]

2.2.4 उत्तर छायावादी युगीन ग़ज़लकार

उत्तर छायावादी युग में जिन रचनाकारों ने हिन्दी ग़ज़ल को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, उनमें रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', नरेन्द्र शर्मा, हरि कृष्ण प्रेमी, जानकी वल्लभ शास्त्री, बलवीर रंग, रामस्वरूप 'सिंदूर' आदि प्रमुख हैं। छायावादी युग में प्रसाद और निराला ने हिन्दी ग़ज़ल को नये आयाम दिये, उत्तर छायावादी युग के ग़ज़लकारों ने उसे लोकप्रिय बनाने का कार्य किया।

(i) रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

उत्तर छायावादी युग में जिन कवियों ने हिन्दी ग़ज़ल को आगे बढ़ाया है, उनमें प्रमुख नाम रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का है। अंचल जी पर उर्दू रसिकता का बहुत प्रभाव पड़ा। शायरों को यदि उर्दू हिन्दी का छायावादी रूप मिल जाता तो उसका जो रूप होता वही अंचल जी की ग़ज़लों में निखरकर आता है। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित होने के साथ–साथ अंचल जी का एक ग़ज़ल संग्रह 'इन आवाजों को ठहरालो' नाम से प्रकाशित हुआ। अंचल जी की ग़ज़लें डॉ॰ शेरजंग गर्ग द्वारा सम्पादित 'नया जमाना : नयी ग़ज़ल' में भी शामिल है। अंचल जी की ग़ज़लों का स्वर प्रेम के साथ सामाजिक बोध का भी है। उनकी एक ग़ज़ल दृष्टव्य है –

"गीत का मुखड़ा तुम्हारे नाम का मोहताज है
हर कड़ी उसकी तुम्हारे रूप का अंदाज है
भूलकर औकात अपनी इस सरे बाजार अब
आदमी बनने लगा क्यों आसमां का राज है।"[40]

(ii) हरिकृष्ण प्रेमी

उत्तर छायावादी युग में ग़ज़ल लेखन को नया आयाम देने वाले ग़ज़लकार हैं – हरि कृष्ण प्रेमी। उनके काव्य संकलन 'रूप दर्शन' में 139

तथा 'रूपरेखा' में 152 ग़ज़लें लिखकर स्वयं को ग़ज़लकार के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। अपनी हिन्दी ग़ज़लों के संदर्भ में वे स्वयं स्वीकार करते हैं – "उर्दू की ग़ज़ल और हिन्दी के गीतों का सम्मिश्रण मैंने अपनी रचनाओं में किया है। ग़ज़ल को हिन्दी साहित्य में लाने का प्रयास तो बहुत पहले से चल रहा है। इस उर्दू की बेटी से मैंने भी मुहब्बत की है।मैं इसे मना रहा हूँ। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि यह मुझसे कुछ प्रसन्न तो हुई है।"[41] बिना मतके की ग़ज़लें लिखने वाले हरि कृष्ण प्रेमी की ग़ज़लों में प्रेम श्रृंगार एवं सुरा–सुन्दरी के दर्शन होते हैं लेकिन शिल्प की दृष्टि से इनकी ग़ज़लें शिथिल प्रतीत होती हैं। प्रेम वियोग की पीड़ा का एक उदाहरण प्रस्तुत है –

"दर्द दिल की धड़कनों में कह रहा है रात–दिन कुछ
कौन जाने कह सकेगा दिल कभी पूरी कहानी
अश्रुओं ने भी बरस कर वेदना कम की न दिल की
पा रही उद्दाम यौवन याद की उठती जवानी"।[42]

(iii) जानकीवल्लभ शास्त्री

शास्त्री जी की ग़ज़लें छायावादोत्तर युग की साहित्यिक विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। इनकी ग़ज़लों में प्रेम के विविध स्वरूपों का चित्रण मिलता है। शास्त्री जी की ग़ज़लों के बारे में विचार करते हुए डॉ॰ आनंदनारायण शर्मा ने लिखा है कि, "शास्त्री जी की ग़ज़लों की भाव–भूमि व्यापक है और वहाँ प्रेम की आंतरिक वेदना से लेकर सामाजिक चेतना तथा व्यग्यं विच्छिति तक सब कुछ है।"[43]

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने विशुद्ध हिन्दी में ग़ज़लें लिखी। उदाहरण –

"द्वार पर तेरे कभी आया नहीं
होगा नभ, मैंने सर झुकाया नहीं
कर्म करना है धर्म क्या कुछ ओर
ज्ञान कहता है कर्म भाया नहीं।"[44]

इसी ग़ज़ल के एक शे'र में हिन्दी–उर्दू के मसले पर विचार करने हुए भेद–भाव मिटाने के लिए लिखते हैं –

"गीत–उर्दू में, लिखी ग़ज़ल हिन्दी
उफ! लड़ाना जबान आया नहीं।"[45]

(iv) बलवीर सिंह 'रंग'

छायावादोत्तर युग में ग़ज़ल के सशक्त हस्ताक्षरों में बलवीर सिंह 'रंग' का नाम प्रमुख है जिन्होंने उर्दू और हिन्दी दोनों जबानों में ग़ज़लें लिखी। 'रंग' की ग़ज़लें 'गंध रचती छंद' संग्रह में समाहित है और डॉ॰ शेरजंग गर्ग द्वारा सम्पादित 'हिन्दी ग़ज़ल शतक' 2006 में भी इनकी ग़ज़लें संकलित हैं। 'रंग' की ग़ज़लों में परम्परागत उर्दू ग़ज़ल जैसे काव्य–प्रवाह एवं शिल्प के दर्शन होते हैं, जिनमें प्रेम, श्रृंगार, प्रकृति चित्रण के साथ–साथ आधुनिक–युग बोध का चित्रण किया गया है। अपनी रचनाओं के संदर्भ में रंग जी कहते है – "कविताओं के संबंध में रचनाकार के मंतव्य को ही अंतिम निर्णायक नहीं माना जाना चाहिए। जागरूक पाठक सहृदय श्रोता और नीर–क्षीर विवेचक–समालोचक ही किसी भी कृति को अपनी सहज स्वीकृति के कृत–कृत्य करने के अधिकारी है।"[46] अपने को अरूप और अनाम बताते हुए वे अपने आत्मकथ्य में कहते है –

"मेरा क्या और मेरी हस्ती क्या जिसकी तुम देखभाल करते हो
रंग से चाहते हो कि रूप धरे यार तुम भी कमाल करते हो।"[47]

रंग की ग़ज़लों की खास विशेषता है; ग़ज़ल के मकते में अपने तखल्लुस का प्रयोग जो उन्होंने बड़े ही सार्थक रुप में प्रयुक्त किया। 'रंग' की ग़ज़लों के कुछ मकते दृष्टव्य है जिसमें उन्होंने अपने तखल्लुस का प्रयोग विशिष्ट अर्थो में किया है –

"अपनी–अपनी वज्म की रंगीनियाँ
रंग पे इल्जाम आखिर किसलिए"[48]

और –

"तुम्हारे रंग की ये रुप रेखा
बड़ी हत्भागिनी है तुम कहाँ हो"[49]

और –

"रंग अब और है जमाने का
शायरी से गुजर कहाँ होगी"[50]

इनके अतिरिक्त भी कई और रचनाकारों ने भी इस युग में ग़ज़लें लिखने का प्रयास किया। इससे स्पष्ट है कि छायावादोत्तर काल जिसे हिन्दी में स्वच्छंदतावादी एवं राष्ट्रीय काव्य धारा का युग भी कहा जाता है, में भी हिन्दी ग़ज़ल परम्परा का विकास देखने को मिलता है। अब हिन्दी ग़ज़ल में भी परिपक्वता के दर्शन होने लगते। केवल भाव के स्तर पर नहीं, शिल्प के स्तर पर भी। छायावादोत्तर ग़ज़ल आने वाले ग़ज़लकारों के लिए सुदृढ़ भाव–भूमि तैयार करती है, इसीलिए छायावादोत्तर ग़ज़ल और ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है।

2.2.5 स्वातंत्र्योत्तर ग़ज़लकार

हिन्दी ग़ज़ल के लिए जो आधार भूमि छायावादोत्तर काल के ग़ज़लकारों ने तैयार की थी उसकी बुनियाद पर हिन्दी ग़ज़ल को उच्च शिखरों पर पहुँचाने की जिम्मेदारी परवर्ती रचनाकारों पर थी जिसका निर्वाह उन्होंने बखूबी किया। प्रयोगवाद एवं नई कविता के साथ नवगीत और हिन्दी ग़ज़ल ने न केवल हिन्दी साहित्य के भण्डार में श्रीवृद्धि की वरन् उसे नये तेवर भी प्रदान किये। अब हिन्दी ग़ज़ल उर्दू की परिच्छाया से बाहर निकल अपनी पहचान बनाने का प्रयास करती दिखलाई देती है। "हिन्दी ग़ज़ल–दशा और दिशा" में डॉ॰ नरेश निसार लिखते हैं – "शमशेर से पहले के हिन्दी ग़ज़लकार उर्दू वालों की होड़ में ग़ज़ल कहते रहे, लेकिन शमशेर ने उर्दू ग़ज़ल में नाम पैदा करने की इच्छा से नहीं बल्कि उर्दू की इस काव्य विधा को हिन्दी में व्यवहत करने के इरादे से ग़ज़ल रचना की, शायद यही कारण है कि

उनकी ग़ज़ल में गज़लियत के साथ–साथ हिन्दी का अपना मुहावरा भी उभरा जो उर्दू में व्यवहत नहीं है।"[51]

स्पष्ट है प्रयोग वाद एवं नई कविता की अत्यधिक बौद्धिकता, शुष्कता और गेयता के अभाव में जो कविता जनसाधारण से दूर होती जा रही थी, उसे हिन्दी ग़ज़ल ने कथ्य की नूतनता एवं शिल्प की सुदृढ़ता के साथ सहारा दिया। हिन्दी ग़ज़ल का विवेचनात्मक, अनुशीलन करने वाले विद्वान अध्येता डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष' लिखते है कि – "इस युग में ग़ज़ल का प्रभाव बढ़ गया है और इसका क्षेत्र विस्तृत हो गया है। आयाम खुले हुए दृष्टिगोचर होते है। काव्य की रुपगत विविधता जितनी इस युग में देखने को मिलती है, उतनी किसी भी युग में देखने नहीं मिली। ग़ज़लें भी इस युग में बहुत मात्रा में लिखी गयी। छुट–पुट लेखन की दृष्टि से तो ग़ज़लें भारतेन्दु काल से ही लिखी जाती रही है, किन्तु ग़ज़ल के साहसिक प्रयोग और उनका पुनर्संस्कार प्रयोगवादी युग में हुआ।"[52]

इस युग के ग़ज़लकार कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से नवीनता के अन्वेषी रहे है। डॉ॰ नरेश निसार हिन्दी ग़ज़ल का उद्‌भव ही स्वातंत्र्योत्तर काल से मानने के पक्षधर है, तो इसका महत कारण यही है कि इस युग से हिन्दी ग़ज़ल हिन्दी की अपनी अस्मिता को लेकर आगे बढ़ती है। इस युग में हिन्दी ग़ज़ल की विकास यात्रा को आगे बढ़ाने वाले ग़ज़लकारों में शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन शास्त्री जैसे समर्थ ग़ज़लकार है।

(i) शमशेर बहादुर सिंह

स्वातंत्र्योत्तर युग में हिन्दी ग़ज़ल के आकाश में एक ऐसा सितारा चमका जिसने हिन्दी के पाठकों को ग़ज़ल के वास्तविक मिजाज से परिचित कराया उसका नाम था – शमशेर बहादुर सिंह 'शमशेर'। शमशेर का जन्म 1911 ई॰ में हुआ। हंस (काशी) एवं नया साहित्य (मुम्बई) में कार्य करने के उपरांत 'हिन्दी–उर्दू कोश' का निर्माण किया। 'उदिता' 'बात बोलेगी हम नहीं', तथा कुछ और कविताएं 'नाम' काव्य संग्रहों में इसकी ग़ज़लें संकलित हैं। शमशेर का मानना है कि "ग़ज़ल एक लिरिक विधा है जिसकी कुछ

अपनी शर्तें हैं अपना प्रतीकवाद, अपनी जीवंत परम्परा है।"[53] शमशेर की ग़ज़लों का मूल स्वर रूमानी है। जहाँ तक शमशेर की ग़ज़लों का सवाल है, उर्दू–हिन्दी के बीच की दीवार को स्वीकार नहीं करते; प्रेम वाणी को ही मधुर सत्य मानते हैं। उनकी कोशिश दोनों भाषाओं के बीच सेतु बनाने की है, इस दिशा में वे सफल सिद्ध हुए हैं। इस बदलाव को शमशेर ग़ज़ल के शे'रों में कुछ यूँ अभिव्यक्त करते हैं –

"वही उम्र का एक पल कोई लाये।
तड़पती हुई सी ग़ज़ल कोई लाये
हकीकत को लाये तखेशुल से बाहर
मेरी मुश्किलों का जो हल कोई लाये।"[54]

दीन और दुनियां के फिक्र को शमशेर कुछ इस तरह अनुभव करते हैं –

"ईमान गड़बड़ी में है दिल के हिसाब से
लिक्खा हुआ कुछ और मिला है किताब में
दिल जिनमें ढूँढ़ता था कभी अपनी दास्तां
वो सुर्खिया कहां है मुहब्बत के बस में"[55]

शमशेर ने प्रणय के मार्मिक चित्रों में दर्द का रंग भरा है। मुक्तिबोध का तत्संबंधी कथन है कि – प्रणय जीवन के विविध और कोमल चित्र तथा प्रणय जीवन में भाव–प्रसंगों के अभ्यंतर की विविध सूक्ष्म संवेदनाओं के गुण चित्र प्रस्तुत करने में शमशेर की अप्रतिम उपलब्धियाँ स्वीकार की गई हैं।[56] पत्नी और प्रेयसी के प्रेम की रिक्तता का अनुभव शमशेर ने किया है। प्रेम के खालीपन के अनुभव, निजी जीवन के अकेलेपन को शमशेर कुछ यूँ अभिव्यक्त करते हैं –

"अपने दिल का हाल यारों हम किसी से क्या कहें
कोई भी ऐसा नहीं मिलता जिसे अपना कहें
हो चुकी जब खत्म अपनी जिन्दगी की दास्तां
उनकी फरमाईश हुई है फिर इसको दोबारा कहें" ।[57]

आम आदमी की पीड़ा को जितनी सहज और सरल अभिव्यक्ति ग़ज़ल में हो सकती है, उतनी नयी कविता अथवा प्रयोगवादी कविता के माध्यम से नहीं इसीलिए प्रयोगवादी काल में भी शमशेर ने ग़ज़ल को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। शमशेर के काव्य का गहन अध्ययन करने वाली विदूषी रंजना अरगड़े ने भी कहा है – हिन्दी में सफल ग़ज़लें बहुत कम शायरों ने कही हैं। शमशेर की ग़ज़लों का अध्ययन करने पर इस बात को विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि शमशेर एक सफल ग़ज़लों के शायर है।"[58] डॉ॰ रंजना अरगड़े के निष्कर्ष को आगे बढ़ाते हुए वरिष्ठ ग़ज़लकार –आलोचक नरेन्द्र वशिष्ठ लिखते हैं कि –"शमशेर पहले कवि हैं जिन्होंने हिन्दी पाठकों को ग़ज़ल के सही रूप से परिचित कराया। उनकी अधिकतर ग़ज़लों में नाजुक–ख्याली, मर्म को छूने की क्षमता, भाषा का लोच और बहरों का निर्वाह दृष्टिगत होता हैं। ग़ज़ल में ये खुसूसियात लाने के लिए वे ग़ज़ल की परम्परा पर निर्भर करते हैं।"[59]

शमशेर की ग़ज़लों की भाषा की बात करें तो वह उर्दू की परम्परा का निर्वाह करती है। उर्दू से आये हुए शब्द हिन्दी में आयतित नजर नहीं आते। कवि का भाषायी दृष्टिकोण समन्वयकारी रहा है। इस संदर्भ में रामस्वरूप चर्तुर्वेदी का विचार है – "शमशेर ने दोनों काव्य भाषाओं में अलग–अलग रचना की और दोनों के वैशिष्ट्य को यद्यपि बिना समझे मिलाया भी। कवि के सन्दर्भ में स्पष्ट ही महत्व, विश्लेषण का नहीं संश्लेषण का है।"[60]

(ii) त्रिलोचन शास्त्री

ग़ज़ल के सिद्ध हस्ताक्षरों में त्रिलोचन शास्त्री का नाम भी आता है। त्रिलोचन ने ही सबसे पहले शमशेर के साथ मिलकर हिन्दी ग़ज़ल के लिए नया वितान रचा –

"बिस्तरा है न चारपाई है, जिन्दगी खूब हमने पायी है
कल अंधेरे में जिसने सर काटा, नाम मत लो हमारा भाई है।"[61]

जैसी आधुनिक जमीन से ग़ज़ल कहने वाले त्रिलोचन शास्त्री की ग़ज़लें "गुलाब और बुलबुल" संकलन में संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त डॉ॰ शेरजंग गर्ग द्वारा सम्पादित 'हिन्दी ग़ज़ल शतक' में भी आपकी ग़ज़लें संकलित हैं। त्रिलोचन की ग़ज़लें जीवनानुभूति से अनुप्राणित हैं इनकी ग़ज़लों में जनभावना; का, जनपदीय अनुभवों का, संस्कारों का व जनमानस का चित्र उभरा है। प्रकृति के उत्तेजक पक्ष फागुन, बसंत, वर्षा, पक्षियों एवं फूलों का यथार्थ चित्रण इनकी ग़ज़लों में दिखलाई देता है। प्रकृति की निर्वचनीय सुंदरता उनकी ग़ज़लों में इस प्रकार मुखरित है –

"खेती हुई तैयार रंग भी निखर चला
कुछ वायु ने समझा के कहा आ गया बसंत
चौताल की लहर में बोल ढ़ोल के उठे
गाँवों ने फाग गा के कहा आ गया बसंत।"[62]

त्रिलोचन का ग़ज़लें मनुष्य के प्रति सद्भावना का संदेश देती है। कवि मनुष्य के प्रति सहानुभूति का पक्षधर रहा है। उन्होंने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से दर्द को भी वाणी प्रदान की। आम–आदमी का दुःख–दर्द त्रिलोचन को अत्यधिक पीड़ित करता है। वे सोचते है कि यह जीवन भी कोई जीवन है जिसमें दुःख ही दुःख है। इसी दर्द को वे ग़ज़ल में इस प्रकार अभिव्यक्त करते है –

" हाल पतला है मेरा, तुझसे बताऊँ तो क्या
दुःख पुराना है नई बात सुनाऊँ तो क्या
ढंग आता नहीं गीत भी गाऊँ तो क्या
दर्द पहलु में लिए तेरे घर आऊँ तो क्या।"[63]

त्रिलोचन शास्त्री की ग़ज़लों के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष' ने कहा है – "त्रिलोचन शास्त्री की ग़ज़लों का कलेवर अधिक साफ – सुथरा और शास्त्रीय पाबंदी से युक्त है किन्तु कथ्य लचर होने के कारण वे प्रभावपूर्ण नहीं बन पाई है। ऐसा लगता है जैसे ग़ज़ल की पार्थिव देह बिना आत्मा (रूह) के निष्प्राण और स्पंदनहीन है।"[64]

त्रिलोचन की भाषा पर अपने विचार प्रकट करते हुए डॉ॰ नरेश निसार भी डॉ॰ शैलेष की बात को आगे बढ़ाते हैं और लिखते हैं –

"त्रिलोचन की ग़ज़लों में भाषा का लोच अनुपस्थित रहा तथा उनके शे'र सपाट बयानी बन गए, यही हाल ग़ज़ल कहने वाले अधिकतर कवियों का रहा।"[65] दरअसल स्वातंत्र्योत्तर युग में जब काव्य की भाषा आधुनिक युग बोध को कथ्य बनाकर प्रस्तुत कर रही थी तो वह अपने कोमल कांत स्वरूप को छोड़कर यथार्थ की रूक्ष भूमि पर अवतरित हुई, ऐसे में भाषा का दुरूह होना स्वाभाविक है। ऐसे में जब हिन्दी कवियों ने ग़ज़लें लिखी तो स्वाभाविक रूप से नई कविता की भाषा को अपनाया! ग़ज़ल में नाजुक मिजाजी तलाशने वाले पाठकों को वह अखरी भी लेकिन यहाँ से हिन्दी ग़ज़ल अपने वर्तमान तेवर को ग्रहण करती है। स्वातंत्र्योत्तर युग के ग़ज़लकारों ने युगानुरूप यथार्थवादी बोध को प्रस्तुत करने के लिए भाषा की कोमलकांत पदावली एवं प्रसाद तथा माधुर्य गुण को छोड़कर 'ट' वर्ग एवं ओज गुण को अपनाया जिसमें कि उस दौर की परिस्थितियों को भली–भाँति चित्रित किया जा सके।

***

: संदर्भ सूची :

1. हिन्दी ग़ज़ल उद्‌भव और विकास, डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना,पृ॰सं॰ 34
2. अमीर खुसरो – भावनात्मक एकता के अग्रसर, डॉ॰ अशोक कुमार भट्टाचार्य के लेख से पृ॰सं॰ 61
3. अमीर खुसरो और उनकी हिन्दी रचनाएँ, डॉ॰ भोलानाथ तिवारी पृ॰सं॰122
4. नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2013 पृ॰सं॰ 130
5. वही पृ॰सं॰ 131
6. वही पृ॰सं॰ 132
7. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा और विकास, डॉ॰ अनिरूद्ध सिन्हा पृ॰सं॰ 45
8. भारतेन्दु ग्रंथावली, ब्रजरत्न दास, पृ॰सं॰ 423
9. भारतेन्दु ग्रंथावली, ब्रजरत्न दास, पृ॰सं॰ 747
10. प्रेमधन–सर्वस्व भाग–1 सं. प्रभाकरेश्वर उपाध्याय, पृ॰सं॰ 464
11. प्रेमधन–सर्वस्व भाग–1 सं. प्रभाकरेश्वर उपाध्याय, पृ॰सं॰ 464
12. नया ज्ञानोदय, ग़ज़ल महाविशेषांक, पृ॰सं॰ 132
13. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रतीक विधान, डॉ॰ नित्यानन्द शर्मा, पृ॰सं॰ 124
14. हमारे प्रतिनिधि कवि, विश्वम्भर 'मानव'', पृ॰सं॰ 62
15. बोल–चाल, अयोध्या सिंह उपाध्याय, पृ॰स॰ 78
16. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ॰सं॰ 583
17. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ॰सं॰ 599
18. मिट्टी की ओर, रामधारी सिंह दिनकर, पृ॰सं॰ 187
19. ग़ज़लिका, रूद्र काशिकेस, पृ॰सं॰ 24
20. आधुनिक काव्य धारा, डॉ॰ केसरी नारायण शुक्ल, पृ॰सं॰ 142
21. भारत भारती, मैथिली शरण गुप्त, पृ॰सं॰, 187
22. आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प, हरदयाल, पृ॰सं॰ 296
23. ग़ज़ल : एक यात्रा, सूर्य प्रकाश शर्मा, पृ॰सं॰ 43
24. दैनिक जागरण, रजत जयन्ती अंक, 20 नवम्बर, पृ॰सं॰ 46
25. तेवरी पक्ष जुलाई से सित. 1983 अंक, 20 नवम्बर, पृ॰सं॰ 46

26. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 13 प्राक्कथन
27. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 15 प्राक्कथन
28. निराला का परिवर्ती काव्य, डॉ॰ रमेश चंद्र मेहरा, पृ॰सं॰ 107
29. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 34
30. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 35
31. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 58
32. बेला, सूर्य कान्त त्रिपाठी 'निराला',पृ॰सं॰ 37
33. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 68
34. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 71
35. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 72
36. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 87
37. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 100
38. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 35
39. निराला का परिवर्ती काव्य, डॉ॰ रमेश चंद्र मेहरा, पृ॰सं॰ 102
40. इन आवाज़ों को ठहरा लो, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' पृ॰सं॰ 76
41. रूपरेखा की भूमिका में, हरि कृष्ण प्रेमी पृ॰सं॰ 17
43. ग़ज़लः एक अध्ययन, चानन गोविन्दपुरी, पृ॰सं॰ 69
44. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा और विकास, डॉ॰ अनिरूद्ध सिन्हा पृ॰सं॰ 45
45. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा और विकास, डॉ॰ अनिरूद्ध सिन्हा पृ॰सं॰ 45
46. गंध रचती छंग, बलवीर सिंह 'रंग' भूमिका से
47. गंध रचती छंग, बलवीर सिंह 'रंग' भूमिका से पृ॰सं॰10
48. ग़ज़ल शतक सं., डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ॰सं॰ 57
49. वही पृ॰सं॰ 58
50. वही पृ॰सं॰ 59
51. हिन्दी ग़ज़ल : दशा और दिशा, डॉ॰ नरेश निसार, पृ॰सं॰ 48
52. हिन्दी ग़ज़ल का विवेचनात्मक अध्ययन, डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष',पृ॰सं॰ 57
53. कुछ और कविताएँ, शमशेर बहादुर सिंह–भूमिका से पृ॰सं॰ 17
54. कुछ और कविताएँ, शमशेर बहादुर सिंह–भूमिका से पृ॰सं॰ 17
55. नया ज्ञानोदय, ग़ज़ल महा विशेषांक, पृ॰सं॰ 137

56. ग़ज़ल सौंदर्य मीमांसा, डॉ॰ अबुर्रशीद–ए–शेख, पृ॰सं॰ 67
57. नया ज्ञानोदय, ग़ज़ल महाविशेषांक, पृ॰सं॰ 137
58. कवियों का कवि, डॉ॰ रंजना अरगडे, पृ॰सं॰ 93
59. शमशेर की कविता, नरेन्द्र वशिष्ट, पृ॰सं॰ 57
60. नई कविताएँ, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ॰सं॰ 87
61. कविता कोश, नरेन्द्र वशिष्ट, पृ॰सं॰ 62
62. कविता कोश, नरेन्द्र वशिष्ट, पृ॰सं॰ 62
63. गुलाब और बुलबुल, त्रिलोचन शास्त्री, पृ॰सं॰ 85
64. हिन्दी ग़ज़ल का विवेचनात्मक अनुशीलन डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष', पृ॰सं॰ 57
65. हिन्दी ग़ज़ल : दशा और दिशा, डॉ॰ नरेश निसार, पृ॰सं॰ 48

***

अध्याय तृतीय

अध्याय – तृतीय

ज़हीर कुरेशी व्यक्ति और अभिव्यक्ति

3.1 जीवन परिचय :

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल लेखन में 'ज़हीर कुरेशी' एक लब्ध–प्रतिष्ठित व्यक्तित्व के धनी हैं। इसका प्रमाण है उनके प्रकाशित हो चुके नौ ग़ज़ल संग्रह और देशभर की प्रकाशित होने वाली पत्र–पत्रिकाओं में अनवरत् प्रकाशित होनेवाली उनकी ग़ज़लें। हिन्दी ग़ज़ल की सुदीर्घ परम्परा में 'ज़हीर कुरेशी' न केवल जाना–पहचाना नाम है, वरन् यह कहने में भी कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि वे दुष्यंतोत्तर हिन्दी ग़ज़ल के सबसे बड़े एवं महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनके कृतित्व पर विस्तृत चर्चा करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उनके जीवन परिचय का भी दिग्दर्शन कर लिया जाए।

"किस्से नहीं हैं ये किसी विरहन की पीर के
ये शे'र हैं अंधेरों से लड़ते ज़हीर के।[1]

जैसा शे'र कहने वाले 'ज़हीर कुरेशी' की ग़ज़लों में जो आत्म–विश्वास दिखलाई देता है, व्यवस्थाओं से न केवल विरोध की बल्कि लड़ने की हिम्मत दिखाई देती है, मुस्लिम होने के बावजूद हिन्दी में ग़ज़ल लिखने जो उत्साह नज़र आता है, वह एक दिन में पैदा नहीं होता। इसके पीछे जन्म से लेकर एक ग़ज़लकार के रूप में स्थापित हो जाने तक उनके सर पर जिन बुजुर्गों की दुआएं हैं, वह जानना भी जरूरी है।

3.1.1. जन्म :

5 अगस्त 1950 ई॰ को मध्य प्रदेश के चंदेरी कस्बे जिला गुना (वर्तमान में अशोक नगर) में जन्में 'ज़हीर कुरेशी', पिता शेख नजीर मोहम्मद कुरेशी और माँ

मासूमाँ बेगम की तीसरी संतान थे। पिता कस्टम विभाग में नाकेदार के पद पर कार्यरत थे और शायरी का शौक रखते थे। ज़हीर से बड़े उनके दो भाई थे बशीर कुरेशी और कदीर कुरेशी और एक बहिन थी खातून बेगम। यह मासूम ज़हीर का दुर्भाग्य ही था कि जब वह मात्र छः वर्ष के थे पिता का साया उन पर से उठ गया। अपनी एक ग़ज़ल के शे'र में उन्होनें कहा भी है –

"मैं अचानक ही पिता के प्यार से वंचित हुआ
छह बरस की उम्र लगते ही, पिता जाता रहा है"।[2]

परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा, लेकिन जल्दी ही बड़े भाई साहब बशीर कुरेशी को शासकीय विद्यालय में शिक्षक की नौकरी प्राप्त हो गयी। माँ मासूमां गृहणी थी लेकिन सुशिक्षित और संस्कारी। माँ के प्यार दुलार और संस्कारों के पोषण से ज़हीर कुरेशी बड़े होने लगे। माँ मासूमां बेगम (जिनको तीनों भाई आपा कहा करते थे) ने बड़े अनुशासन और धैर्य से बच्चों का पालन–पोषण किया।

ज़हीर कुरेशी की प्रारम्भिक शिक्षा–दीक्षा चंदेरी के ही उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से प्रारम्भ हुई। पढ़ाई–लिखाई के साथ–साथ सहशैक्षणिक गतिविधियों में सदैव आगे रहने वाले ज़हीर शीघ्र ही स्कूल में सबके चहेते बन गये। बचपन के मित्र राजेन्द्र शर्मा लिखते हैं कि "हीरो का दर्जा हासिल करने के लिए जितनी विशेषताओं की जरूरत थी सब ज़हीर कुरेशी में थी। पढ़ाई में अव्वल, लिखाई में भी अव्वल। वाद–विवाद प्रतियोगिता के मैदान में भी अव्वल। कविताई के मैदान में भी अव्वल। चेहरे–मोहरे में आकर्षक जुल्फें, यहाँ तक की पोलियो ग्रस्त पाँव भी जैसे कोरी देहिकता के निषेध के जरिए इस इमेज को और उभारने का काम करता था।"[3] अल्पायु (मात्र चार वर्ष की उम्र) में ही लकवाग्रस्त हो जाने से ज़हीर का दाहिना पैर क्षतिग्रस्त हो गया। लेकिन यह विकलांगता निडर ज़हीर के व्यक्तित्व के विकास को न तो रोक सकती थी, न ही रोक सकी। चंदेरी से अपनी उच्च शिक्षा पूरी कर ज़हीर उच्च अध्ययन के लिए भोपाल जा पहुँचे। सोफिया कॉलेज भोपाल से उन्होंने बी॰एससी॰ की उपाधि हासिल की। शीघ्र ही वे केन्द्र सरकार की सेवा भारतीय डाक–तार विभाग में चयनित होकर 1971 ई॰ में ग्वालियर में पदस्थ हुए। ग्वालियर

पहुँचने से पूर्व ही ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी के व्यक्तित्व का निर्माण प्रारम्भ हो चुका था। नवगीत से ग़ज़ल और ग़ज़ल से हिन्दी ग़ज़ल का सफर कहाँ, कब और कैसे प्रारंभ हो गया यह ज़हीर कुरेशी की संस्मरणात्मक पुस्तक – "कुछ भूला और कुछ याद रहा" से स्पष्ट हो जाता है। एक युवा नवगीतकार के रूप में ज़हीर कुरेशी डॉ॰ शम्भुनाथ सिंह द्वारा संपादित "नवगीत दशक : तीन में प्रकाशित हुए।

3.1.2. परिवारिक परिचय :

'ज़हीर कुरेशी' का जन्म चंदेरी जिला अशोक नगर (म॰प्र॰) में हुआ। पिता का नाम था – शेख नज़ीर मोहम्मद कुरेशी और माँ का नाम था –मासूमां बेगम। ज़हीर कुरेशी से बड़े दो भाई थे –बशीर कुरेशी और कदीर कुरेशी'दर्द'। उनके एक बहिन भी थी। खातून बेगम। खातून बेगम अपने विवाह के 20 वर्ष बाद ही अल्लाह को प्यारी हो गयी। 10 जनवरी 1975 में उनका विवाह सुश्री राबिया खानम् से हुआ। समयांतराल में पुत्र समीर एवं पुत्री तबस्सुम का जन्म हुआ। सन् 1971 ई॰ से लेकर 2012 ई॰ तक मध्य प्रदेश के ऐतिहासिक शहर ग्वालियर और तदुपरांत मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में निवास कर रहे हैं। इस दौरान पुत्र समीर ने आर्कियोलॉजी में इंजीनियरिंग (बी॰आर्क॰) की उपाधि प्राप्त करने के बाद अपनी कन्सल्टन्सी प्रारंभ की। पुत्रवधु अतिया भी आर्किटेक्ट के व्यवसाय से जुड़ी है। बेटी तबस्सुम ने पिता के अधूरे स्वप्न को पूरा करते हुए बी॰डी॰एस॰ की उपाधि हासिल कर दंत चिकित्सक बन गयी। उनका विवाह भी डॉ॰ शकील से सम्पन्न हुआ जो एक जनरल सर्जन है। शायान, शिफा और अरहान पोते–पोतियाँ हैं। कुल मिलाकर एक भरा–पूरा परिवार है, ज़हीर कुरेशी का जो उनकी रचनाधर्मिता में उनकी हिम्मत बनकर उनके साथ है।

3.1.3. षिक्षा दीक्षा :

ज़हीर कुरेशी की आरंभिक शिक्षा चंदेरी के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से प्रारंभ हुई। तदुपरांत उच्च शिक्षा के लिए मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल चले गये और वहाँ सोफिया कॉलेज भोपाल से बी॰एससी॰ की पढ़ाई पूरी करने के उपरान्त केन्द्र सरकार की सेवा भारतीय डाक एवं तार विभाग में चयनित होकर 1971 ई॰ में ग्वालियर में पदस्थ हुए। अपने आलेख में ज़हीर कुरेशी के बड़े भाई कदीर कुरेशी

लिखते हुए कहते हैं – "यद्यपि हम दोनों बड़े भाई ज़हीर से बहुत अधिक बड़े तो नहीं थे, लेकिन हम खुद को ज़हीर से बीसियों साल बड़ा महसूस करते थे और उनको डॉक्टर बनाना चाहते थे किन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था सो अपरिहार्य कारणों से मेडिकल कॉलेज में प्रवेश नहीं हो पाने पर ज़हीर भोपाल के सोफिया कॉलेज में बी॰एससी॰ करने लगे। फिर अचानक अपनी मर्जी से ही वह केन्द्र सरकार की सेवा में चले गये और वर्ष 1971 में ग्वालियर में पदस्थ हुए।"[4]

अपने इसी आलेख में कदीर कुरेशी अन्यत्र लिखते हैं – "बचपन से ही ज़हीर कुरेशी के व्यक्तित्व में जो उल्लेखनीय विशेषताएँ उभरी वे थी, जीवटता, अपनी धुन का पक्कापन लक्ष्य के प्रति एकाग्रता एवं दृढ़ता, बेबाकी और लेखन में किसी दूसरे का अनुसरण या परवाह नहीं करना। सोलह वर्ष की आयु से ही रचनाएँ पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेजना शुरु की।"[5] उक्त वक्तव्यों से स्पष्ट हो जाता है कि ज़हीर कुरेशी बचपन से ही होनहार विद्यार्थी के रुप में जाने जाते थे। यद्यपि किन्ही कारणों से वह चिकित्सा क्षेत्र में नहीं आ पाये पर अपनी ग़ज़लों के माध्यम से सामाजिक चिकित्सा का कार्य एक कुशल चिकित्सक की भाँति ही कर रहे हैं।

3.1.4 व्यवसाय :

ज़हीर कुरेशी विज्ञान–स्नातक के छात्र थे यही कारण है कि उनके पास सरकारी सेवा प्राप्त करने के कई अवसर थे, लेकिन आपने 16 अगस्त 1971 ई॰ में केन्द्र सरकार के अधीन डाक व तार विभाग, बाद में (भारतीय दूर संचार विभाग) में सरकारी सेवा स्वीकार कर ली और पदस्थ होकर ग्वालियर आ गये। स्वभाव से बेहद मिलनसार ज़हीर कुरेशी अपने कर्त्तव्य के प्रति ईमानदार और कर्मनिष्ठ बने रहे। अगस्त 2010 में सरकारी सेवा से निवृत्त होने तक एक ग़ज़लकार के रुप में उनकी ख्याति पूरे देश में फैल चुकी है।

अपने दूसरे ग़ज़ल संग्रह 'एक टुकड़ा धूप' के प्रथम प्रकाशन की भूमि का में ज़हीर कुरेशी लिखते है– "कविता न तो मेरे लिए बुद्धि–विलास का साधन रही और न ही कविता को मैंने पेट भरने का काम सौंपा है। ये दोनों स्थितियाँ कवि को कविता के प्रति ईमानदार नहीं रहने देतीं।"[6] सेवा निवृति के बाद अब पूर्ण कालिक

साहित्य–साधना में रत है। अब तक ग़ज़लों की उनकी नौ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। एक संस्मरणात्मक आलेखों की पुस्तक 'क्या भूल', 'क्या याद करुँ' सन् 2016 में ही प्रकाशित हुई है और अपने शायर दोस्तों पर एक पुस्तक, "कुछ भूले बिसरे शायर" 2017 में संपादित की।

3.1.5. व्यक्तित्व के विविध पक्ष :

(i) सरकारी सेवा के रुप में :

एक लोक सेवक के रुप में ज़हीर कुरेशी हमेशा ही कर्त्तव्यनिष्ठ रहे। केन्द्रीय सरकार के उपक्रम दूर संचार विभाग (बी.एस.एन.एल.) में नौकरी प्राप्त करने के उपरान्त ग्वालियर में पदस्थ हुए। यहीं ग्वालियर में रहकर अपनी पूरी नौकरी की और सन् 2010 में सेवानिवृत हुए। नियमित रूप से काव्य गोष्ठियों, मुशायरों और कवि सम्मेलनों में शिरकत करते रहने के बावजूद भी उन्होंने अपनी सरकारी सेवा का निर्वहन पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी से किया।

(ii) कवि के रुप में

ज़हीर कुरेशी को लिखने–पढ़ने का शौक बचपन से ही था। पिता शेख नज़ीर मोहम्मद कुरेशी भी शायरी किया करते थे। बड़े भाई कदीर कुरेशी भी 'दर्द' उपनाम से उर्दू में शायरी करते थे। इसलिए ज़हीर कुरेशी को बचपन से ही साहित्यिक वातावरण में पलने–बड़े होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जहीर ने भी पारिवारिक प्रभाव के अनुरूप उर्दू में लेखन शुरू किया। जहीर कुरेशी की पहली कविता 1965 मैं मंड़लेश्वर, मध्यप्रदेश से प्रकाशित 'माँ' नामक पाक्षिक में प्रकाशित हुई थी। वह दौर समकालीन कविता और नवगीत का था। ज़हीर भी नवगीत लिखने लगे। उनके द्वारा रचित नवगीत "नदी के साथ दुर्घटना" 'समकालीन रसविज्ञों' में बड़ा प्रसिद्ध हुआ। यही कारण है कि उनका नाम भी डॉ॰ शम्भुनाथ सिंह द्वारा सम्पादित "नवगीत दशक : तीन" में शुमार किया गया जिसमें उनके दस नवगीत प्रकाशित हुए। इसके अतिरिक्त दोहा–लेखन में भी रूचि रही और उन्होनें दोहे भी लिखे। 'नवगीत दशक : तीन' का प्रकाशन वर्ष 1984 में हुआ जिसमें सर्व श्री

अखिलेश कुमार सिंह, राजेन्द्र गौतम, डॉ॰ सुरेश, सुधांशु उपाध्याय, विजय किशोर, योगेन्द्र दत्त शर्मा, बुद्धिनाथ सिंह, दिनेश सिंह, विनोद निगम और ज़हीर कुरेशी शामिल हैं। ज़हीर कुरेशी के नवदीगीतों पर चर्चा करते हुए राम प्रकाश त्रिपाठी लिखते हैं – "ज़हीर कुरेशी अरसे तक मेरे लिए गीत का पर्याय रहे हैं। उनके गीतों का मैं प्रशंसक हूँ। उनमें अपरिमित गीत संभावनाएँ मैंने देखी हैं।"[7]

(ii) **ग़ज़लकार के रूप में**

ज़हीर कुरेशी की ख्याति मूलतः एक ग़ज़लकार के रूप में है – हिन्दी ग़ज़लकार के रूप में। दुष्यन्त कुमार के प्रभाव से जो समकालीन रचनाकार हिन्दी ग़ज़ल लेखन की ओर प्रवृत्त हुए ज़हीर कुरेशी भी उनमें से एक थे। अपनी ग़ज़लों को हिन्दी प्रकृति की ग़ज़ल कहने वाले ज़हीर कुरेशी के अब तक नौ ग़ज़ल संग्रह देश के प्रसिद्ध प्रकाशनों से छपकर लोकप्रिय हो चुके हैं। ज़हीर कुरेशी के ग़ज़ल संकलनों का विस्तार से विवेचन विधिवत् किया जावेगा पर यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि ज़हीर कुरेशी समकालीन हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा में अकेले ऐसे हस्ताक्षर हैं जो पिछले 45 वर्षो से अनवरत् हिन्दी ग़ज़ल साहित्य को समृद्ध करने का कार्य कर रहे हैं। उनकी 25 ग़ज़लें उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव और 5 ग़ज़लें स्वामी रामानन्द तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, नांदेड के स्नाकोत्तर पाठ्यक्रम में आधुनिक काव्य के प्रश्न–पत्र में सम्मिलित हैं। संभवतः हिन्दी के किसी भी ग़ज़लकार पर प्रथम आलोचनात्मक पुस्तक – "ज़हीर कुरेशीः महत्त्व और मूल्यांकन" संपादक डॉ॰ विनय मिश्र प्रकाशित है। देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में उन पर शोध कार्य चल रहे हैं। एक ग़ज़लकार के रूप में ज़हीर कुरेशी की यह उपलब्धि समकालीन दौर के किसी भी रचनाकार से कमतर नहीं आँकी जा सकती। छंद मुक्त कविता के दौर में हिन्दी ग़ज़ल को लोकप्रिय बनाने में ज़हीर कुरेशी की अनथक काव्य साधना का भी बड़ा अहम् योगदान है।

3.1.6. रूचि–अभिरूचि :

अपनी संस्मरण पुस्तक "कुछ भूला, कुछ याद रहा" के एक संस्मरण में ज़हीर कुरेशी लिखते हैं – "लिखने–पढ़ने का शौक तो 1964 से ही लग गया था, उस समय मैं संभवतः सातवीं कक्षा में पढता था। शाम को नियमित रूप से सार्वजनिक वाचनालय जाता था। लगभग दो घंटे रोज अखबार और पत्रिकाएँ पढ़ता था।"[8] इसके अतिरिक्त ज़हीर कुरेशी को फिल्में देखने का शौक भी था। सरकारी सेवा में ग्वालियर आने के बाद ज़हीर साहब के शौक को जैसे पंख लग गये हों। यहाँ आने के बाद नियमित काव्य गोष्ठियों में शिरकत करने लगे। खाने–खिलाने के शौकीन ज़हीर कुरेशी के घर ईद पर प्रतिवर्ष काव्य गोष्ठी होती थी, जो अनवरत 35 वर्षों तक चली।

3-1-7- o|pkfjd i"BHkfe

ज़हीर कुरेशी मुस्लिम परिवार में भले ही पैदा हुए हों लेकिन उनके व्यक्तित्व पर पहले चंदेरी और बाद में ग्वालियर की गंगा–जमनी तहजीब का असर बहुत गहरे तक दिखाई देता है। अपने एक संस्मरण में ज़हीर कुरेशी लिखते हैं – "कदम–कदम पर निराशा, असमानता, जातिवाद, अपमान जैसी चीजों से दो–चार होना पड़ता था।"[9] यही कारण है कि ज़हीर कुरेशी का झुकाव प्रारम्भ से ही जनवाद की ओर दिखाई देता है। एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में धनाभाव, गरीबी, शोषण, साम्प्रदायिकता जैसी विषमताएं ज़हीर कुरेशी ने बचपन से ही देखी थी। उनके जनवादी आकर्षण के पीछे परिस्थितियों के साथ ग्वालियर के वरिष्ठ गीतकार मुकुट बिहारी 'सरोज' के व्यक्तित्व का प्रभाव परिलक्षित होता है जो उस समय जनवादी लेखक संघ की ग्वालियर शाखा के अध्यक्ष थे। उन्होंने ही ज़हीर कुरेशी को जलेस का सचिव बनाया और बाद में राम प्रकाश त्रिपाठी के मनोनयन पर अध्यक्ष भी बने।

अपने आलेख 'जनवाद और ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों' में वरिष्ठ ग़ज़लकार –आलोचक डॉ॰ वशिष्ठ अनूप लिखते हैं– "जनवादी काव्य, वह काव्य है जिसमें आज की भयावह जिन्दगी और खुरदरे यथार्थ का चित्रण हो, समस्याओं के जाल में चतुर्दिक घिरे मेहनतकश आवाम के शोषण और उसकी बदहाली का चित्रण हो, शोषक–शासक वर्गो की दमनकारी नीतियों का पर्दाफाश हो, तमाम तरह के दहकते

सवालों से सीधा साक्षात्कार हो और मुश्किलों के बावजूद संघर्ष शील परिवर्तनकामी यथार्थ का भी चित्रण हो। ऐसी रचना जो शोषित जनता के मन में विश्वास जगाती हो और शोषकों में भय का संचार करती हो।"[10] अपने इसी आलेख में वे आगे लिखते है "ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लें उस आम आदमी के जीवन का आईना है, जो शोषित और वंचित है।[11] स्पष्ट है कि ज़हीर कुरेशी जनवादी विचारधारा से सम्पृक्त लेखन ही नहीं करते वरन् वह इस विचारधारा के झंडाबरदारों में भी शामिल है।

3.2. अभिव्यक्ति : मुख्य ग़ज़ल कृतियाँ

ज़हीर कुरेशी की पहली कविता सन् 1965 में प्रकाशित हुई तब से प्रारम्भ हुआ काव्य सफर कविता, नवगीत, ग़ज़ल से गुजरता हुआ अब संस्मरण लेखन तक आ पहुँचा। एक लम्बे समय से 'हिन्दी ग़ज़ल लेखन' में सक्रिय ज़हीर कुरेशी के अब तक 9 ग़ज़ल संग्रह विभिन्न प्रकाशनों से प्रकाशित हो चुके हैं। तीसरे अध्याय के इस भाग में हम ज़हीर कुरेशी के ग़ज़ल संग्रहों का परिचय प्राप्त करेगें।

3.2.1 लेखनी के स्वप्न

ज़हीर कुरेशी के पहले ग़ज़ल संग्रह 'लेखनी के स्वप्न'का प्रकाश सूर्य प्रकाशन, दिल्ली से सन् 1975 में हुआ। इस काव्य संग्रह में उनके गीत, ग़ज़ल और मुक्त छंद में लिखी कविताएँ संकलित हैं। ग्वालियर में आयोजित होने वाली काव्य गोष्ठियों में पहले से ही लोकप्रिय, ज़हीर कुरेशी इस संग्रह के प्रकाशन के पश्चात् और अधिक लोकप्रिय हो गये। जनवादी विचार और हिन्दी प्रकृति की उनकी ग़ज़लों ने जन–मानस पर जादू–सा असर किया। यही कारण है कि उनकी जनवादी प्रतिबद्धता भी दिनों दिन बड़ती गयी। जैसा कि उस दौर की कविताओं में प्रायः दिखाई देने वाला व्यवस्था–विरोध ज़हीर कुरेशी की गजलों में भी है। आम–आदमी के दुःख–दर्दों का चित्रण ज़हीर कुरेशी एक सजग प्रहरी की तरह करते हैं, इसलिए अपने प्रथम काव्य संग्रह से ही वह जनवादी पक्षधरता के साथ खड़े दिखाई देते हैं पूरी ईमानदारी और निष्ठा के साथ –

"टूक–टूक विश्वास लिए फिरते हैं
खुद को बहुत हताश लिए फिरते हैं

हम जीवन की मृग–मरीचिकाओं में
मीलों लम्बी प्यास लिए फिरते हैं।"[12]

3.2.2 एक टुकड़ा धूप

ज़हीर कुरेशी का दूसरा ग़ज़ल संग्रह "एक टुकड़ा धूप" का प्रकाशन वर्ष 1979 में इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, के–71, कृष्णा नगर, दिल्ली से हुआ है। यह उनकी ग़ज़लों की लोकप्रियता का ही प्रमाण है कि इस संग्रह का दूसरी बार भी प्रकाशन हुआ – विद्या प्रकाशन, कानपुर से, वह भी पूरे 37 साल बाद। इस संकलन में उनकी 1978 तक जन्मी लगभग 40 ग़ज़लें संकलित हैं। अपने इस संकलन की ग़ज़लों पर चर्चा करते हुए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं कि "दुष्यंत की ग़ज़ल को हिन्दी अथवा हिन्दी प्रकृति की ग़ज़ल की ओर ले चलने का दायित्व मैंने अपने कंधों पर भी महसूस किया और तब नई शैली की ग़ज़ल को मैंने हिन्दी में सोचा, उसके बिम्बों, प्रतीकों, उसकी कहन सहित।"[13] ज़हीर कुरेशी के इस संग्रह की वैचारिकी पर गौर करें तो यह संग्रह भी उनकी जनवादी सोच को ओर पुख्ता करता है। व्यक्ति–चरित्र के दोहरेपन को वे इस तरह उजागर करते हैं –

"सर्प बनकर जो हमेशा विष–वमन करते रहे
एक तख्ती टाँगकर, वे लोग शंकर हो गये।"[14]

जीवन में आया ये विरोधाभास हमारे समय का सच है, जिसे ज़हीर कुरेशी बखूबी बयां करते हैं। अपने समय के एक ओर सच को जहीर कुछ इस तरह अभिव्यक्त करते हैं –

"भ्रूण हत्याएं सड़क पर हैं
स्तब्ध मुद्राएं सड़क पर हैं।"[15]

और

"डिग्रियों की कोख से जन्मी
बुद्धिमत्ताएं सड़क पर हैं।"[16]

दरअसल कन्या भ्रूण हत्या और बेरोजगारी दोनों ही समकालीन कविता का बहुत बड़ा विचारणीय पहलू है। सड़क किनारे झाड़ियों में फैंकी गयी नवजात बेटियाँ और रोजगार की तलाश में सड़कों पर उतरे युवा। ज़हीर के ये दोनों शे'र पाठक की आँखों के सामने एक बिम्ब का निर्माण करते हैं, जिसे वह सड़कों, समाचार–पत्रों में और टी॰वी॰ चैनलों पर देखा करता है। इसी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्पन्न मोह–भंग की स्थिति पर वे लिखते हैं –

"धीरे–धीरे टूट रहे हैं खुशफहमी के किले तमाम
मीलों पीछे छूट गये हैं खुशियों के सिलसिले तमाम।"[17]

3.2.3 चाँदनी का दुःख

ज़हीर कुरेशी के तीसरे ग़ज़ल संग्रह "चाँदनी का दुःख" का प्रथम संस्करण वर्ष 1986 में पराग प्रकाशन, कर्ण गली, शाहदरा, दिल्ली–110032 से हुआ था। प्रथम संस्करण की भूमिका में ज़हीर कुरेशी लिखते हैं – "एक टुकड़ा धूप" के बाद 'चाँदनी का दुखः' मेरी कविताओं का अगला पड़ाव है। इसमें जनवरी 1979 से लेकर दिसंबर 1984 तक जन्मीं मेरी पैंसठ ग़ज़लें संग्रहित है। इन छः वर्षो में 'मैं' सम्पूर्णतः हिन्दी प्रकृति की ग़ज़ल पर ही प्रवृत रहा।"[18]

इस ग़ज़ल के प्रथम संस्करण के तीस वर्ष बाद विद्या प्रकाशन, कानपुर से द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित हुआ। आज हिन्दी ग़ज़ल एक लोकप्रिय विधा के रुप में साहित्य की मुख्य धारा में प्रतिष्ठित है। हिन्दी ग़ज़ल और ग़ज़लकारों पर शोध कार्य हो रहे है, ऐसे समय में ज़हीर कुरेशी के दोनों ग़ज़ल संग्रह का दूसरा संस्करण छपकर आना निश्चित ही ग़ज़ल पर शोधरत विद्यार्थियों के लिए एक सुखद अहसास की तरह है।

इस ग़ज़ल संग्रह की पहली ग़ज़ल से ही ज़हीर कुरेशी स्पष्ट कर देते है कि आज की ग़ज़ल अपनी रूमानियत छोड़ यथार्थ के धरातल पर आ गयी है। वे आम आदमी से अपनी तादात्मयता स्थापित करते हुए यह घोषणा करते है कि मैं आज भी तुम्हारे जैसा ही आम–आदमी हूँ–

"किस्से नहीं है ये किसी विरहन की पीर के
ये शे'र है–अंधेरों से लड़ते जहीर के
मै आम आदमी हूँ तुम्हारा ही आदमी
तुम काश देख पाते मेरे दिल को चीर कर।"[19]

यहाँ ज़हीर कुरेशी बड़ी खूबसूरती से व्यक्ति से समष्टि की यात्रा कर लेते हैं। जब वो ये लिखते है कि "ये शे'र है – अंधेरों से लड़ते जहीर के" तो दो बातें एक साथ स्पष्ट हो जाती हैं कि उसका व्यवस्था से विरोध आज भी बदस्तूर जारी है, साथ ही शे'र इस बात की तस्दीक भी कर जाता है कि स्वयं जहीर भी आज तक अंधेरों से जूँझते आ रहे है। उदारीकरण के पश्चात् विश्व बैंक के सहयोग से ऋण बांटने का जाल मानव जीवन को सुखी–सम्पन्न बनाने के लिए, बुना गया था, उसमें फँस कर आम–आदमी की हालत किश्तों में मरने जैसी हो गयी –

"विष असर कर रहा है किश्तों में
आदमी मर रहा है किश्तों में
उसने इक मुश्त ले लिया था ऋण
ब्याज को भर रहा है किश्तों में।"[20]

आज आम आदमी के लिए दो–जून की रोटी का जुगाड़ करना भी बड़ा मुश्किल है। और ऐसे में बाजार उसे कोठी और कार के सपने दिखाता है। करोड़ों लोग केवल दो रोटी की तलाश में भटकते हैं, तब ज़हीर कुरेशी इस बात को शे'र के माध्यम से इस तरह अभिव्यक्त करते हैं –

"दो रोटी के अलावा चार' की बातें नहीं करते
करोड़ों लोग कोठी–कार की बातें नहीं करते।"[21]

ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में वर्तमान दौर में प्रचारित विमर्शों की बानगी भी दिखलाई देती है। स्त्री विमर्श पर अपनी लेखनी चलाते हुए वे लिखते हैं –

"क्या कहे अखबार वालों से व्यथा औरत
यौन–शोषण की युगों लम्बी कथा औरत।"[22]

3.2.4 समन्दर ब्याहने आया नहीं है

ज़हीर कुरेशी का चतुर्थ ग़ज़ल संग्रह सन् 1992 में अयन प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में कुल 78 ग़ज़लें संकलित हैं। अब ज़हीर कुरेशी भी स्थापित ग़ज़लकारों में शुमार होने लगे थे इसीलिए यह ग़ज़ल संग्रह काफी चर्चित रहा। इस संग्रह की ग़ज़लों में जहाँ हमें आधुनिकता के दर्शन होते हैं वहीं भारतीयता के भी। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के परिणाम स्वरूप समाज में आयी विकृतियों और सियासी दावपेचों को भी ज़हीर अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्त करते हैं। वक्त और परिस्थितियाँ किस प्रकार व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं, उसको ग़ज़ल के शे'र में ज़हीर कुरेशी इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं –

"धीरे–धीरे वो कुशल नृत्यांगना बन ही गई
वक्त ने उस एक औरत को नचाया है बहुत।"[23]

ज़हीर कुरेशी सामाजिक सरोकारों से जुड़े ग़ज़लकार हैं समाज में आयी नयी परिस्थितियों से भी वे रूबरू हैं। परिवार में संताने माता–पिता के प्रति संवेदनहीन बनती जा रही हैं। वृद्ध माता–पिता संतानों के ऊपर बोझ बन गये हैं। भारत में दिन–प्रतिदिन बढ़ते वृद्धाश्रम इसी के परिचायक हैं। संतानें माता–पिता का अनादर करती हैं। और इसी मनोवृत्ति को वे ग़ज़ल में इस प्रकार से अभिव्यक्त करते हैं –

"बोझ का पर्वत है बूढ़ा बाप बच्चों के लिए
झिड़कियाँ मिलती हैं उसको रोज आदर की जगह।"[24]

शहरी जन–जीवन की विकृत मानसिकता के चित्र भी ज़हीर अपनी ग़ज़लों में खींचते हैं। व्यक्ति पेट भरने के लिए क्या–क्या करता है यह उनकी ग़ज़लों से स्पष्ट हो जाता है –

"भोर ले जाएगी, अथवा दोपहर ले जाएगी
जो भी ले जाए, मुझे तो–दर–ब–दर ले जाएगी।"[25]

और –

"पेट भरने के लिए की है जो मैंने नौकरी
इस शहर के बाद जाने किस शहर ले जाएगी।"[26]

पेट भरने के लिए व्यक्ति को क्या कर गुजरना पड़ता है उस पर भी ज़हीर की नज़र जाती है। पेट भरने का व्यापार सिर्फ दिन में ही नहीं होता बल्कि यह अँधियारे में अलग प्रकार से चलता है।

"अँधियारा घिरते ही वो तन की दुकान सजाती है
इसीलिए वो बाट जोहती है अँधियारा होने की।"[27]

3.2.5 भीड़ में सबसे अलग

'यह ग़ज़ल संग्रह सन् 2003 में प्रकाशित हुआ, जिसमें 100 ग़ज़लें संग्रहीत हैं। अपनी मौलिकता एवं अभिव्यक्ति की नवीनता के कारण यह ग़ज़ल संग्रह वास्तव में ही ज़हीर कुरेशी को ग़ज़लकारों की इस भीड़ में सबसे अलग दर्जा प्रदान करता है। इक्कीसवीं सदी के अपने पहले ग़ज़ल संग्रह में ज़हीर कुरेशी ने लगभग 11 सालों की संग्रहित ग़ज़लें प्रकाशित की हैं। 25 ग़ज़लें ताज़गी का अहसास कराती हैं और पाठकों पर अपना असर छोड़ती हैं। जीवन के कई नये रंग बिखेरता यह संग्रह भी ज़हीर कुरेशी के विगत संग्रहों की भाँति ही अपने दौर की परिस्थितियों की नुमाईंदगी करता हुआ, उसे अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

इक्कीसवीं सदी विज्ञान और तकनीकी के विस्फोट से लबरेज है। आधुनिकता से जन्य उपभोगवादी संस्कृति के परिणाम स्वरूप मानव जीवन से संवेदनाएँ लुप्त प्रायः होती जा रही हैं। आपसी स्नेह, अपनापन, प्रेम, जैसे भाव धीरे–धीरे विस्मृत होते जा रहे हैं। प्रेम जीवन का सार है और वही उपेक्षित हो तो ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"इस जीवन का सार न जाना
ढाई आखर प्यार न जाना।"[28]

और उपाय बताते हुए वे लिखते हैं –

"बचाना है अगर इस मुल्क की उजली विरासत को
हमें अपनी जड़ों की ओर फिर से लौटना होगा।"[29]

महानगरीय संस्कृति के परिणाम स्वरूप वर्तमान जीवन में व्यस्तता इतनी अधिक बढ़ती जा रही है कि पति–पत्नी के बीच भी कई दिनों तक संवाद नहीं हो पाता। संबंधों में आए इस अजनबीपन और संवादहीनता को जहीर कुरेशी कुछ इस तरह बयां करते है –

"घर में रहकर भी नहीं संवाद हम दोनों के बीच
मौन पसरा है कई हफ्तों से संबंधों के बीच।"[30]

ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों पर विवेचन करते हुए ग़ज़ल के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ॰ नचिकेता लिखते है कि "जहीर कुरेशी के एक ग़ज़ल संग्रह का नाम 'भीड़ में सबसे अलग' है। यह असल में ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी का हिन्दी ग़ज़ल रचना की भीड़ में सबसे अलग होने का घोषणा पत्र है और वह हिन्दी ग़ज़ल रचना की भीड़ में सबसे अलग पहचान और हैसियत रखते भी है कोई माने, या न माने।"[31] ज़हीर कुरेशी को ग़ज़लकारों की इस भीड़ में सबसे अलग मानने का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण कारण यही है कि वे आम–आदमी के दुःख दर्दो को अपनी ग़ज़लों में चित्रित करने वाले ग़ज़लकार है। भूमण्डलीकरण और बाजारवाद के इस भयावह दौर में भी यह लिखने का सामर्थ्य रखते है कि –

"भीड़ में सबसे अलग, सबसे जुदा चलता रहा
अंत में, हर चलने वाला 'एकला' चलता रहा।"[32]

ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में समकालीन कविता की बानगी पूरी तरह से मौजूद है भले ही, समकालीन कविता जैसा गद्य विस्तार ग़ज़ल के शे'रो में नहीं है लेकिन व्यंजना का सामर्थ्य उनमें पर्याप्त मात्रा में मौजूद है –

"शे'र समकालीन कविता से ना बातूनी सही
फिर भी कहे जाते हैं गहरी बात संकेतों के बीच अलग।"[33]

3.2.6 पेड़ तनकर भी नहीं टूटा

अपने प्रकाशन से प्रकाशित जहीर कुरेशी का यह छठा ग़ज़ल संग्रह 2010 में प्रकाशित हुआ जिसमें 101 ग़ज़लें संग्रहीत है। इस संग्रह के पहले शे'र से ही ज़हीर कुरेशी अपने तेवर स्पष्ट करते हुए कहते है –

"जो भी कहना था वो अन कहा रह गया
कुछ पुराना रहा कुछ नया रह गया।"[34]

ज़हीर कुरेशी ने इस संग्रह की ग़ज़लों में सामाजिक सरोकारों, राजनीतिक विसंगतियों, भूमण्डलीकरण, बाजारवाद, पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभावों, बदलते मानवीय मूल्यों आदि विषयों को केन्द्र में रखकर ग़ज़लें लिखी हैं। 21 वीं सदी में आधुनिकता और बाजारवाद के नाम पर क्या–क्या परिवर्तन हुए हैं, इस संदर्भ में वे लिखते हैं –

"इक्कीसवीं सदी के सपेरे है आधुनिक
नागिन को वश में करने के मंतर बदल गए
बाजारवाद आया तो बिकने की होड़ में
अनमोल वस्तुओं के भी तेवर बदल गए।"[35]

ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में समायोजित नारी विमर्श पर चर्चा करते हुए डॉ॰सायमा बानो लिखती है–"नारी जीवन के यथार्थ के निकट हिन्दी ग़ज़लों को ले जाने में ज़हीर की अहम् भूमिका रही है। स्त्री जीवन की कटुताओं और विसंगतियों को इन ग़ज़लों ने प्रभावी स्वर दिया है। स्त्री के विविध रुपों में अपनी संवेदनाओं के साथ ज़हीर यहाँ उपस्थित है। पत्नी, पुत्री, प्रेयसी, माँ यहाँ तक कि गणिका का चरित्र भी इनमें बिम्बित है और इन सबसे बढ़कर नारी का वह रुप जिसकी युगों से अवहेलना होती रही है – उसका मनुष्य रूप। ज़हीर की ग़ज़लें नारी को उसके मनुष्य होने का अधिकार दिलाना चाहती है।"[36] आम हिन्दुस्तानी औरत की

वास्तविक मानसिकता को बारीकी से ऊँकेरने का प्रयास ज़हीर कुरेशी इस तरह करते है –

हुई संध्या तो उस औरत ने बाला दीप मंदिर में
उसी के साथ मन में दीप यादों ने जलाए है।"[37]

रीति–रिवाजों और संस्कारों में जकड़ी भरतीय नारी भी संघर्ष और प्रतिरोध की जीती–जागती कहानी है। स्त्री मुक्ति के तमाम प्रयासों के बाबजूद भी अभी तब वह भारतीय पुरुष मानसिकता से मुक्त नहीं हो पाई है। स्त्री मुक्ति के इस संघर्ष को ज़हीर कुरेशी अपनी ग़ज़ल में इस तरह अभिव्यक्त करते है –

"खारे सागर में फँसी तो न निकल पाई नदी
उसने सागर से निकलने की बहुत कोशिश की।"[38]

जहीर कुरेशी आम–आदमी को न केवल भली–भाँति जानते–पहचानते है, बल्कि वे उसकी सारी दुविधाओं और सुविधाओं से भी परिचित है। वे जानते है कि आज भी आम–आदमी को मेहनत किए बगैर कुछ हासिल नहीं होता इसलिए वे लिखते है कि –

"हम इतना जानते है कि मेहनत किए बगैर
सपनों को सिद्ध करने के मंतर नहीं मिलते।"[39]

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में पूर्ण विश्वास रखते हुए भी ज़हीर कुरेशी इसकी खामियों से भली–भाँति परिचित है। संसदीय व्यवस्था में चुनाव एक महत्वपूर्ण हथियार है तो लेकिन जब इसका गलत इस्तेमाल होता है तो जहीर कुरेशी लिखते है –

"कल थी जिनकी पुलिस को तलाश
आज है वो ही सरकार में।"[40]

इस प्रकार बिना चुनाव जीते भी नेता किस प्रकार संसद में पहुँच जाते है, इस पद्धति के गलत इस्तेमाल से भी ज़हीर कुरेशी नावाकिफ नहीं है, इसीलिए लिखते है –

"जिन्हें जनता ने खारिज कर दिया था
सदन में आ गए 'रास्ते' बदल कर।"[41]

3.2.7 बोलता है बीज भी

ज़हीर कुरेशी द्वारा सृजित यह सातवाँ ग़ज़ल संग्रह प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल 100 ताजा–तरीन ग़ज़लें समाहित हैं। इतने वर्षों की सुदीर्घ ग़ज़ल साधना के उपरान्त ज़हीर कुरेशी का अनवरत लेखन हिन्दी–ग़ज़ल–भण्डार में वृद्धि के साथ–साथ उसके शिल्प एवं सौंदर्य में भी अभिवृद्धि कर रहा है। आज हिन्दी ग़ज़ल सर्व मान्य विधा है, तो इसमें ज़हीर कुरेशी का योगदान भी अतुलनीय है। यह उनके अनथक परिश्रम का ही परिणाम है जिसने हिन्दी ग़ज़ल को इस सोपान पर पहुँचाया।

वैश्विक बदलाव के साथ ही हिन्दी ग़ज़ल भी अपने तेवर किस प्रकार बदलती है, अगर यह समझना हो तो हम ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों से समझ सकते हैं। इक्कीसवीं सदी बाजारवाद की है जिसने विश्व अर्थव्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित किया है इस तथ्य को ज़हीर कुरेशी भली–भाँति जानते हैं –

"मुक्त पूँजी के प्रतिकार की
ये लड़ाई है बाज़ार की।"[42]

और इस लड़ाई में किसी चमत्कार से ही बचने की आशा की जा सकती है इसलिए वे लिखते हैं –

"जड़ व्यवस्था को बदलेगा कौन
आस है बस चमत्कार की।"[43]

इसी प्रकार इस संग्रह की शीर्षक ग़ज़ल के एक शे'र में लोकतांत्रिक चुनाव प्रक्रिया की पोल कुछ इस तरह से खोलते हैं –

"लोग करते हैं चुनावों में भयादोहन
अपनी मर्जी से उन्हें चुनता नहीं कोई।"[44]

अपने इस संग्रह की भूमिका 'अपनी बात' में ज़हीर स्वयं स्वीकार करते हैं कि "मैं परम्परा और आधुनिकता के बीच आवा–जाही करने वाला कवि माना जाता रहा हूँ। मैं आरम्भ से ही मानता रहा हूँ – परम्परा एक जीवन–प्रवाह है। यह हमारे वर्तमान के पोषण के लिए आक्सीजन की तरह अनिवार्य है।"[45] इस परम्परा को बनाये रखने के लिए ज़हीर जहाँ एक ओर अपने में रीति–रिवाजों की बातें करते हैं, वहीं टूटती परम्पराओं पर भी गहरा दुःख प्रकट करते हैं –

"हम अपने गाँवों की आबो–हवा नहीं भूले
महानगर में भी अपना पता नहीं भूले।"[46]

वहीं दूसरी ओर महानगरों में बड़ती भीड़ से भी वो अनजान नहीं हैं –

शहर में पहचान खोने आ गए
भीड़ के पर्याय होने आ गए
तीस मंजिल की ईमारत ने कहा
इस शहर में कितने बौने आ गए।"[47]

एक शायर अपने आप को ग़ज़ल में किस तरह अभिव्यक्त करता है, यह हुनर भी ज़हीर कुरेशी को भली–भाँति आता है। उनके जीवन के इस तथ्य से सभी परिचित हैं कि बहुत छोटी उम्र (मात्र छः बरस) मे ही पिता का साया उनके सर से उठ चुका था। आज इस मुकाम पर जब ज़हीर उस दौर को याद करते हैं, तो अनायास ही कह उठते हैं –

"मुश्किलें गुजरी तो जीने का मजा जाता रहा
अनवरत संघर्ष करने का नशा जाता रहा
मैं अचानक ही पिता के प्यार से वंचित हुआ
छः बरस की उम्र लगते ही, पिता जाता रहा।"[48]

जब ज़हीर कुरेशी ने ग्वालियर छोड़ भोपाल में अपना आशियाना बनाया तो भी हालात अपने–आप अभिव्यक्त हो उठे –

"अपनी जड़ें समेट के जाना कठिन लगा
अपने वतन से दूर ठिकाना कठिन लगा।"[49]

3.2.8 निकला ना दिग्विजय को सिकन्दर

यह ज़हीर कुरेशी का आठवाँ ग़ज़ल संग्रह है। अंजुमन प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित इस संग्रह में भी उनकी 100 ग़ज़लें संकलित हैं। इस संकलन में एक विशेषता यह है कि भूमिका के स्थान पर ज़हीर कुरेशी के रींवा प्रवास के दौरान 'दैनिक जागरण' के ओम द्विवेदी द्वारा लिया गया साक्षात्कार छपा है। इस संकलन की ग़ज़लों पर विचार करें तो ज़हीर कुरेशी का वही चिर–परिचित अंदाज दिखलाई देता है। जैसा कि संग्रह के शीर्षक से स्पष्ट है –

"जब से चलन में आई है बाजार पर विजय
निकला न दिग्विजय को सिकंदर महान भी।"[50]

संग्रह की ग़ज़लें वर्तमान को अपने कलेवर में समेटे हुए हैं। इक्कीसवीं सदी के इस दूसरे दशक की बात करें तो आज बाजारवाद की भयावहता और गहराती जा रही है। इस बाजारवाद ने हमारी सभ्यता और संस्कृति को भी संक्रमित कर दिया है, परिणाम स्वरूप कई प्रकार की विकृतियाँ और नये चलन भारतीय परिवेश में प्रवेश कर गये। भारतीय समाज में प्रवेशित नूतन अवधारणा 'लिव–इन–रिलेशनशिप' पर ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"उनसे अपना 'लिव इन' तक का रिश्ता था
उस जीवन में हम छः साल शरीक रहे।"[51]

इसी प्रकार 'सेरोगेट मदर' की अवधारणा पर ज़हीर कुरेशी लिखते हैं कि –

"एक औरत साथ रहकर दे गई संतान सुख
हम न उसकी कोख का समुचित किराया दे सके।"[52]

पाश्चात्य परिवेश संस्कृति का सबसे बड़ा दुश्परिणाम जो अब हमारे सभ्य समाज भी दिखाई देता है, वह है – पुरूष वैश्यावृति का। ज़हीर कुरेशी की तीखी नज़र समाज की इस विकृति की ओर भी बड़ी संजीदगी से जाती है और वे बेधड़क लिखते हैं कि भारतीय परिवेश में यह उद्योग अभी नया है –

"औरत भी अब खरीद रही है पुरूष की देह
लेकिन नया–नया है ये उद्योग आज भी।"[53]

लोकतांत्रिक व्यवस्था में पत्रकारिता चतुर्थ स्तंभ मानी जाती है, लेकिन पत्रकारिता भी आज भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं है, पीत पत्रकारिता के साथ–साथ पेड न्यूज भी इसके भ्रष्ट आचरण में शामिल है। वे चुनावी माहौल में आने वाली पेड न्यूज पर कटाक्ष करते हुए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"ये पेड न्यूज के किस्से उदास करते हैं
प्रजा के तंत्र के खंबे उदास करते हैं।"[54]

और इसी तरह –

"ये चुनावी समय है–समझ लीजिए
पेड खबरें ही छपती हैं अखबार मैं।"[55]

इक्कीसवीं सदी ज्ञान–विज्ञान के प्रचंड विस्फोट की है। तकनीक के विकास के साथ कई अपराध भी इनके साथ दबे पाँव चले आए। इन्टरनेट के उपयोग ने जहाँ मानव–जीवन को सुविधा सम्पन्न बनाया है वहीं साईबर क्राईम ने लोगों का जीना मुश्किल कर दिया है। जहीर कुरेशी की नज़र इन अयाचित खतरों की ओर भी जाती है –

"तरह–तरह के दिखे रोज 'नेट'पर हमले
नई सदी में हुए आम साइबर हमले।"[56]

तनाव नयी नदी में तेजी से पसरता सबसे जानलेवा हमला है, इसीलिए वे लिखते हैं –

"जो रक्तचाप, थकन या शुगर में व्यक्त हुए
हुए हैं हम पे तनाव के किस कदर हमले।"[57]

हिन्दी साहित्य और ग़ज़ल के वरिष्ठ आलोचक डॉ॰ शिव कुमार मिश्र, ज़हीर कुरेशी के इस संग्रह की ग़ज़लों पर लिखते हैं – "हम जानते हैं कि बात को सहज–सीधे ढंग से उसके पूरे प्रभाव और व्यंजकता के साथ कुछ कह पाना कितना कठिन होता है। ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लें ऐसा करती हैं। वे हमारे समय और सामाजिक जीवन का आईना भी है और आईने से आगे की हकीकत भी, जिसमें वह सभी उनकी निगाहों की जद में आ जाते हैं जो आईने की पकड़ से जो परे है।"[58]

3.2.9 रास्तों से रास्ते निकले

'रास्तों से रास्ते निकले' यह सन् 2017 में ज़हीर कुरेशी का नया ग़ज़ल संग्रह अयन प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित इस ग़ज़ल संग्रह में ज़हीर कुरेशी की ताजा तरीन 100 ग़ज़लें संग्रहीत हैं। विषय विविधता के साथ–साथ उत्तर आधुनिक परिवेश लिए यह ग़ज़ल संग्रह **ज**हीर कुरेशी के चिंतन को और अधिक स्पष्ट करता है। आज हम इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में जी रहे हैं। जीवन पूरी तरह बाज़ार के गिरफ्त में है। आज हालात इस कदर बिगड़ते जा रहे हैं कि व्यक्ति को खुशी खरीदने भी बाज़ार में ही जाना पड़ रहा है। बाज़ार आदमी को लील जाना चाहता है। आज बाज़ार में सब कुछ बिकाऊ है। इसीलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"सियासत से ही निकली ये कथाएँ भी
बिकाऊ चीज है अब आत्माएँ भी
कलाकारों को काम करना आसान हुआ
हैं बिकने के लिए आतुर कलाएँ भी।"[59]

"घटा बरसने को तैयार होने लगी
अबोली पीर यूँ साकार होने लगी है।"[60]

जब खरीदार बाज़ार जाता है और वस्तुओं के मोल–भाव करता है लेकिन जब वह किसी चीज को खरीद नहीं पाता तो उसके चेहरे पर अनायास ही तनाव उभर आता है। ज़हीर कुरेशी ने आम आदमी के जीवन के इस बिम्ब को इस तरह अभिव्यक्त किया –

"बाज़ार में गए तो किए मोल–भाव भी
कम पड़ गए थे दाम तो उपजा तनाव भी।"[61]

कुछ लोग बाज़ार में इस कदर खो गये कि उन्होंने अपने घर को भी बाज़ार बना लिया है –

"आठों पहर अचूक कमाई के लोभ में
लोगों ने अपने घर को ही बाज़ार कर लिया।"[62]

अब बाज़ार ने छोटे–बड़े, रिश्ते–नाते, रीति–रिवाज सब खत्म कर दिये। बच्चों में तहजीब की कमी इस तरह भी अखरती है कि –

"पैर छूना तो याद क्या रखते
शहरी बच्चे प्रणाम भूल गए।"[63]

पढ़–लिखकर बच्चे तो विदेश में बस गये लेकिन बूढ़े माँ–बाप को तो बस किरायेदारों का ही सहारा है इसीलिए जहीर कुरेशी लिखते हैं –

"खुशियों का विस्तार हमारे साथ रहा
दुःख का कारोबार हमारे साथ रहा
बेटा–बेटी तो विदेश में जा बैठे
किन्तु किरायेदार हमारे साथ रहा।"[64]

3.2.9 अन्य कृतियाँ

जहीर कुरेशी की अन्य कृतियों में एक संस्मरणात्मक संग्रह "कुछ भूला, कुछ याद रहा" और "कुछ भूले बिसरे शायर" है। सद्य प्रकाशित इस संग्रह में उनके इक्कीस आलेख संकलित हैं। यद्यपि उनकी पहली रचना कविता के फार्म में 1965 में मंडलेश्वर (मध्य प्रदेश) से प्रकाशित 'माँ' नामक पाक्षिक में प्रकाशित हुई थी। प्रारम्भ में वे कविता, नई कविता, नवगीत और ग़ज़ल लिखते रहे, लेकिन शीघ्र ही उन्हें यह अनुभव हो गया है कि हिन्दी ग़ज़ल ही उनकी लेखन शैली के अनुकूल है और इसमें अवसर भी अधिक हैं। वे जिस जनवादी विचार को लेकर साहित्य सृजन में प्रविष्ट हुए हिन्दी ग़ज़ल उनकी अभिव्यक्ति के लिए सशक्त माध्यम थी।

डॉ॰ शम्भुनाथ सिंह द्वारा सम्पादित "नवगीत दशकःतीन" के चुनिंदा दस गीतकारों में शामिल रहे। ज़हीर कुरेशी का हिन्दी ग़ज़ल लेखन में आना एक सहज प्रक्रिया थी और समयानुरूप भी। अब तक कुल नौ ग़ज़ल संग्रहों में 1000 से अधिक ग़ज़लें प्रकाशित हो जाने के बाद भी ज़हीर कुरेशी को लगता है कि उर्दू ग़ज़ल के बरक्स हिन्दी ग़ज़लों का अभी सर्वश्रेष्ठ आना बाकी है। "कुछ भूला, कुछ याद रहा" की भूमिका में ज़हीर कुरेशी लिखते हैं कि "कुछ भूला, याद रहा" पुस्तक में सम्मिलित मेरे अधिकांश आलेख संस्मरणों की श्रेणी में आते हैं। एक–दो आलेख आत्मकथात्मक शैली के भी हैं। फिर भी संस्मरण लेखन मुझे एक कठिन और चुनौतीपूर्ण लेखन कला ही अधिक लगती है। जिसमें आप प्रायः दशकों में फैली अपनी स्मृतियों पर जमी धूल बुहारने की कोशिश करते हैं।"[65]

"कुछ भूले बिसरे शायर" ज़हीर कुरेशी द्वारा चयनित एवं संपादित उन शायरों की स्मृतियों का गुलदस्ता है जिन्हें अपेक्षाकृत उतनी सफलता और लोकप्रियता नहीं मिल पायी जिसके वे हकदार थे। मध्यप्रदेश के ऐतिहासिक शहर उज्जैन से प्रकाशित होने वाले "समापवर्तन" में स्थायी स्तंभकार के रूप में लिखे 12 ग़ज़लकारों को इस पुस्तक में स्थान दिया गया है। स्वयं ज़हीर कुरेशी के शब्दों में "अब तक लगभग एक दर्जन हिन्दी उर्दू ग़ज़लकारों को भूले–बिसरे स्तंभ में सम्मिलित किया जा चुका है। इसके अन्तर्गत मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के बिरले एवं प्रभावशाली शायरों को पाठकों से रू–बरू कराया गया है – जिनकी

अपेक्षित चर्चा नहीं हो पाई। जिन्हें काव्य संग्रह में उतना महत्त्व नहीं मिल पाया जिसके वे अधिकारी थे।" उसी स्तंभ में छपे 12 ग़ज़लकारों को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित भी किया है। इस संग्रह में डॉ॰ अख्तर नज़मी, डॉ॰ हनुमंत नायडू, भवानी शंकर, सलीम 'अश्क', जैसे सिद्धहस्त ग़ज़लकार भी शामिल हैं। जिसमें उन ग़ज़लकारों का संक्षिप्त परिचय और 15 ग़ज़लें शामिल हैं। ग़ज़ल और हिन्दी ग़ज़ल के शोधार्थियों के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।

ज़हीर कुरेशी के सम्पूर्ण साहित्य का अनुशीलन करें तो यह स्पष्ट होता है कि अपने 45 वर्षों से अधिक रचनात्मक जीवन में हिन्दी ग़ज़ल को एक सम्मानजनक स्थान दिलवाने में सफल रहे हैं। हिन्दी ग़ज़ल का यह धीर–गम्भीर साधक दुष्यंत कुमार के बाद हिन्दी ग़ज़ल के झण्डे को पकड़े दुष्यंत कुमार द्वारा बनाये मार्ग पर अनथक–अनवरत चला, परिणाम स्वरूप 9 ग़ज़ल संग्रहों में 1200 से अधिक ग़ज़लें कही। वर्तमान दौर की सभी साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशित होते रहनें वाले ज़हीर कुरेशी आज हिन्दी ग़ज़ल के आला–दरजे के ग़ज़लकारों में शुमार हैं। "ज़हीर कुरेशी महत्व और मूल्यांकन" संपादक डॉ॰ विनय मिश्र, ज़हीर कुरेशी की "चुनिन्दा ग़ज़लें" संपादक डॉ॰ मधु खराटे, ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी की काव्य दृष्टि लेखक डॉ॰ मधु खराटे, इनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाशित होने वाली पुस्तकें हैं जो किसी भी साहित्यकार के लिए गौरव की अनुभूति हो सकती है। इसके अतिरिक्त उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव और स्वामी रामानन्द तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, नांदेड़ के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम (एम॰ए॰ उत्तरार्ध आधुनिक काव्य) में सम्मिलित उनकी ग़ज़लें संभवतः किसी भी विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल हिन्दी ग़ज़ल विधा की एक मात्र उपलब्धि है। यह हिन्दी ग़ज़ल को हिन्दी साहित्य की विधा के रूप में सर्व मान्य एवं सर्वग्राह्य बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय सफलता है। इसके अतिरिक्त भी हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, डॉ॰ सरदार मुजावर, हिन्दी ग़ज़ल और ग़ज़लकार – डॉ॰ सरदार मुजावर, हिन्दी ग़ज़ल दुष्यंत के बाद– डॉ॰ ज्ञान प्रकाश विवेक और हिन्दी की महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में उन पर स्वतंत्र आलेख प्रकाशित हैं।

ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों का कहन बड़ा व्यापक है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक सभी परिवेशों पर उन्होने लेखनी चलाई है। विगत सदी के अन्तिम दशकों में प्रचारित स्त्री–विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, जैसे अनेक नवाचारों से होकर भी उनका चिंतन गुजरता है और यह सब अनायास अभिव्यक्त हो जाता है। ज़हीर कुरेशी पर आलोचनात्मक पुस्तक लिखने वाले डॉ॰ मधु खराटे "ज़हीर कुरेशी की काव्य दृष्टि" में लिखते हैं कि "ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों की महत्वपूर्ण विशेषता है कथ्य और शिल्प का अनुपम समन्वय–सांमजस्य, संप्रेषणीयता की उदारता उनके प्रातिभ–प्रज्ञा का परिणाम है। इसी कारण उन्हें पाठकों ने पसंद किया है।[66]

ज़हीर कुरेशी को यह सृजनात्मक सामर्थ्य कहाँ से प्राप्त होता है, इस पर चर्चा करने से बेहतर है उन्हीं के शे'रों से इस पर विराम लगाया जाए कि –

"अनुभव की पाठशाला ने सिखाया है बहुत
जो सीखा है वो काम आया है बहुत।[67]

और –

"निकल पड़ती है कब आँखों से नदिया भूल जाते हैं
हम उनके दु:ख से मिलकर अपनी पीड़ा भूल जाते हैं।[68]

ज़हीर कुरेशी के व्यक्तिगत जीवनानुभव इतने तीव्र और व्यापक हैं कि उनको सारा जीवन ही एक पाठशाला प्रतीत होता है। सच भी यही है कि व्यक्ति अपने अनुभवों से ही सीखता है पर जहीर कुरेशी यहीं नहीं रूकते वे जमाने के दु:ख–दर्द को अपनी पीड़ाओं में सम्मिलित कर लेते हैं। और इनसे अपनी ग़ज़लों का विस्तृत साम्राज्य खड़ा करते हैं, जो 1200 से अधिक ग़ज़लों से गुजरता हुआ, एक लोकप्रिय शायर, जनप्रिय व्यक्तित्व और प्रशांत महासागर–सी धीर गम्भीरता पर जा पहुँचता है, जहाँ शांत लहरों की अनुभूति भी होती है, लेकिन इस अनुभूति का अर्थ भीतर से मचलना भी है, व्यथित होना भी है और सबसे बढ़कर उसे अभिव्यक्त करना भी है।

: संदर्भ सूची :

1. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 64 (द्वितीय संस्करण)
2. बोलता हैं बीज भी, ज़हीर कुरेशी,पृ॰ सं॰ 13
3. ज़हीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 243
4. ज़हीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 305
5. ज़हीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 305
6. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, भूमिका से
7. ज़हीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 27
8. कुछ भूला, कुछ याद रहा, ज़हीर कुरेशी,पृ॰ सं॰ 15
9. कुछ भूला, कुछ याद रहा, ज़हीर कुरेशी,पृ॰ सं॰ 15
10. ज़हीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 163
11. ज़हीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 163
12. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, सं. डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 83
13. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी (अपनी बात)
14. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13
15. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 17
16. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 17
17. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 35
18. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी भूमिका से (द्वितीय संस्करण)
19. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 64 (द्वितीय संस्करण)
20. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 67 (द्वितीय संस्करण)
21. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 103 (द्वितीय संस्करण)
22. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 117 (द्वितीय संस्करण)
23. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 42
24. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 28
25. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 51
26. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 51

27. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 85
28. भीड़ में सबसे अलग, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 53
29. भीड़ में सबसे अलग, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 59
30. भीड़ में सबसे अलग, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 15
31. ज़हीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 28
32. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, सं. डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 102
33. भीड में सबसे अलग, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 15
34. पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 24
35. पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰
36. ज़हीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 230
37. पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 71
38. पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 97
39. पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 25
40. पेड़ तन क भी नहीं टूटा, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 107
41. पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 94
42. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 20
43. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 20
44. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 112
45. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, भूमिका से
46. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 94
47. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 80
48. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13
49. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 26
50. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 112
51. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 32
52. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 34
53. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 26
54. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰ सं॰ 38
55. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰ सं॰ 79

56. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰ सं॰ 71
57. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰ सं॰ 71
58. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, ज़हीर कुरेशी, फ्लेप से
59. रास्तों में रास्ते निकले ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 79
60. रास्तों में रास्ते निकले ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 22
61. रास्तों में रास्ते निकले ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 23
62. रास्तों में रास्ते निकले ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 34
63. रास्तों में रास्ते निकले ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 17
64. रास्तों में रास्ते निकले ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 54
65. कुछ भूला, कुछ याद रहा, ज़हीर कुरेशी, भूमिका से
66. ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी की काव्य दृष्टि, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 183
67. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 42
68. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 30

अध्याय चतुर्थ

अध्याय – चतुर्थ

tghj dqjs'kh dh xtyksa esa laosnukvksa ds fofo/k vk;ke

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परम्परा में ज़हीर कुरेशी जाना–पहचाना नाम है। साहित्यकार अपने युगीन काव्य–धर्म की अभिव्यक्ति अपने लेखन के माध्यम से करता है लेखकीय धर्म और युगीन प्रवृत्तियाँ कवि की रचनाओं में साथ–साथ चलती हैं। ऐसा संभव है कि कवि अपनी प्रतिबद्धता के चलते किसी विचारधारा से बहुत गहराई के साथ जुड़ा हो। यह भी संभव है कि, उस विचारधारा की परिधि के बाहर निकलना मुश्किल हो, लेकिन वैचारिक परिधि के भीतर रहकर भी समर्थ रचनाकार अपने युग–धर्म का निर्वाह कर सकता है। ज़हीर कुरेशी के रचना–कर्म की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि जनवादी कविता के प्रतिबद्ध होते हुए भी उन्होंने अपने युग के यथार्थ को रेखांकित किया। युगीन प्रवृत्तियों पर चर्चा करते हुए अपने ग़ज़ल संग्रह “बोलता है बीज भी” में ज़हीर लिखते हैं “अगर प्रवृत्तियों की बात की जाए तो समकालीन हिन्दी ग़ज़ल अधिक यथार्थोन्मुख हुई है। वायवीयता से उसने अपना दामन छुड़ाया है। वह जिम्मेदारी के साथ हमारे वर्तमान के सच को बयान करना चाहती है। हमारे वर्तमान के सच भावनात्मक से लेकर सामाजिक – आर्थिक, राजनीतिक, वैयक्तिक और वैज्ञानिक भी हैं। आज की हिन्दी ग़ज़ल उन विषयों पर भी शे'र कह रही है जो हमारे मन के संसार के भेद (भी) खोलते हैं। आधुनिक टेक्नोलॉजी और वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य से भी समकालीन हिन्दी ग़ज़ल गाफिल नहीं है।”[1]

इस अध्याय के अन्तर्गत ज़हीर कुरेशी की काव्यगत संवेदनाओं का अनुशीलन किया जाना है। सामान्यतः संवेदना शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होता है, जिनका अभिप्रायः है – अनुभव, दुःख–सुख की प्रतीति करना, बोध ज्ञान अनुभूत। परन्तु साहित्य में 'संवेदना' वस्तुतः एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है, जिसका अर्थ

व्यापक हो गया है। विशिष्ट अनुभूति यथा भावगत, बुद्धिगत या दृश्यगत सभी तत्वों का समावेश इनमें हो गया है।

संवेदनाओं के विविध रूप

मानव जन्म से संवेदनशील प्राणी है कवि या कलाकार स्वभाव से सृजनशील होने के कारण सामान्य जन से कुछ अधिक संवेदनशील होता है। वह जिस परिवेश में जीता है, उस परिवेश की परिस्थितियाँ उसके अर्न्तज़गत में गहरे पैठकर निरन्तर अपने प्रकटीकरण का मार्ग खोजती रहती है। यह अभिव्यक्ति कई प्रकार के आकार ग्रहण कर लेती है जिन्हें अध्ययन की सुविधानुसार निम्न भागों में वर्गीकृत कर लेते हैं –

4.1 सामाजिक सरोकार

- 4.1.1. युगीन सामाजिक परिवेश
- 4.1.2. मानवीय मूल्यों का पतन
- 4.1.3. महानगरीय जीवन
- 4.1.4. स्त्री विमर्श
- 4.1.5. वर्ग–चेतना
- 4.1.6. आम आदमी का दुखः दर्द

4.2. राजनीति सरोकार

- 4.2.1. युगीन राजनैतिक परिवेश
- 4.2.2. भारतीय लोकतंत्र
- 4.2.3. राजनीतिक विसंगतियाँ
- 4.2.4. चुनाव
- 4.2.5. प्रशासनिक विसंगतियाँ
- 4.2.6. दिशाहीन राजनीति
- 4.2.7. स्वार्थी राजनीतिज्ञ
- 4.2.8. दलगत राजनीति
- 4.2.9. भ्रष्टाचार

4.3 आर्थिक सरोकार

4.4. सांस्कृतिक सरोकार

4.4.1. धर्म

4.4.2. प्रेम

4.4.3. संस्कृति

4.4.4. रिश्ते–नाते–परिवार

4.4.5. प्रकृति–पर्यावरण

ज़हीर कुरेशी का लेखन 9 ग़ज़ल संग्रहों तक विस्तृत है। लगभग 1200 से अधिक ग़ज़लें इन संग्रहों और विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। इन संग्रहों में विभिन्न विषयों और कथ्यों को लेकर ग़ज़लें कही गयी हैं। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक विषयों के साथ–साथ विमर्शों पर भी उनका चिंतन विस्तृत है। ज़हीर कुरेशी की ग़ज़ल यात्रा समकालीन कविता के दौर से प्रारम्भ होकर आज इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक तक अनवरत जारी है। जाहिर है इतनी सुदीर्घ यात्रा अवधि में उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में हुए अनेक परिवर्तन देखे हैं। ज़हीर कुरेशी की विशेषता यही है कि जहाँ उन्होंने इन परिवर्तनों को भली–भाँति पहचाना वहीं उसे अभिव्यक्त भी किया। इस दौर में कई साहित्यकारों ने गीत, नवगीत, कविता, छंदमुक्त कविता, दोहे, मुक्तक, कहानियाँ, उपन्यास आदि भी लिखे लेकिन भीड़ में सबसे अलग होने का दावा करने वाले ज़हीर कुरेशी ने एक मात्र ग़ज़ल को ही अपना आधार बनाकर अपना संघर्ष और रचना कर्म जारी रखा।

4.1 सामाजिक सरोकार

व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है। अपने जन्म के साथ ही उसे एक परिवार और समाज प्राप्त हो जाता है और उम्र के साथ–साथ इसका दायरा और विस्तार बढ़ता जाता है। विस्तार की गति अंतहीन है क्योंकि जब व्यक्ति विस्तार पाता है तो सम्पूर्ण विश्व ही उसका परिवार–समाज हो जाता है। संस्कृत साहित्य में तो कहा भी गया है कि –

"अयं निज परोवेति गणनालघुचेतसाम्
उदार चरितानाम तु वसुधैव कुटुम्बकम्।"

अर्थात् जो व्यक्ति अपने–पराये को छोड़कर, किसी को छोटा या बड़ा न मानकर, अपना विस्तार प्रारम्भ करता है ऐसे उदार चरित्र वाले व्यक्ति का सम्पूर्ण विश्व ही परिवार हो जाता है। सामान्य मनुष्य जहाँ अपनी, और अपने परिवार की चिंताओं से मुक्त नहीं हो पाता वहीं साहित्यकार अपने दुःखों के साथ संसार के दुःखों में संपृक्त रहता है। एक समर्थ रचनाकार अपने परिवेश से संवेदनाएं ग्रहण करता है। ये संवेदनाएं ही उसके लेखन का आधार बनती है और इसी कड़ी में सम्पूर्ण जगत से उसका रागात्मक संबंध भी स्थापित हो जाता है। साहित्य का उद्देश्य समाज का हित करना है। समाज के कल्याण के लिए जो कुछ भी–सत्यं –शिवम्–सुन्दरम् है उसकी प्रतिष्ठा वह अपने काव्य में करता है। सही मायने में ज़हीर कुरेशी सामाजिक सरोकार के ग़ज़लकार हैं। वे अपनी ग़ज़लों के माध्यम से समाज के आम–आदमी के दुःख –दर्दों को अभिव्यक्त करने में संकोच नहीं करते हैं। उसमें आए बदलावों पर चिंतन करते हैं, गाँव, कस्बों, नगर और महानगरों की यात्रा करते हुए वे सामाजिक जीवन के कई उतार–चढ़ावों को अपनी खुली आँखों से देखते हैं और उसे उसकी अच्छाई–बुराई, गुण–दोष के साथ अभिव्यक्त करते हैं। अध्याय के इस भाग में हम ज़हीर कुरेशी के सामाजिक सरोकारों के अन्तर्गत हम विभिन्न शीर्षकों पर चर्चा करेगें –

4.1.1 युगीन सामाजिक परिवेश

ज़हीर कुरेशी युग–धर्मा ग़ज़लकार हैं। वे अपने युग को जीते हैं, इसीलिए वे अपने समय में बदलते परिवेश को बारीकी से देखते हैं। अपने दूसरे ग़ज़ल संग्रह 'एक टुकड़ा धूप' के दूसरे संस्करण (प्रकाशन 2016) में ज़हीर कुरेशी खुद स्वीकार करते हैं कि "द्वितीय संस्करण के बहाने ही सही, मैंने अपनी चार दशक पहले कही हुई ग़ज़लों को एक बार फिर पढ़ा। ग़ज़लें पढ़कर मुझे बहुत अच्छा लगा। विगत चालीस वर्षों पहले कही हुई ग़ज़लों की सबसे बड़ी विशेषता तो मुझे यही लगी कि भाषिक रूप से ये लगभग वैसी ही है जैसी ग़ज़लें में आज कहता हूँ।"[2] इससे आगे वे लिखते हैं – "लेकिन इस चालीस वर्षों में आदमी की जिन्दगी बहुत बदल गई है।

आधुनिक टेक्नोलॉजी हमारे समय का बहुत बड़ा सच है। उसमें प्रवेश के साथ आज के मनुष्य का सुभाव बदला है। आधुनिक टेक्नोलॉजी के अनुसार हमारे रिश्ते–नाते भी बदल रहे हैं।"[3]

जाहिर है ज़हीर कुरेशी का रचना–कर्म 45 वर्षों के सुदीर्घ अंतराल तक फैला हुआ है। हिन्दी का उनका पहला संकलन 1975 में 'लेखनी के स्वप्न' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, तब से लेकर आज तक उनकी लेखनी चार दशकों की यात्रा पूर्ण कर पाँचवें दशक में भी अनवरत ग़ज़ल की राह पर है। इतने लंबे काल–खण्ड में उन्होनें समकालीन कविता में आया मोह–भंग का दौर भी देखा, तो विमर्शों से गुजरते हुए उदारवादी नीतियों से भारत में आयतित तकनीकी और विज्ञान के साथ–साथ बदलते सांस्कृतिक–साहित्यक मूल्यों को भी उनकी पारखी नज़रों ने भली–भाँति जाना–पहचाना। आज उत्तर आधुनिकता, उत्तर उपनिवेश–वाद और भूमण्डलीकरणके बाजार–वादी दौर में भी उनकी लेखनी निरन्तर सृजनरत है। आठवें दशक में जब महानगरों का जाल भारतीय परिवेश में बढ़ता जा रहा था और अजनबीपन, अकेलापन शहर के लोगों की पहचान बनते जा रहे थे, तब ज़हीर कुरेशी जी लिखते हैं –

"अपना है और अपनों से अनजान है शहर
सच पूछिये तो चेहरों की पहचान है शहर।"[4]

महानगरों में बदहवास भागती जिन्दगी को लेकर वे लिखते हैं –

"भाग–दौड़ की एक कहानी चलती है दिनभर
तारकोल की सड़क धूप में जलती है दिनभर।"[5]

ज़हीर कुरेशी ने अपनी काव्य–यात्रा आजादी के बाद उत्पन्न हुए मोह–भंग के दौर से प्रारम्भ की थी। बदलते परिवेश में वे मोह–भंग को यूँ परिभाषित करते हैं –

"धीरे–धीरे टूट रहे हैं खुश–फहमी के किले तमाम
मीलों पीछे छूट गये हैं खुशियों के सिलसिले तमाम।"[6]

अपने दूसरे ग़ज़ल संग्रह की भूमिका में ज़हीर कुरेशी लिखते हैं – "चाँदनी का दुःख" की पैंसठ ग़ज़लों के विषय को लेकर सिर्फ इतना भर कहना चाहूँगा कि ये वर्तमान जीवन परिवेश में आज के आम–आदमी की व्यथा एवं संघर्ष–कथा की संवेदनशील अभिव्यक्तियाँ हैं, जो तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से कहीं भी आँख चुराने की कोशिश नहीं करती है।"[7]

ग़ज़ल जब हिन्दी ग़ज़ल में बदलती है तो उसके कहन में जो परिवर्तन आता है, उसे ज़हीर कुरेशी इस तरह अभिव्यक्त करते हैं –

"किस्से नहीं है ये किसी विरहन की पीर के
ये शे'र हैं –अंधेरों से लड़ते जहीर' के"[8]

मुक्त पूँजी के परिणाम स्वरूप आदमी का व्यवहार किसी प्रकार बदलता जा रहा है

"मुक्त–पूँजी के प्रतिकार की
ये लड़ाई है बाजार की
ऐसे हिंसक समय में कहाँ
बातें करें प्यार की"[9]

और इस बदलते हुए परिवेश में जड़ हुई व्यवस्था को बचाने की उम्मीद भी चमत्कार से ही है –

"जड़ व्यवस्था को बदलेगा कौन
आस है बस चमत्कार की"[10]

इस बदलते हुए परिवेश में अपराध भी नये–नये हो रहे हैं –

"तरह–तरह के दिखे रोज 'नेट' पर हमले
नई सदी में हुए आम 'साइबर' हमले"[11]

4.1.2 मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। मानव–जीवन और मूल्य दोनों ही इसके प्रभाव विस्तार के क्षेत्र हैं। ग्राम हो या शहर दोनों ही जगह यह परिवर्तन निरन्तर चलता रहता है। हिन्दी ग़ज़ल में जिन मानवीय मूल्यों को अभिव्यक्ति मिली है, आम–आदमी के दुःख–दर्दों, पीड़ाओं को जिस प्रकार से शब्द दिए गए, उसमें एक प्रबल स्वर ज़हीर कुरेशी का है। मानव जीवन की प्रत्येक अनुभूति उनकी ग़ज़लोंमें शामिल है। सामाजिक बोध में मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति की अवधारणा बहुआयामी यथार्थ का बोध कराती है। मानवीय मूल्यों की प्राण–वायु मानवीय संवेदना है, जो व्यक्ति की विविध पीड़ाओं और समस्याओं के प्रति सहानुभूति से जन्म लेती है। ज़हीर कुरेशी आम आदमी की पीड़ा से खुद भी पीड़ित हैं –

"डबडबाई आँख में आँसू की कण–संख्या देख
मेरे उसके बीच, पीड़ा से अलग रिश्ता न देख"[12]

जाहिर सी बात है कि मानवीय संवेदना जाति, धर्म, भाषा आदि का घेरा तोड़कर मात्र पीड़ित के प्रति सहानुभूति दर्शाती है। आज भी देश में करोड़ों लोग हैं, जिनकी आवश्यकता सिर्फ दो वक्त की रोटी है –

"दो रोटी के अलावा 'चार' की बातें नहीं करते
करोड़ों लोग कोठी–कार की बातें नहीं करते"[13]

डॉ॰ नगेन्द्र का मानना है – "मानव मूल्य मानव को केन्द्र में रखकर चलते हैं, उनका आधार है मानव तत्व की सार्वभौम कल्पना जो देश–काल, धर्म–समाज, जाति–वर्ग आदि के भेद से मुक्त होती है। मानव–मूल्यों के अनुसार विश्व का प्रपंच का मूल सत्य है – 'न हि मानुषात श्रेष्ठतरं हि किञ्चित' है, अतः मानव का उत्कर्ष ही जीवन का चरम मूल्य है, जो अन्य सभी मूल्यों को अनुशासित करता है।"[14]

साठोत्तरी काल में मूल्य–चेतना का पतन तीव्रता से हुआ। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यह गिरावट दर्ज की गई। दुष्यंत कुमार ने हिन्दी ग़ज़ल को व्यंग्य का तेवर प्रदान किया जो परवर्ती ग़ज़लकारों में भी दिखलाई देता है। ज़हीर कुरेशी भी

इसके अपवाद नहीं हैं। ज़हीर कुरेशी नें मानवीय मूल्यों के पतन को बड़ी शिद्दत से अनुभव किया और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आई गिरावट को अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्त किया। सच्चाई–ईमान और नैतिकता भी किराए पर बिकने लगी तो उन्होनें लिखा है –

"सच्चाई, ईमान और नैतिकता के
निश्चित रहे किराए हैं इस बस्ती में"[15]

नैतिकता के पतन के कारण आम आदमी बहुत हताश है इसलिए वे लिखते हैं –

"टूक–टूक विश्वास लिये फिरते हैं
खुद को बहुत हताश लिये फिरते हैं"[16]

लोग और रिश्ते अब कागज के फूलों में परिवर्तित हो गए जिनमें कोई सुगंध ही बाकी नहीं है –

"लोग कागज़ के फूल हैं शायद
क्योंकि खुशबू किसी सुमन में नहीं।"[17]

और –

"यह रिश्तों का मधुबन शायद कागज के फूलों का है
कोई गंध नहीं दिखते हैं फूल बाग में खिले तमाम"[18]

हिन्दी ग़ज़ल की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण यही है कि इसमें सामाजिक विसंगतियों को व्यापक धरातल पर अभिव्यक्त करनें का सफल कार्य किया। यह शोषण, अत्याचार, स्वार्थों को बेनकाब कर आम–आदमी के पक्ष में खड़ी दिखाई देती है। उम्मीद की शमा जलाए यह आज भी अंधेरों से जूझती दिखायी देती है।

"अंधेरी रात नजर भोर पर टिकी है कहीं
कठिन समय में यही आस बच गई है कहीं"[19]

4.1.3 महानगरीय जीवन

महानगर हमारी सभ्यता की भौतिक प्रगति की पहचान है। जैसे–जैसे सभ्यता विकास के दौर में आगे बढ़ रही है, गाँव, कस्बों में और नगर, महानगरों में परिवर्तित होते जा रहे है। गाँव से निकल लोग, महानगरों की ओर पलायन कर रहे है। शहरों के ऊँचे–ऊँचे भवन बड़े–बड़े कारखाने उन्हें आकर्षित कर रहे है। यह आकर्षण जहाँ एक ओर महानगरों की जनसंख्या और समस्याओं में वृद्धि कर देता है, वहीं दूसरी ओर लोग महानगरों में जाकर अकेलेपन और तनाव का शिकार हो जाते है। महानगरों में लगातार बढ़ रही भीड़ पर्यावरण के लिए भी हानि कारक सिद्ध हो रही है। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल भी महानगरों में उत्पन्न समस्याओं को अपने कथ्य में समेटती रही है।

ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में भी महानगरीय जीवन की त्रासदी दिखाई देती है। महानगरीय जीवन में आए अजनबीपन को वे इस तरह बयां करते है –

"अपना है और अपनों से अनजान है शहर
सच पूछिये तो चेहरों की पहचान है शहर"[20]

अपराध महानगरीय जीवन की एक ऐसी सच्चाई है जो रोज ही सड़कों पर घटित होती दिखलाई पड़ती है –

"दिन–दहाड़े रैप, हत्या–कांड, डाके
आजकल सड़कें ये मंजर देखती है''[21]

महानगरीय जीवन में आकर व्यक्ति सांझे–चूल्हे और परिवार की भाषा भी भूल जाता है –

"ये महानगरीय जीवन का करिश्मा है
भूल बैठे हम सुखी परिवार की भाषा"[22]

और –

"कितना सुखी है 'गाँव' जो मस्ती में सो गया
भटका है सारी रात 'शहर' नींद के लिए"[23]

महानगरीय जीवन की विडंबना यह है कि यहाँ इतनी भीड़ में भी आदमी अकेलापन भोग रहा है। असंख्य ग्रामीण युवक नौकरी एवं व्यवसाय के लिए महानगरों में आते है। उद्योग–धंधों और व्यापार आदि के कारण गाँव का शहरों से संबंध बढ़ रहा है। गाँव के लोग सुखी जीवन के स्वप्न को आँखों में संजोएं महानगर की राह पकड़ लेते है। भोले–भाले ग्रामीणों की आँखों में बसे इन स्वप्नों को ज़हीर इस तरह अभिव्यक्त करते है –

"कितने सपनों को आँज कर आया
गाँव जब भी महानगर आया"[24]

महानगर भौतिक प्रगति के जीवंत दस्तावेज है। इस भौतिक प्रगति के परिणाम स्वरुप शहरी जीवन में भागम–भाग लगी रहती है। अर्थ की भूख ने लोगों के जीवन से सुकूंन छीन लिया। ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लें महानगरों के जीवन में आए इस बदलाव को भी रेखांकित करती है –

"आठों पहर अकूत कमाई के लोभ में
लोगों ने अपने घर को ही बाजार कर लिया"[25]

शहर में आकर व्यक्ति अपनी पहचान खोकर भीड़ का पर्याय बन जाता है। "पेड़ तन कर भी टूटा नहीं" संग्रह में दिए साक्षात्कार में ज़हीर साहब अपने बारे में कहते है– "एक संवेदनशील कवि के सामने तरह–तरह की भीड़ होती है – लाभ की, लोभ की, कामना की, रिश्तों की, आलोचना की, प्रतिरोध की, इन तमाम स्थितियों से लाभ भीड़ में संतृप्त होकर ही प्राप्त किये जा सकते है। चूंकि मैं भीड़ में रहते हुए भी भीड़ को तटस्थ भाव से देखने की कोशिश करता रहा हूँ इसलिए मेरे हिस्से में तो हानियाँ ही हानियाँ रही।"[26] अपनी इस पीड़ा को ज़हीर इस तरह अभिव्यक्त करते हैं –

"शहर में पहचान खोने आ गए
भीड़ का पर्याय होने आ गए"[27]

महानगरों की भीड़ भरी सड़कों को देखकर यह भान होने लगता है जैसे यह दुनिया एक रेस हो और सभी इस रेस का हिस्सा है। बढ़ती हुई आबादी का

दबाब इतना अधिक है मानो 'मैराथन' दौड़ चल रही हो –

"महानगरों में है प्रतिदिन ही कोई मैराथन
असंख्य लोग सड़क पर दिखाई देते हैं।"[28]

4.1.4 स्त्री–विमर्श

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों को विमर्शो का दौर कहा जाता है। जनतांत्रिक व्यवस्था में मनुष्य की विकृतियों का, व्यवस्था में मनुष्य की स्थितियों का, लोकतंत्र में मनुष्य की नियति का, आजादी की निरर्थकता के साथ–साथ भूख बेकारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, अन्याय, अमानवीयता, साम्प्रदायिक विद्वेष और खून–खराबा जैसे विषय साहित्य के केन्द्र में आने लगते हैं। साहित्य में आज़ादी के बाद की घटनाओं–परिस्थितियों पर एक प्रकार की बहस छिड़ जाती है, जिससे कई प्रकार के विमर्श जन्म लेते हैं। इनमें प्रमुख रुप से स्त्री–विमर्श और दलित–विमर्श चर्चा के केन्द्र में आते हैं। इस विमर्शवादी साहित्य की विशेषता यह थी कि इसके लेखन के केन्द्र में वह समाज स्वयं आकर खड़ा हो गया अर्थात स्त्री लेखन के केन्द्र में स्त्री लेखिकाएँ दलित लेखन के केन्द्र में दलित लेखक। इस विमर्शवादी साहित्य की अनुगूँज लेखन की प्रत्येक विधा से सुनाई पड़ती है। हिन्दी ग़ज़ल भी इसका अपवाद नहीं रही। बदलती सामाजिक परिस्थितियों पर हिन्दी ग़ज़ल भी अपनी लेखनी चलाती है और इसमें हमें समकालीन साहित्य की सारी विशेषताएँ यथा – बाजारवाद, भूमण्डलीकरण, गरीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार, बदलते जीवन मूल्य, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, महानगरीय बोध, दलित–विमर्श के साथ नारीवादी विमर्श भी दृष्टिगोचर होता है। बल्कि यो कहे कि साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक मुखर दिखलाई देता है। हिन्दी ग़ज़ल में आधुनिक विमर्शो पर चर्चा करते हुए ज़हीर कुरेशी के संदर्भ में नूर मोहम्मद नूर लिखते है कि– "समकालीन समाज का ऐसा कौनसा यथार्थ है जो ज़हीर की ग़ज़लों में नहीं हैं। थोड़ा ध्यान से देखे तो पाऐंगे कि समकालीन परिदृश्य में आकंठ डूबी ज़हीर की ग़ज़लों में उनकी एक विशिष्ट भंगिमा है जो उन्हें उनके समकालीनों में किंचित अलग खड़ा कर देती है, वो है उनकी ग़ज़लों में जगह–जगह, बार–बार, नमूदार होती स्त्री ––––– स्त्री विमर्श कहे क्या ? ग़ज़लों के समीक्षक जरा डूब कर उनकी ग़ज़लों से गुजरे और इस स्त्री को देख पाए––––––––– तो उनकी शब्दावली शायद यही हो, स्त्री विमर्श।"[29]

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में प्रारंभ से ही स्त्री विमर्श की सशक्त अभिव्यक्ति दिखलाई देती है। नारी शोषण एवं अत्याचार को जिस संवेदना के साथ उसमें अभिव्यक्त किया गया, वह अयंत्र दुर्लभ है। भारतीय नारीवाद के परंपरागत संघर्ष के उस इतिहास को ज़हीर कुरेशी ने आसानी से एक ग़ज़ल में प्रस्तुत कर दिया जिसे प्रस्तुत करने में कथा साहित्य को एक विस्तृत फलक की आवश्यकता होती है –

" क्या कहें अखबार वालों से व्यथा औरत
यौन शोषण की युगों लम्बी कथा औरत
कल सती होकर जली थी आज पति के हाथ
बन गई जीवित जलाने की प्रथा औरत"[30]

प्रसिद्ध नारी वाद लेखिका 'सिमोन–द–बोआ' ने नारी की स्थिति को स्पष्ट करते हुए अपनी पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' में लिखा है "औरत को औरत होना सिखाया जाता है। औरत बनी रहने के अनुकूल बनाया जाता है।"[31] समाज में प्रचलित इस चलन को ज़हीर कुरेशी प्रतीक के माध्यम से इस तरहा बयां करते हैं –

"पिता के घर से पी–घर की दिशा में
चली नदियाँ समन्दर की दिशा में"[32]

भारतीय समाज स्त्रियों का समान अधिकार देने का वादा तो करता है लेकिन व्यवहार में ऐसा दिखाई नहीं देता। नारी आज भी अपनी मुक्ति का संघर्ष कर रही है। इस सिलसिले को ज़हीर कुरेशी इस प्रकार लिखते हैं –

"आपने पत्नी को सारे सुख बराबर के दिए
किन्तु मिल सकती नहीं, उसको बराबर की जगह"[33]

समाज के धनशाली–बलशाली वयोवृद्ध अपने धन–बल के जोर पर समाज की गरीब लड़कियों से विवाह कर लेते हैं। कई जगह माँ–बाप अपनी लड़कियों को शादी के नाम पर बेच देते हैं। ऐसी बेमेल शादियों का दंश स्त्रियों को झेलना पड़ता है। तब ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"उम्र के साथ थकी देह, हुआ मन बूढ़ा
मन के पश्चात् , हुआ व्यक्ति का चिंतन बूढ़ा
उस 'सुहागिन' की व्यथा आप भला क्या समझें
जिसके तपते हुए यौवन को मिला तन बूढ़ा"[34]

अनमेल या बेमेल विवाह के परिणाम नारी जीवन को कहाँ तक प्रभावित करते है, यह सामाजिकों से छुपा नहीं है। रीति–रिवाजों से बँधी भारतीय नारी भी ऐसे विवाहों में बँधने के बाद ही संस्कारों की लक्ष्मण–रेखा को लाँघने का साहस जुटाती है। निश्चय ही वह मानसिक झंझावातों से गुजर कर ऐसे निर्णय पर पहुँचती है। ज़हीर कुरेशी नारी की इस मानसिक स्थिति को इस तरह अभिव्यक्त करते है –

"जब भी औरत ने अपनी सीमा रेखा को पार किया
पार–गमन से पहले खुद को कितने दिन तैयार किया"[35]

बढ़ते हुए तकनीकी विकास ने भारतीय जन–मानस में भ्रूण–परीक्षण और कन्या भ्रूण हत्या जैसी भयानक समस्या को जन्म दिया जिसके परिणाम आज हम लैंगिक विषमता के रुप में भोग रहे है। ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में इस समस्या पर भी चिंतन दिखलाई देता है, वे लिखते है कि –

"लिंग निर्धारण समस्या हो गई
कोख में ही कत्ल कन्या हो गई
लोग कर पाये नहीं खुलकर विरोध
सिर्फ अखबारों में निंदा हो गई"[36]

और

"भ्रूण हत्याएँ सड़क पर है
स्तब्ध मुद्राएँ सड़क पर है"[37]

"यत्र नार्यास्तु पूजन्ते, रमन्ते तत्र देवता" के इस देश में नारी–शोषण एवं अत्याचार बढ़ता जा रहा है, जिसकी सहज अभिव्यक्ति हमें ज़हीर कुरेशी की

ग़ज़लों में दिखलाई देती है। प्रसिद्ध ग़ज़ल आलोचक डॉ॰ सायमा बानो लिखती हैं– नारी जीवन के यथार्थ के निकट हिन्दी ग़ज़लों को ले जाने में ज़हीर की अहम् भूमिका रही है। स्त्री जीवन की कटुताओं और विसंगतियों को इन ग़ज़लों ने प्रभावी स्वर दिया है। स्त्री के विविध रुपों में अपनी संवेदनाओं के साथ ज़हीर वहाँ उपस्थित है। पत्नी, पुत्री, प्रेयसी, माँ यहाँ तक कि गणिका का चित्रण भी इनमें बिम्बित है और इन सबसे बढ़कर नारी का वह रुप जिसकी युगों से अवहेलना होती रही है–उसका मनुष्य रुप। ज़हीर की ग़ज़लें नारी को उसके मनुष्य होने का अधिकार दिलाना चाहती है।" [38]

भारतीय स्त्री की पतिव्रता मानसिकता का उल्लेख ज़हीर इस प्रकार करते हैं –

"हुई संध्या तो उस औरत ने बाला दीप मंदिर में
उसी के साथ मन में दीप यादों ने जलाए है"[39]

इक्कीसवीं सदी में आते–आते महानगरीय जीवन में और अधिक खुलापन आता जा रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के 'प्रॉडक्ट' बेचने के लिए अपनी देह का खुला इस्तेमाल करना हो चाहे रेम्प पर 'केटवॉक' करना अब भारतीय स्त्रियाँ भी किसी से पीछे नहीं है। इस मानसिकता को उजागर करता ज़हीर कुरेशी का यह शे'र कि –

"अति पारदर्शी वस्त्रों की फैशन परेड़ में
हाथों से तन छिपाना जरुरी नहीं लगा" [40]

और –

"सुंदर कोई बनाता नहीं मन को आज कल
और फैशन से नग्न तन को सजाने की होड़ है"[41]

इसके अतिरिक्त भी ज़हीर कुरेशी ने उत्तर आधुनिकता से जन्मी और भारतीय परिवेश में शनैः शनैः व्याप्त होती कई अवधारणाओं को भी अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्त किया है, जैसे– लिव–इन–रिलेशनशिप, सेरोगेट मदर, पुरुष वैश्यावृत्ति आदि।

लिव–इन–रिलेशनशिप

"उसने अपना 'लिव इन' तक का रिश्ता था
उस जीवन में हम छह साल शरीक रहे"[42]

और–

"उनको 'लिव–इन' सुरक्षित लगा
प्यार में बुद्धिमानी मिली"[43]

सरोगेट मदर

"एक औरत साथ रहकर दे गई संतान सुख
हम न उसकी कोख का समुचित किराया दे सकें"[44]

पुरुष वैश्या वृत्ति

"औरत भी अब खरीद रही है पुरुष की देह
लेकिन नया–नया है वे उद्योग आज भी"[45]

4.1.5. वर्ग–चेतना

दुष्यन्त कुमार के बाद हिन्दी ग़ज़ल जिस प्रकार के खास तेवर लेकर आगे बढ़ी है उसमें राजनीतिक एवं सामाजिक सरोकार प्रमुख रुप से सामने आते हैं। ज़हीर कुरेशी इन सरोकारों के स्वाभाविक चितेरे है। इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि आदिकाल से शोषण वर्ग आम–आदमी का शोषण करता चला आ रहा है। शोषण का यह सिलसिला आज तक जारी है। शोषण के विविध रुप परिवेश के अनुरुप बदलते रहते है। साहित्य में इन शोषित वर्गो को समुचित स्थान देकर इनके भीतर चेतना का संचार करने का प्रयास जारी रहा है। भारतीय समाज में धन का असमान वितरण भी इस चेतना को ऊर्जा देने का कार्य करता है। पूँजीपति गरीबों–शोषितों का शोषण करके दिन–रात अपनी तिजोरियाँ भरते रहते है, वहीं दूसरी ओर हाड़–तोड़ मेहनत करने के बावजूद भी एक वर्ग अच्छे खान–पान, अच्छी शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए तरस रहा है। समाज में व्याप्त इस विषमता पर हिन्दी ग़ज़लकारों की नजर जाती है और पूरी संवेदनशीलता से वह इन विद्रूपताओं को उजागर कर इस वर्ग में चेतना फूँकने का काम करती है। आज भी देश में कई क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ सरकारी सुविधाएँ नहीं पहुँचती हैं। ज़हीर कुरेशी इस विवशता को इस तरह बयां करते है –

"यहाँ इस देश में कुछ आदिवासी क्षेत्र ऐसे है
जहाँ के नागरिक सरकार की बातें नहीं करते"[46]

गरीबी भुखमरी को दूर करने की चर्चा संसद में जोर–शोर से की जाती है मगर नतीजा हमेशा सिफर होता है –

"एक–से वक्तव्य, नारे एक से
है लुटेरों के इशारे एक–से
भूख 'झुग्गी' में लगे या 'खान' में
भूख दिखलाती है तारे एक–से"[47]

इस सामाजिक विषमता के लिए पूँजीवादी व्यवस्था ही जिम्मेदार है। यही व्यवस्था शोषण को बढ़ावा देती है जिससे गरीब व्यक्ति और ज्यादा गरीब होता चला जाता है। गरीबी सहने के अलावा और कोई चारा भी उसके पास नहीं है, इसीलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"जनता को सहने की आदत है, सब कुछ सह लेती है
किसी कष्ट को लेकर, जनता ने कब हाहाकार किया"[48]

पूँजीवाद सत्ता द्वारा जनता को दिखाए जा रहे सब्ज़बाग टूटते जा रहे हैं, महँगाई बढ़ती जा रही है बेरोजगारी की कतारें लम्बी होती जा रही हैं। मेहनतकशों का हक मारकर पूँजीवादी लोग 'कालाधन' एकत्र कर अपनी तिजोरियाँ भरने में लगे रहते हैं –

"उन्हीं की मेहनतों से फूलता–फलता है कालाधन
अमीरों को कमाई करके खुद कंगाल देते हैं"[49]

मेहनतकश मजदूरों के साथ हमेशा ऐसा ही होता है उनके पसीने का अनादर किया जाता है –

"ये श्रम के साथ अक्सर हो रहा है
पसीने का अनादर हो रहा है"[50]

अगर कभी कभी किसी मसले पर उनकी राय पूछी भी जाती है, तो वह भी शोषण के नये हथकंडे अपनाने के लिए ही –

"सर्वहारा से भी पूछी जा रही है उनकी राय
शोषकों के सुर बदलने का समय आ ही गया"[51]

इस प्रकार हम देखते हैं कि ज़हीर कुरेशी अपनी ग़ज़लों के माध्यम से समाज के निम्न वर्ग में चेतना उत्पन्न करने का काम करते हैं। वे गरीब–शोषित की आवाज बन न केवल उसे अभिव्यक्त करते हैं वरन उनका पुरजोर समर्थन भी करते हैं।

4.1.6. आम आदमी का दुखः दर्द

हिन्दी ग़ज़ल समकालीन कविता का एक प्रमुख स्वर है। समकालीन कविता में आम आदमी के दुःख–दर्दों को व्यापक धरातल पर उँकेरा गया है। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में भी आम आदमी के दुःख–दर्दों, पीड़ाओं को प्रमुखता से अभिव्यक्त किया गया है। ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में इसे पूरी शिद्दत के साथ उजागर किया गया है। स्वयं ज़हीर कुरेशी स्पष्ट घोषणा करते हैं –

"किस्से नहीं हैं ये किसी विरहन की पीर के
ये शेर हैं .....अँधेरों से लड़ते जहीर के
मैं आम आदमी हूँ, तुम्हारा ही आदमी
तुम काश देख पाते मेरे दिल को चीर के"[52]

ज़हीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से आम–आदमी की व्यथाओं का सटीक एवं बेबाक चित्रण किया है। वे शोषित, पीड़ित, उपेक्षित, व्यथित, मानवता के प्रति गहरी संवेदनाएँ रखते हैं और इसीलिए लिखते हैं –

"दो रोटी के अलावा चार की बातें नहीं करते
करोड़ों लोग कोठी–कार की बातें नहीं करते"[53]

ज़हीर कुरेशी ने आम आदमी की पीड़ा का चित्रण अत्यन्त प्रभावी ढंग से किया है। ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में आम आदमी के चित्रण पर अपनी समीक्षात्मक दृष्टिपाँत करते हुए डॉ॰ वशिष्ठ अनूप ने लिखा है – "ज़हीर की ग़ज़लें उस आम आदमी के जीवन का आईना है। जो शोषित और वंचित है। जो आजादी के इतने वर्षों बाद भी और विकास के सरकारी दावों के बावजूद अनेक प्रकार के दमन और अत्याचार का शिकार हैं, हर तरफ से उपेक्षित और तिरस्कृत है। वह जन जो दिनभर कठिन श्रम करने के बाद भी शाम को अपने परिवार के लिए भरपेट भोजन की व्यवस्था नहीं कर पाता। सच्चाई यह है कि एक तरफ औद्योगिक घरानों का मुनाफा कई गुना गति से बढ़ रहा है। दूसरी तरफ गरीब आदमी और निरीह होता जा रहा है।"[54]

देश के करोड़ों भूखे, नंगे, उत्पीड़ित उपेक्षित लोग के दर्द को ज़हीर कुरेशी इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं –

"लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं लेकिन
भूख गरीबी रेखा से ऊपर होती है।"[55]

और

"भूख झुग्गी में लगे या खान में
भूख दिखलाती है तारे एक से।"[56]

आम आदमी के ऐसे हालातों के लिए जिम्मेदार हैं–युगों से चली आ रही शोषण की प्रवृति। आम–आदमी को सुविधाओं से वंचित रखा जाता है। उन तक सुविधाएँ पहुँचाने के सारे लक्ष्य विवादों में उलझे हुए हैं, इसलिए ज़हीर कुरेशी कहते हैं –

"हो गए हैं लक्ष्य सब ओझल विवादों में
आदमी उलझा रहा केवल विवादों में
लोग संसद में विगत चालीस वर्षों से
कर रहे हैं भुखमरी को विवादों में"[57]

इस प्रकार हम देखते हैं कि ज़हीर कुरेशी के सामाजिक सरोकार सीधे – सीधे आम आदमी से जुड़े हैं। विभिन्न विषयों पर उनके सम सामयिक चिंतन की बानगी उनकी ग़ज़लों के माध्यम से अभिव्यक्त होती रहती है। ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों पर अपने एक आलेख में वरिष्ठ ग़ज़ल आलोचक महेन्द्र नेह लिखते हैं – "हिन्दी ग़ज़ल में व्यवस्था विरोध का स्वर काफी तीखा है लेकिन जितनी गहरी जन पक्षधरता ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में है, वैसी अन्यंत्र कम ही दिखाई देती है"[58]

4.2 राजनीति सरोकार

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था को स्वीकार किया गया। राजनीतिक दल लोकतांत्रिक व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं। प्रत्येक पाँच वर्षों पश्चात् या अपना बहुमत सिद्ध न कर पाने की स्थिति में चुनाव की व्यवस्था भी हमारे लोकतंत्र की एक विशेषता है। जनता की चुनी हुई सरकारें ही हमारे देश का शासन, प्रशासन और नीति, निर्माण विकास की योजनाएँ बनाती हैं और उन्हें क्रियान्वित करने–करवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखती हैं। देश की जनता का सीधा जुड़ाव व्यवस्था से होता है लेकिन कालान्तर में इस व्यवस्था में कई प्रकार की विसंगतियाँ आ जाने से जब प्रश्न चिन्ह लगने लगे तो साहित्य के माध्यम से भी इन प्रश्नों को अभिव्यक्त किया जाने लगा। चुनावी प्रणाली में आयी विसंगतियाँ, दिशाहीन राजनीति, भ्रष्टाचार, स्वार्थी राजनीतिज्ञों के कारण हमारे लोकतंत्र को खतरा होने लगा परिणाम स्वरूप राजनीतिक अस्थिरता, वैचारिक अस्थिरता, चुनावी धाँधली, परिवारवाद, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, और देश में बड़े–बड़े घोटाले इसकी परिणति में सामने आने लगे। समकालीन साहित्यकारों ने राजनीतिक व्यवस्था में आयी इन विसंगतियों को देखकर न सिर्फ आक्रोश व्यक्त किया वरन् उसे अभिव्यक्त भी किया। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में यह अभिव्यक्ति सशक्त रूप में दिखलाई देती है।

ज़हीर कुरेशी विगत 45 वर्षों से हिन्दी ग़ज़ल लेखन से जुड़े हैं। उनकी अनुभवी आँखों ने राजनीतिक उथल–पुथल से लेकर हमारी लोकतांत्रिक प्रणाली में गहरे तक पैठ गयी खामियों को देखा और महसूस किया है। चतुर्थ अध्याय के इस भाग में हम ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में व्यक्त हुए राजनीतिक सराकोरों का अध्ययन

करेगें जिन्हें सुविधा की दृष्टि से अनेक उपभागों में बाँट रखा है।

4.2.1. युगीन राजनीतिक सरोकार

ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में युगीन राजनैतिक सरोकारों की सशक्त अभिव्यक्ति दिखलाई देती है। भारतीय राजनीति में इस तरह का बदलाव आ गया कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधि राजाओं जैसा व्यवहार करने लगे। अपने साथ चापलूसो और पिछलग्गुओं की एक बड़ी फौज लिए हुए इन राजनेताओं ने जन–सुविधाओं को केन्द्रित कर सिर्फ अपने चहेतों को लाभ पहुँचाना प्रारम्भ कर दिया। साहित्य भी इनमें अछूता नहीं रहा और पद–प्रतिष्ठा–पुरस्कार पाने के लिए साहित्यकारों ने नव दरबारी–भाषा विकसित कर ली। ज़हीर कुरेशी इस व्यवस्था को इस तरह पारिभाषित करते हैं –

"इन प्रजातंत्रीय राजाओं की चौखट पर
फूलती–फलती रही 'दरबार' की भाषा
इनकी बातों में विरोधी दल का लहजा है
और उनके पास है सरकार की भाषा"[59]

वोट पाने की खातिर राजनेता किसी भी स्तर तक गिर जाते हैं चाहे इनके लिए धार्मिक–साम्प्रदायिक उन्माद ही क्यूँ ना फैलाना पड़े, इसीलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"इस राजनीति द्वारा महज वोट के लिए
जलते हुए सवालों को पैदा किया गया"[60]

आज सत्ता भी धर्म सत्ता के साथ मिलकर वोट की रानीति करती है। राजनेता वोट पाने के खातिर जहाँ एक ओर धार्मिक उन्माद फैलाते हैं, दूसरी ओर साम्प्रदायिक या जातिगत आधार पर वोटरों को लुभाने का कार्य करते हैं, तब जहीर कुरेशी लिखते हैं –

"राजनीति में हुआ घर्म का गठबंधन
मजहब तब सबसे ज्यादा अनुदार लगे"[61]

धर्म और सम्प्रदाय के साथ–साथ जातिवाद भी हमारी लोकतंत्रीय व्यवस्था में वोट–बैंक बनकर सामने आया है। जाति के नाम पर वोट और वोटरों को लुभाने की कोशिशें इन दिनों आम होती जा रही हैं। इसीलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं – जाति के नाम पर वोट और वोटरों को लुभाने की कोशिशें इन दिनों आम होती जा रही हैं।

"उस दिन से गड़बड़ाने लगा वोट का गणित
जिस दिन से काम करने लगा जातिवाद भी"[62]

दल–बदली और गठबंधन की सरकारें भारतीय लोकतंत्र का ऐसा कटु यथार्थ है, जिसमें स्वार्थ की राजनीति को बढ़ावा दिया है। आज के राजनेता येन –केन–प्रकारेण सत्ता के आस–पास बने रहना चाहते हैं और यही कारण है कि जहाँ एक ओर चुनाव से ठीक पहले अलग–अलग दल मिलकर गठबंधन कर लेते हैं, वहीं बहुमत न आने की दशा में दल–बदली भी कर लेते हैं। ज़हीर कुरेशी भारतीय लोकतंत्र की इस विसंगतियों को इस तरह अभिव्यक्त करते हैं –

"जब से गठबंधन की सरकारों का आया है रिवाज
जो इधर थे अचानक ही उधर होने लगे"[63]

आज की राजनीति का बहुत बड़ा सच है, उसकी पूँजी की अधीनता स्वीकार कर लेना। अब सरकारें बनाने और बिगाड़ने में पूँजी का इस्तेमाल बढ़ता जा रहा है। ऐसे में कई धनाढ्य पूँजी के बल पर राजनेता बन गये हैं। राजनीति में पूँजीपतियों का आना और उसमें भी पैसा कमाना भारतीय राजनीति का ऐसा सच है जिसका चेहरा बड़ा डरावना और वीभत्स है। इस चेहरे को उजागर करते हुए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं कि –

"जनतंत्र में दलाली का अवसर बना लिया
पूँजी ने राजनीति को चाकर बना लिया"[64]

4.2.2 भारतीय लोकतंत्र

आजादी के पश्चात् जब हमारा देश स्वतंत्र हुआ, तब ही यह तय हो गया था कि देश पर जनता की चुनी हुई सरकार का शासन होगा। शासन में जनता की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए देश में लोकतांत्रिक प्रणाली से सरकार का चलाना सुनिश्चित किया गया। जनतंत्र की सफलता तब ही निश्चित है जबकि वह सारी जनता को साथ लेकर चले। अपने ग़ज़ल संग्रह "बोलता हैं बीज भी" में ज़हीर कुरेशी सफल जनतंत्र को इस तरह परिभाषित करते हैं कि –

"वही जनतंत्र में सबसे सफल है
जो चलते हैं 'जनो' के साथ"[65]

लोकतांत्रिक व्यवस्था में विपक्षीदलों की भी वही भूमिका होती है। विपक्ष में रहते हुए जनता–जनार्दन की भलाई के मुद्दों को संसद में उठाना और गलत का विरोध करना विपक्षी दलों का मुख्य कर्तव्य है लेकिन विपक्ष बगैर मुद्दों के भी संसद को अवरूद्ध करती है तो फिर ग़ज़लकार को लिखना पड़ता है कि –

"समझकर भी समझ पाते नहीं हैं
विपक्षी दल, किसी सरकार का दुःख"[66]

किन्तु जब विपक्ष जनता से जुड़े मुद्दे को दमदार तरीके से उठाता है तो फिर सरकार को तुरन्त उसका निदान करना पड़ता है –

"जब विपक्षी ओर कुछ प्रश्न तनकर आ गए
तो विवशता ही सही तत्काल उनके हल हुए"[67]

भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी विशेषता है, इसका संविधान, जो यहाँ के निवासियों को खुलकर जीने की आजादी देता है। संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों की बदौलत यहाँ जनता को स्वतंत्र जीने का अधिकार है, वहीं मूल कर्तव्यों और नीति निर्देशक तत्वों की प्रेरणा से एक संयमित जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है।

जनता की चुनी हुई सरकार पर यह जिम्मेदारी होती है कि वह संविधान की आत्मा की रक्षा करें लेकिन लोकतंत्र में भी कुछ तानाशाह ऐसे हैं जो गरीब एवं निर्बलों के मौलिक अधिकारों का हनन करते हैं, इसीलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं कि –

"संविधानों की भी रक्षा नहीं कर पाई जो
मूक दर्शन बनी सरकार से डर लगता है"[68]

जनतांत्रिक व्यवस्था में सरकार जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों से चलती है। इसीलिए जनप्रतिनिधि कहलाने वाले लोग अपने पीछे समर्थकों की एक भारी फौज खड़ी कर लेते हैं। रोज उनके घर पर दरबार जैसा सजता है। इसीलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं कि –

"वो जो संसद में दिखते थे जनतांत्रिक
उनके घर 'राजदरबार' होने लगे"[69]

जब जनप्रतिनिधियों के घर दरबार सजता है तो वहाँ भी भाषा और वातावरण की दरबारी हो जाता है, ज़हीर कुरेशी इसे यूँ अभिव्यक्त करते हैं –

"इन प्रजातंत्रीय राजाओं की चौखट पर
फूलती–फलती रही दरबार की भाषा"[70]

4.2.3 i'kklfud folxfr;k

हमारी न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका लोकतंत्र के आधार स्तंभ हैं। पत्रकारिता को लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में जाना जाता है। विधायिका कानून निर्माण करती है, कार्यपालिका उसे लागू करती है न्यायपालिका उसे संरक्षित करती है और पत्रकारिता इन तीनों पर नियंत्रण का कार्य करती है। इस प्रकार कार्यपालिका ही वास्तविक रूप में जनता की भलाई के कार्य का क्रियान्वयन करती है। इसी कार्यपालिका के कार्यों की क्रियान्वति के लिए लोक–सेवक चुने जाते हैं जिसे हम सामान्य भाषा में प्रशासन कहते हैं। यही प्रशासनिक अधिकारी

वास्तविक रूप से देश की बागडोर संभालते हैं कानून और व्यवस्था का उत्तरदायित्व इन्हीं लोकसेवकों की जिम्मेदारी होते हैं लेकिन राजनेताओं और लोकसेवकों की मिली भगत से इनमें कई प्रकार की विसंगतियाँ आ जाती हैं। जिससे जन कल्याण योजनाओं के क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न होती है।

स्वतंत्रता के इतने सालों बाद भी जनता आम सुख–सुविधाओं से वंचित है, फिर भी जनता अगर हाहाकार नहीं करती है तब ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"जनता को सहने की आदत है सब कुछ सह लेती है
किसी कष्ट को लेकर, जनता ने कब हाहाकार किया"[71]

विकास के तमाम दावों के बीच भी जब जमीनी सच्चाई नजर नहीं आती है तो ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"फाईलों ने विकास का चेहरा
आँकड़ों की जुबान से देखा"[72]

आखिर जनता भरोसा भी किस पर करे ? सरकार के बदल जाने पर भी आम आदमी की माली हालत में कुछ सुधार नहीं होता तो ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"एक–से व्यक्तत्व, नारे एक–से
हैं लुटेरों के ईशारे एक–से"[73]

और इस भ्रष्ट व्यवस्था से छुटकारे की उम्मीद किस चमत्कार से ही की जा सकती है –

"जड़ व्यवस्था को बदलेगा कौन
आस है बस चमत्कार की"[74]

4.2.4 चुनाव

लोकतांत्रिक प्रणाली में चुनाव एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। प्रत्येक पाँच साल बाद या सरकार द्वारा बहुमत खो देने की स्थिति में हमारे यहाँ 'चुनाव' करवाने की

व्यवस्था है। कहने को तो ये एक पारदर्शी व्यवस्था है। जिसमें देश के मतदाता अपने मत का प्रयोग करते हुए अपना प्रतिनिधित्व चुनते हैं लेकिन इस व्यवस्था में कई तरह की विसंगतियाँ आ गई 'जो चुनाव को चुनाव' नहीं रहने देती हैं। धर्म, जाति, सम्प्रदाय, भय, निरक्षरता, जैसे कई उपादान चुनाव में काम आते हैं। समक्ष लोग कमजोर लोगों को येन–केन–प्रकारेण डरा धमका कर अपने पक्ष में 'वोट' करने को बाध्य करते हैं, इसीलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"लोग करते हैं चुनावों में भयादोहन
अपनी मरजी से उन्हें चुनता नहीं कोई"[75]

जातिवाद भी चुनाव जीतने का एक बड़ा माध्यम बन गया है। आजकल राजनैतिक दल भी उसी व्यक्ति को टिकट देने में प्राथमिकता देते हैं जिसकी जाति या वर्ग की वहाँ अधिकता हो, अपनी एक ग़ज़ल में ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"उस दिन गड़बड़ाने लगा वोट का गणित
जिस दिन से काम करने लगा जातिवाद भी"[76]

धर्म भी चुनाव जीतने में एक बड़ा कारक बनता है जहाँ जिस धर्म या सम्प्रदाय के लोगों की बहुलता है वहाँ उस धर्म के लोगों को लुभाने का काम भी राजनेता करते हैं, इस बात को ज़हीर कुरेशी बेहद संजीदा और संकेतों में अभिव्यक्त करते हैं –

"जो मन्दिर की तरफ थे, आज मस्जिद की तरफ निकले
सियासतदान मुद्दे को बदलना सीख जाते हैं"[77]

ये हमारे लोकतंत्र की विडम्बना है कि इतने सालों बाद भी आम–जनता को वोट के बदले सिर्फ आश्वासन ही मिलते हैं। कुछ लोगों के लिए चुनाव मुफ्त का आहार खाने का माध्यम बन जाता है। चुनावी समय में रैलियों में जाते भाड़े के आदमी हो, खाने–पीने के बदले वोट देते मतदाता हो ज़हीर की पैनी नज़र इन लोगों तक भी जा पहुँचती है और लिखते हैं –

"वोट के बदले आश्वासन मिले
भोले लोगों की अपेक्षा बढ़ गईं"[78]

और –

"सिर पे आए हैं जब भी चुनाव
कुछ तो आहार में बिक गए"[79]

मतदाताओं को धमकाना और बूथ लूटना जैसी घटनाएँ भी हमारे लोकतंत्र में देखी जा सकती हैं। बाहुबली प्रत्याक्षियों द्वारा मतदान के दिन यह असंवैधानिक कृत्य करना/करवाना अब आम हो चुका है। ज़हीर कुरेशी इसे इस तरह अभिव्यक्त करते हैं कि –

"हमको चलना है लेकिन यह राजनीति तय करती है
हमने तो केवल नेता के कहने पर प्रस्थान दिया"[80]

और –

"बूथ लूटने के अधिक अवसर बने
राजनेता तंत्र से 'जन' ले गए।"[81]

आजकल मीडिया का युग है। टी॰वी॰ पत्रकारिता ने समाचारों की दुनियाँ में हलचल मचा रखी है। चुनाव के समय में चुनावी वातावरण तैयार करने में और खबरों के माध्यम से सनसनाहट पैदा करना इन टी॰वी॰ चैनलों के लिए आम बात है। वहीं मुद्रित पत्रकारिता भी पेड़ न्यूज देने में पीछे नहीं है। यह पेड़–न्यूज पैसा लेकर छापी जाती है और किसी प्रत्याक्षी विशेष के पक्ष में चुनावी वातावरण बनाने के लिए दी जाती है। निष्पक्ष चुनावी पद्धति को बाधित करती इन पेड–न्यूज पर ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"पेड–न्यूज किससे उदास करते हैं
प्रजा के तंत्र के खम्बे उदास करते हैं"[82]

और –

"पुराने तीर और तलवार बदले
सियासत ने भी अब हथियार बदले
नज़र आने लगी हैं पेड–खबरें
चुनावी दौर में अखबार बदले"[83]

4.2.5 दलगत राजनीति

लोकतंत्र में राजनीतिक दलों का बहुत महत्त्व है। ये दल एक विचारधारा विशेष के पोषक एवं पालक होते हैं और अपने सिद्धान्तों पर चुनाव प्रक्रिया में भाग लेते हैं। लेकिन जब चुनाव–परिणाम आशानुरूप नहीं आने का अनुमान हो तो ये दल अपने विरोधी दल के साथ गठबंधन करने से भी नहीं चूकते। इन विरोधी दलों के इस आपसी गठबंधन को ज़हीर कुरेशी इस तरह से अभिव्यक्त करते हैं –

"जब से गठबंधन की सरकारों का आना है रिवाज
जो इधर थे, वो अचानक ही उधर होने लगे।"[84]

जब चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिलता तो ऐसे में दल–बदल और खरीद–फरोख्त की जाती है। ये दल–बदली सिर्फ सत्ता और स्वार्थों पर आधारित होती है। दल–बदल से लेकर ज़हीर कुरेशी लिखते हैं कि –

"दल–बदल से यही एक अन्तर पड़ा
जो इधर से गये, वो उधर शेष हैं"[85]

जब किसी दल को चुनाव में स्पष्ट बहुमत मिलता है तो उस दल का हाई–कमान सचेत हो जाता है। मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री के चुनने की प्रक्रिया में दल का हाई–कमान सभी प्रतिनिधियों को सावधानी बरतने के लिए कहता है। ऐसी स्थिति पर ज़हीर कुरेशी लिखते हैं कि –

"चुनाव जीत के बहुमत में आ गया वो दल
तो दल में तेज हुई 'कमान' की बातें"[86]

ऐसा नहीं है कि ये दलगत राजनीति केवल चुनाव के समय ही चलती है। दल समर्थक लोग बिना चुनाव के भी अपने क्रियाकलाप के जारी रखते हैं। दल के कई कार्यक्रम रचनात्मक भी होते हैं और अपनी पार्टी के लिए वोट–लुभावन भी लेकिन यह आवश्यक नहीं है। दल के कई कार्यकर्ता सत्तामद में या फिर चुनावी

माहौल गरमाने के लिए कई बार उत्पात भी करते हैं। कई बार यह दंगों की सूरत में होता है। शहर की सारी व्यवस्थाएँ खराब हो जाती हैं। ऐसी स्थिति को बयां करते हुए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं कि –

"शहर कितना भयावह हो गया था
तुम्हारे दल के उत्पातों से मिलकर"[87]

और –

"करीब आने लगा है चुनाव का मौसम
वो सोचता है नया हासदा 'लहर' के लिए"[88]

हमारे लोकतंत्र की विशेषता है कि यहाँ गरीब से गरीब व्यक्ति भी चुनाव लड़ सकता है। दलितों के लिए पृथक से निर्वाचन क्षेत्र आरक्षित किए गए हैं। कई दल तो बकायदा दलितों की सहानुभूति बटोरने के लिए उन्हें विशेष सुविधाऐं देने का वादा करते हैं। कई दल तो दलित वोट बैंक को ही ध्यान में रखकर बनाए गए हैं या कहें कि दलितों को सत्ता के शीर्ष पर पहुँचाने के लिए बने हैं। इसलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"चलो सत्ता में भागीदार होकर
दलित जनता की ताकत बढ़ गई"[89]

4-2-6 Hk"Vkpkj

भारतीय राजनैतिक परिवेश में लोकतांत्रिक शासन पद्धति को इसलिए स्वीकार किया गया था कि 'लोक' और 'तंत्र' मिलकर देश को राजनीतिक रुप से सक्षम, आर्थिक रुप से सम्पन्न और सामाजिक–सांस्कृतिक रूप से समृद्ध बनाने का प्रयास करेंगे। लेकिन समयान्तराल में यह लोकतंत्र कैसे भ्रष्टतंत्र में परिवर्तित हो गया इसका पता तो तब चला जब पानी सिर के ऊपर से बह निकला। आज हालत यह है कि हमारे राजनेता जनता को सिर्फ, कभी वोट बैंक तो, नोट बैंक की नज़र से देखते हैं। इसलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"सियासत की नज़र से देखते हैं
हमें वो लाभ–दर से देखते हैं"[90]

राजनीति और भ्रष्टाचार का मेल इतना अधिक गहराता जा रहा है कि नित नये घोटाले सामने आते रहते हैं। रिश्वतखोरी किस प्रकार 'तंत्र' पर हावी है, इसकी खबर हमें ज़हीर कुरेशी के इस शेर से बखूबी मिल जाती है –

"पचहत्तर फीसदी वे खा गए
हमारे हाथ तब अनुदान आया"[91]

'भ्रष्टाचार और हवाला' दोनों एक दूसरे के पूरक हो गए हैं। अक्सर लोग रिश्वतखोरी की राशि को हवाला के जरिए लिया करते हैं। ज़हीर कुरेशी सत्ता के चरित्र को उजागर करते हुए लिखते हैं –

"उनको 'सुविधा शुल्क' का धन भी 'हवाला' से मिला
पिछले दरवाजे से भ्रष्टाचार में शामिल हुए"[92]

लोग इस अनैतिक आय को किस प्रकार छुपा कर बैंक लॉकरों में रखते है, यह तो आयकर विभाग की जाँच में ही पता चलता है। ज़हीर कुरेशी 'आय' से अधिक 'सम्पत्ति' रखने वाले लोगों की पोल इस तरह खोलते है –

है उसके पास निजी आय से अधिक रुपया
उसे वो बैंक में रखने लगा है लॉकर में"[93]

राजनीति और रिश्वत खोरी का धर्म सेजो गठबंधन है जो वो भी किसी पर इस प्रकार हम देखते है कि ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में राजनीतिक नहीं है। "धर्म" इस अवैध कमाई पर किस तरह फलता–फूलता है यह सब जानते है। जो जितना बड़ा रिश्वत खोर वो उतना बड़ा दानी इस बात को ज़हीर कुरेशी भली–भाँति जानते है और अभिव्यक्त भी करते है –

"कमाया किस तरह इस पर विचारा ही नहीं जाता
जो धन देने लगा उसको ही दानी मान लेते है।"[94]

हमारे लोकतंत्र की विशेषता है कि यहाँ गरीब से गरीब व्यक्ति भी चुनाव लड़ छुपा नहीं है। "धर्म" इस अवैध कमाई पर किस तरह फलता–फूलता है यह सब जानते है। जो जितना बड़ा रिश्वत खोर वो उतना बड़ा दानी इस बात को ज़हीर कुरेशी भली–भाँति जानते है और अभिव्यक्त भी करते है।

4.2.7. स्वार्थी राजनीतिज्ञ

लोकतंत्र जनता के द्वारा जनता के लिए, जनता द्वारा, चुनी गयी शासन पद्धति है। जिसमें किसी प्रकार के छल–कपट की कोई गुंजाईश नहीं थी। लेकिन सत्ता का चरित्र हमेशा दोगला होता है। प्रत्यक्ष में जो नेता जनता की भलाई में संलग्न रहते है, परोक्ष में वे कितने स्वार्थी और दगाबाज हो सकते है, यह हमें भारतीय राजनीति के चरित्र से समझ में आ सकता है। भाई–भतीजावाद, परिवार वाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद जैसे अनेकानेक रोगों से ग्रस्त राजनेता अपने स्वार्थों की बलि–वेदी पर भोली–भाली जनता की आहुतियाँ देते रहते है। प्रजातंत्र के प्रहरी ये राजनेता किस प्रकार 'राजा' की तरह व्यवहार करते है ये ज़हीर कुरेशी के इस शे'र से जाहिर हो जाता है –

'प्रजा' के तंत्र में राजा से कम नहीं हो तुम
तुम्हारी मुट्ठी में हिन्दोस्तान रहना है"[95]

स्वार्थी राजनीतिज्ञ अपने पीछे 'चाटुकार' लोगों की भारी–भरकम फौज खड़ी करते है और फिर उस भीड़ को अपने इशारों जर चलाते है। कहने को तो ये पार्टी के वफादार और समर्पित कार्य कर्ता होते है लेकिन ज़हीर कुरेशी इनके चरित्र को इस तरह उजागर करते है –

"'लॉयलिस्ट' कहती है चाटुकार लोगों को
यूँ दिया सियासत ने अपना प्यार लोगों को

एक दिन के भोजन और तीन सो दिहाड़ी पर
रैलियाँ बुलाती है बार–बार लोगों को"[96]

और जब तक दलों के अंध समर्थक हे तब तक यह व्यवस्था ऐसे ही चलती रहेगी। इस पर कटाक्ष करते हुए ज़हीर कुरेशी लिखते है कि –

"प्रजातंत्र में तब तक खतरा नहीं कोई
जब तक दल के अंध समर्थक जिन्दा है"[97]

और इसीलिए आज तक लाख कोशिशों के बावजूद भी हम सत्ता के मौलिक चरित्र को नहीं बदल पाये जबकि हमारे यहाँ हर पाँच साल में चुनाव के समय यह अवसर होता है, लेकिन सत्ता बदल पाने पर भी स्वार्थी लोग जहाँ के जहाँ ही रहते है सिर्फ उनके चेहरे बदल जाते है, इसीलिए ज़हीर कुरेशी लिखते है –

"हम बदल पाए न सत्ता का कभी मौलिक चरित्र
किन्तु हम जनता की सरकारों से परिचित हो गए"[98]

इस प्रकार हम देखते हैं कि ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में राजनीतिक सरोकारों में कई आयाम दिखायी देते हैं। अपने अलग दृष्टिकोण से देखने के कारण ज़हीर कुरेशी के शे'र न केवल लोकप्रिय होते हैं बल्कि लोगों की जुबान पर भी चढ़ जाते हैं। युगीन राजनीतिक परिवेश, लोकतंत्र, चुनाव, भ्रष्टाचार, प्रशासनिक विसंगतियाँ दलगत राजनीति आदि विषयों पर उन्होंने सीधे–सीधे शे'र कहे हैं। भारतीय राजनीतिक परिवेश से परिचित ज़हीर कुरेशी ने उतार–चढ़ाव देखे हैं और इसीलिए वे इतने अच्छे और सच्चे शे'र कह पाते हैं।

4.3 आर्थिक सरोकार

अर्थव्यवस्था जीवन की धुरी है। हमारी प्राचीन वर्ण–व्यवस्था में भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, को पुरूषार्थो के रूप में माना गया। जीवन को सही मायने में देखें तो बिना अर्थ के शेष तीनों पुरूषार्थ की प्राप्ति भी संभव नहीं है। "सर्वेगुणाःकांचनमाश्रयन्ति"

की उक्ति आज आधुनिक युग में अक्षरशः चरितार्थ हो रही है। मानवीय संबंधों में कटुता का एक बड़ा कारण अर्थ है – जिसके कारण किसी को बड़ा तो किसी को छोटा माना जाता है। विकास की सारी अवधारणाएँ 'अर्थ' के रास्ते से होकर ही गुजरती हैं। पूँजीवाद हो, चाहे साम्यवाद सबकी धुरी यही 'अर्थ' है। अर्थ से ही कोई कोई पूँजीपति है तो कोई इसकी कमी से 'सर्वहारा'। समतामूलक समाज की अवधारणा के मूल में भी पूँजी है क्योंकि अमीर आदमी की न कोई 'जाति' पूछता है और न धर्म भारतीय परिवेश में इस 'अर्थ' की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है, जहाँ निम्न वर्ग और उच्च वर्ग की खाई, दिनों दिन गहराती जा रही है। वैश्वीकरण और बाजारवाद के इस भयावह दौर में जहाँ गरीब और ज्यादा गरीब होता जा रहा है, किसान आत्महत्या को मजबूर है, भ्रष्टाचार और तथाकथित घोटाले के कारण आज भी आम आदमी आवश्यक सुख–सुविधाओं से वंचित है। कहने को हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं लेकिन हमारे गाँवों के हालात आज भी बीसवीं सदी जैसे ही हैं। समकालीन साहित्य में इन सब विद्रुपताओं की जोरदार अभिव्यक्ति दिखलाई देती है। जिन समकालीन ग़ज़लकारों ने इस परिवेश को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया इनमें ज़हीर कुरेशी का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। जनवादी विचारधाराओं से ओत–प्रोत ज़हीर कुरेशी में अर्थाभाव से उत्पन्न समस्याओं की सशक्त अभिव्यक्ति दिखलाई देती है। जब देश का आम–आदमी आज भी दो जून की रोटी के लिए संघर्ष कर रहा है तब ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"हमारा स्वप्न है दो जून की रोटी
हमारे स्वप्न अम्बर तक नहीं पहुँचे"[99]

विकास के तमाम दावों के बीच आज भी आम–आदमी को रोटी की समस्या ही सबसे लगती है। इसीलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"दो रोटी के अलावा 'चार' की बातें नहीं करते
करोड़ों लोग कोठी–कार की बातें नहीं करते"[100]

और –

"गाँव में उस 'भूख' का परिवार बसता है
जिस पे बहस हो रही थी राजधानी में"[101]

दो वक्त की रोटी के लिए आज व्यक्ति क्या–क्या नहीं करता ? हाड़–तोड़ मेहनत–मजदूरी के बावजूद जब उसे रोटी नहीं मिलती, तब वह अपने तन का भी सौदा करने लगता है। भूख से शुरू हुआ यह सफर भले ही आज पाँच सितारा होटलों में बार–डाँस या काल–गर्ल की शक्ल में पहुँच गया हो लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इसके पीछे मजबूरी क्या है ? अपनी एक ग़ज़ल में ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"भूख जैसे सवाल मत पूछो
देश का हाल–चाल मत पूछो
मूल्य इतने गिरे मनुजता के
हँस रहा था दलाल मत पूछो"[102]

औद्योगिकीकरण के साथ ही श्रमिकों की स्थिति और ज्यादा बिगड़ने लगी। जब छोटी–छोटी मशीनें सैंकड़ों लोगों का काम करने लगी तो मजदूरों की स्थिति बदहवास होने लगी उन्हें काम के बदले में मिलने वाले दाम भी कम मिलने लगे तक ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"काम सौ लोगों का कर देती है छोटी–सी मशीन
कौड़ियों के मोल मजदूरों का श्रम होने लगा"[103]

देश की एक बहुत बड़ी समस्या है कालाधन। जब कोई व्यक्ति बिना आयकर चुकाए आय से अधिक धन एकत्र कर लेता है, उसे कालाधन कहते हैं। कालाधन देश की अर्थव्यवस्था में बहुत बड़ी बाधा है। धन का एकत्रीकरण कई समस्याओं को जन्म देता है। ज़हीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़लों में कई उम्दा शे'र देश की इस बड़ी समस्या पर लिखे हैं। इस कालेधन को बढ़ाने में गरीबों की भूमिका को लेकर वे लिखते हैं –

"इन्हीं की मेहनतों से फूलता–फलता है कालाधन
अमीरों को कमाई करके खुद कंगाल देते हैं"[104]

आज बाजार में जो उछाल देखा जाता है उसके पीछे भी वही कालाधन होता है –

"चपल पूँजी बनी निर्लज्ज पूँजी
उसी की शक्ति से बाज़ार बदले हैं"[105]

और –

"मुक्त–पूँजी के प्रतिकार की
ये लड़ाई है बाज़ार की"[106]

आज वैश्वीकरण की आँधी में बिना माँगे ही कई चीजें हमारे परिवेश में आती जा रही हैं। टी॰वी॰, नेट और कम्प्यूटर के माध्यम से आज भले ही हम लोग विश्व से जुड़ते जा रहे हैं, लेकिन साथ ही साथ कई संक्रमण भी हमारे परिवार, समाज और देश में फैलते जा रहे हैं। आज शोषण के प्रकार बढ़ते जा रहे हैं। इसीलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"बवंडर हर दिशा में आ गए हैं
भयानक स्वर हवा में आ गए हैं
अयाचित बीज के विस्तार जैसे
कई डर शोषिता में आ गए हैं"[107]

डर के साथ आश्वासन के स्वर भी जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में विद्यमान हैं। उनका मानना है कि गरीबी की ये लड़ाई भले ही लम्बी है लेकिन सबको साथ लेकर लड़ने से इस पर विजय पायी जा सकती है –

"गरीबी से बहुत लम्बी लड़ाई
लड़ेंगे निर्धनों को साथ लेकर"[108]

4.4. सांस्कृतिक सरोकार

भारतीय संस्कृति प्राचीनकाल से ही सर्वधर्म सद्भाव से ओतप्रोत रही है। प्रेम, आपसी सद्भाव, बंधुत्व, साहचर्य यहाँ की विश्व–कुटुम्बकम्–संस्कृति का मूल

मंत्र है 'संस्कृति शब्द का अर्थ है –'परिष्कार' या 'परिमार्जन' की क्रिया। समयान्तराल में इसका अर्थ भी व्यापक होता चला गया। संस्कृति शब्द की परिभाषा देते हुए बाबू गुलाबराय ने लिखा है 'संस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से है जिसका अर्थ है संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी। जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं।"[109]

संस्कृति शब्द की व्याख्या करते हुए डॉ॰ इन्द्र विद्यावाचस्पति ने कहा – "किसी भी देश की आध्यात्मिक, सामाजिक और मानसिक विभूति को उस देश की संस्कृति कहते हैं संस्कृति शब्द में देश के धर्म, साहित्य, रीति–रिवाज, परम्पराओं, सामाजिक संगठन आदि के आध्यात्मिक और मानसिक तत्वों का समावेश होता है इन सबके समुदाय का नाम ही संस्कृति है।"[110] स्पष्ट है कि जब हम भारतीय परिवेश में सांस्कृतिक संवेदनाओं की बात करते हैं तो हमारा मन्तव्य यहाँ के धर्म, तीज त्यौहार, रीति–रिवाज और परंपराओं से है। हमारे देश के लोग उत्सवप्रिय हैं। ज़हीर कुरेशी जी भी भारतीयता में रचे बसे हैं। उनका जन्म भारत के हृदय–प्रदेश के ग्रामीण अंचल में हुआ। उनकी शिक्षा–दीक्षा ग्वालियर और भोपाल के शहरी वातावरण में हुई अतः उनका जीवनानुभव बचपन से ही व्यापक स्वरुप लेता जा रहा था। इसी कारण हमें उनकी ग़ज़लों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संवेदनाओं के साथ–साथ सांस्कृतिक संवेदनाओं का सागर भी हिलोरें लेता रहता है। जिसमें भारतीय धर्म, प्रेम, संस्कृति, रीति–रिवाज़ और पर्यावरण प्रेम उनकी ग़ज़लों में विषय–वस्तु बनकर आते रहते हैं।

4.4.1. धर्म

हमारा देश धर्म से अनुप्राणित है धर्म हमारी संस्कृति का अभिभाज्य अंग है यह मानव के नैतिक विकास के लिए एक आवश्यक अंग है। धर्म का अर्थ केवल बाह्याडंबर मात्र नहीं है, वरन् यह तो व्यक्ति को सत्य प्रमाणिकता, अहिंसा, संवेदना, सहानुभूति, पारस्परिक प्रेम, भाईचारा और मानवता सिखलाता है। डॉ॰ राधाककृणन् ने धर्म के उद्देश्य को समझाते हुए लिखा है धर्म का उद्देश्य यह है कि सभी मनुष्यों के शरीर, बुद्धि, मन, और उनकर संकल्प शक्ति का विकास हो' लेकिन आज धर्म का बड़ा ही विकृत रुप समाज में प्रचलित होता जा रहा है जो बहुत

संकीर्ण, कट्टर और जेहादी है। आज हमारा देश कई धर्मों में बँटा हुआ है सबके अपने मत–मतान्तर हैं और सबकी अपनी पूजा पद्धति इसी को इंगित करते हुए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"धर्म पर इतने मतान्तर हो गए
ईश वंदन के कई टुकड़े हुए।"[111]

धर्म लोक कल्याण का साधक है, धर्म की राह सत्य की राह है और जब यही सत्य जीवन में आता है तो जीवन कल्यायणकारी हो जाता है। ज़हीर कुरेशी इस अनुभूत सत्य को सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त सुंदरता से जोड़ते हुए लिखते हैं –

"सत्य की राह 'शिव'तलक पहुँचे
शिव के रस्ते गए हैं सुंदर तक।"[112]

कोई भी धर्म आपस में बैर–भाव नहीं सिखलाता। सब धर्म प्रेम और सद्भाव की ही बात करते हैं लेकिन व्यक्ति का धर्म अलग होते ही आस्था के केन्द्र भी अलग हो जाते हैं। ईश्वर एक है यह हम सब जानते हैं, लेकिन उसकी पूजा – अर्चना, नमाज, मंत्रोच्चार और पाठ करने अलग–अलग धर्मालयों में जाते हैं, यहीं से संकीर्ण मानसिकता हमारे भीतर प्रविष्ट हो जाती है जबकि राम और रहमान में कोई अंतर नहीं है। ज़हीर कुरेशी लिखते हैं कि –

"आपके 'राम' की, मेरे 'रहमान' की
शक्ल मुझको सदा एक सी मिली।"[113]

साम्प्रदायिकता के कारण धर्म और मजहब के बीच दो दीवार खड़ी हो गई है वह बेमानी है क्योंकि धर्म का साम्प्रदायिकता और संकीर्णता से कोई मतलब नहीं है। यह तो व्यक्तियों की स्वयं की सोच है। आज धर्म के नाम पर व्यक्ति को बाँटा जा रहा है, तब ज़हीर कुरेशी लिखते है कि –

"मरता है कौन 'धर्म' या 'भगवान' के लिए
अब कर रहा है लाखों का सौदा 'जिहाद' भी।"[114]

धर्म और पूँजी का संबंध बड़ा विचित्र है कहने को तो धर्म व्यक्ति को अस्तेय, अपरिग्रह, अहिंसा जैसे मानवतावादी सिद्धान्त सिखाता है, लेकिन धर्मालयों में इसका दूसरा ही रुप देखने को मिलता है। आज धार्मिक स्थान अथाह पूँजी के भंडार हैं और इस भण्डार में लगातार वृद्धि होती जा रही है। धर्म के नाम पर बाज़ार में दुकानें सजी हैं। व्यक्ति का सामर्थ्य हो या न हो तथाकथित धार्मिकता उससे खर्च करा ही लेती है। यह पैसा धार्मिक कट्टरता को बढ़ाने के ही काम आता है। ऐसे वातावरण को देखते हुए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"धर्म से पूँजी का गठ–बंधन हुआ
कुछ अधिक अनुदार जन–जीवन हुआ।"[115]

और –

"धर्म ने दी कर्म–काण्डों की अफीम
भक्त सब आडम्बरों के साथ थे।"[116]

आत्मिक शांति के लिए लो ईश्वर भक्ति का मार्ग चुनते हैं लेकिन वहाँ पर भी शांति नहीं मिलती जब ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"कभी दस्तक भी दो तुम अपने मन पर
तुम अक्सर देवता के द्वार पहुँचे"[117]

भौतिकता की अंधी दौड़ में भागता आदमी समझ ही नहीं पाता कि उसके दु:ख का कारण सुखों के पीछे भागने में निहित है। इसीलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"इस गुत्थी को कम ही लोग समझ पाए
सुख के अंदर दु:ख के कारण जिंदा हैं।"[118]

4.4.2. प्रेम

प्रेम मानव जीवन की दिव्य अनुभूति है। प्रेम एक व्यापक भावना है,जिसके अन्तर्गत के प्रणय, वात्सल्य, स्नेह, ममता, राष्ट्र–प्रेम, धर्म प्रेम, लौकिक प्रेम और पारलौकिक प्रेम भी आ जाते हैं। ग़ज़ल और प्रेम एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं। प्रेम जीवनव की सहज प्रक्रिया है और मानव जीवन में कभी न कभी इस मनोभाव से ज़रुर गुजरता है। ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में 'प्रेम' के विराट स्वरुप के दर्शन होते हैं। यहाँ हमें उदात्त प्रेम, राष्ट्र प्रेम, धर्म प्रेम के साथ–साथ मानवीय प्रेम के भी दर्शन होते हैं। व्यक्ति इस जीवन में प्रेम के विराट स्वरूप को समझ नहीं पाता ओर संसार की तुच्छ वस्तुओं से प्रेम करने में ही उसकी उम्र बीत जाती है। इसलिए जहीर कुरेशी लिखते हैं –

"इस जीवन का सार न जाना
ढाई आखर प्यार न जाना"[119]

इस जीवन के सार को समझने के लिए व्यक्ति के मन में उदात्त प्रेम भाव होना आवश्यक है – मानव–मात्र के लिए प्रेम, सम्पूर्ण सृष्टि के लिए प्रेम। प्रेम को अभिव्यक्त करने का न तो कोई दिन होता है न महीना और ना कोई मौसम निश्चित होता है। यह तो मन की सहज भावाभिव्यक्ति है जिसको जहीर कुरेशी इस तरहा बयां करते हैं –

"प्यार करने का निश्चित समय
मन के मौसम नहीं जानते"[120]

प्रेम और वासना दो अलग–अलग अनुभूतियाँ हैं लेकिन अक्सर इन्हें एक समझने की गलती हो जाती है। प्रेम में जब वासना समाहित हो जाती है तो फिर प्रेम, प्रेम नहीं रहता। वासना को तो अंधेरे बंद कमरों की आवश्यकता होती है जबकि प्रेम का पंथी तो उन्मुक्त गगन में विचरण करता है। इस भावाभिव्यक्ति को ज़हीर कुरेशी शेर के माध्यम से इस तरह अभिव्यक्त करते हैं –

"तीन अक्षर वासना को बंद कमरा चाहिए
ढाई आखर प्यार का पंथी खुला चलता रहा"[121]

ज़हीर कुरेशी ने नदी और समुद्र को प्रतीक बनाकर प्रेमानुभूति के कई अच्छे शेर कहे हैं। नदी और समुद्र प्रेम के लोक प्रसिद्ध प्रतीक हैं। ज़हीर कुरेशी नदी और समुद्र को स्त्री–पुरूष के रूप में चित्रित करते हुए लिखते हैं –

"नदी को ब्याहने आया नहीं समुद्र कभी
नदी–समुद्र में प्रेमी–युगल के नाते हैं।"[122]

और –

"नदी सागर की बाहों में पहुँचकर
समंदर की कहानी हो रही है"[123]

वर्तमान सदी भौतिकतावाद की है। लोग अपना 'केरियर' बनाने में इस कदर लीन हो गए कि अब उनको प्रेम, समर्पण, रिश्ते–नाते सब व्यर्थ लगते हैं। प्रेम जैसी पवित्र पावन अनुभूति की नई सदी में क्या स्थिति है इसका चित्रण ज़हीर कुरेशी बखूबी करते हुए लिखते हैं –

"नई सदी में हुआ प्यार देह तक सीमित
है कम ही लोग जो 'मजनूं' या 'देवदास' लगे।"[124]

4.4.3. संस्कृति

मानव जीवन में संस्कार को जन्म देने वाला भाव भी संस्कृति है संस्कृति मानव जीवन की सहज स्वाभाविक प्रवृतियों का बहिष्कार करती है। आचार–विचारों का परिमार्जन करती है। ज़हीर कुरेशी ने आधुनिक सांस्कृतिक स्थिति को अच्छी तरह जाना–पहचाना है उसमें व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपताओं पर उन्होंने अपनी ग़ज़लों में तीखे प्रहार किए हैं। वर्तमान युग में भारतीय संस्कृति पर ही सबसे अधिक आघात हो रहे हैं। हमारे जीवन की मान्यताएं मूल्य एवं आदर्श बदल गए हैं। समाज में झूठ और फरेब का सम्मान हो रहा है। ज़हीर कुरेशी इस पर तीखा व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि –

"सत्य ही जब कहानी लगे
तब तो गूंगा ही ज्ञानी लगे"[125]

भारतीय दर्शन में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार कर उसे महत्व दिया गया है आत्मा जीवन को सार्थकता प्रदान करती है। आत्मा की शुद्धता सर्वोपरि मानी गई है। लेकिन इसकी परवाह कौन करता है ? तब ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"आत्मा के आईनों पर धूल के मेले लगे
जिंदगी में आजकल इतने बबंडर हो गए"[126]

भारतीय संस्कृति में 'मोक्ष' की अवधारणा है। जीवन के चार पुरुषार्थों में सबसे अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष ही है। यह जीवन का अंतिम सत्य है जिसे हमारे सभी दर्शन बताते हैं। मगर आज का व्यक्ति मोक्ष की अवधारणा को नकारकर इस भौतिक जीवन में ही मस्त रहना चाहता है। अपने मोक्ष के लिए वह कोई भी प्रयास नहीं करता। इसलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"हम आत्मा से मिलने को व्याकुल रहे मगर
बाधा बने हुए हैं ये रिश्ते शरीर के"[127]

जीवन में अगर सुंदर सृष्टि चाहिए तो हमें दृष्टि भी सुंदर रखनी पड़ेगी। हमारी संस्कृति में सत्यम–शिवंम–सुंदरम की परम्परा है। जिसे ज़हीर कुरेशी शेर बनाकर इस तरह अभिव्यक्त करते हैं –

"जो सत्यम है, शिवंम है जिंदगी में
वो जाएगा ही सुंदर की दिशा में"[128]

संस्कृति में संक्रमण का परिणाम सभ्यता को भोगना पड़ता है। आज उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते मानव युद्ध के मैदान तक आ पहुँचा है। इसलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"सभ्यता के कौन से युग में खड़े हैं हम
बोलते हैं युद्ध के बाज़ार की भाषा"[129]

कहते हैं कि व्यक्ति जैसा बोता है वैसा ही फल पाता है। भारतीय संस्कृति में कर्म को प्रधानता दी गई है फल को नहीं। जीवन में व्यक्ति को कड़वे मीठे फल प्राप्त होते रहते हैं भारतीय संस्कृति की इस विशेषता को जहीर कुरेशी शेर में यूँ बयां करते हैं –

"जिंदगी वो भी चखाएगी जो कड़वा है कहीं
जिंदगी के वृक्ष के फल को सदा मीठा न देख"[130]

4-4-4- fj'r&ukr&ifjokj

पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण से आज भारतीय परिवार इतने संक्रमित हो गए हैं कि उनमें रिश्ते–नातों की पहचान भी नहीं रही। रिश्तों के मायने बदल गए जो माता–पिता बच्चों को उंगली पकड़कर चलना सिखाते हैं, वही बच्चे बड़े होकर माता–पिता का तिरस्कार करने लगते हैं। इसका चित्रण ज़हीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़ल में इस प्रकार किया है –

"बोझ का पर्वत है बूढ़ा बाप बच्चों के लिए
झिड़कियाँ मिलती है, उसको रोज आदर की जगह"[131]

अकेलापन और अजनबीपन समकालीन कविता की एक प्रमुख विशेषता है। गतिशीलता के दौर में भी लोग रिश्ते–नाते की गरमाहट से वंचित हो रहे हैं। एक ही छत के नीचे रहते हुए संवादहीनता अब परिवारों की आम समस्या है जो घर व्यक्ति के सुख चैन का साधन था आज उसी घर में उसे अजनबीपन भोगना पड़ रहा है। आधुनिक जीवन के परिणाम स्वरुप संवेदनाएं दम तोड़ती जा रही है। आधुनिक कविता की इस स्थिति का चित्रण ज़हीर कुरेशी अपने शेरों में इस प्रकार करते हैं –

"घर में रहकर भी नहीं संवाद हम दोनों की बीच
मौन पसरा है कई हफ्तों से संबंधों के बीच"[132]

और –

"एक ही छत के तले संवाद कम होने लगा
इसलिए भी मन में संदेहों का तम होने लगा"[133]

और –

"घर के दर्शन नहीं हुए फिर भी
हमनें पूरा मकान देख लिया"[134]

और –

"याद नहीं रहते या याद नहीं रखते
लोग आजकल संबंधों के मानी को"[135]

वर्तमान समय में महानगरों में संयुक्त परिवार की अवधारणा लुप्त प्रायः हो गई है। भारतीय संस्कृति के इस उज्ज्वल पृष्ठ पर पाश्चात्य संक्रमण की धूल बिछ गई है। हमारे परिवार की संरचना में आये इस परिवर्तन को जहीर कुरेशी इस तरह अभिव्यक्त करते हैं –

"अवधारणा कुटुम्ब की दिखती नहीं कहीं
लोगों ने सिर्फ 'तीन' का परिवार कर लिया"[136]

और –

"है युग परमाणु–परिवारों का शायद इसलिए बच्चे
शहर में दादा–दादी, नाना–नानी तक नहीं पहुँचे"[137]

भारतीय संस्कृति में माँ, मातृ–भाषा और मातृभूमि का विशेष महत्त्व है। इन तीनों के प्रति ज़हीर कुरेशी की संवेदनाएं बड़ी सम्मानजनक हैं। अपनी ग़ज़लों में माँ को सम्मान देते हुए कई खूबसूरत शेर उन्होंने कहे हैं –

"हर समय माँ है दुआओं के करीब
जैसे खुशबू हो हवाओं के करीब"[138]

और –

"जिसके जलने से ज्योति जनमी है
दीप उस वर्तिका को भूल गए"[139]

और –

"मैं अपनी माँ को भला कौन–सा विशेषण दूँ
वो जिसके मन में धरित्री का धीर शामिल है"[140]

4.4.5. प्रकृति और पर्यावरण

जिससे हम अपने चारों ओर देखते–सुनते ओर महसूस करते हैं, उसे पर्यावरण कहते हैं। पर्यावरण प्रकृति का ही दूसरा नाम है पर्यावरण हमारे जल–थल–आकाश और इसमें स्थित प्रत्येक चराचर का मिलाकर बनता है स्वस्थ पर्यावरण हमारे स्वस्थ जीवन का आधार है। आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता से पनपी उपभोगवादी संस्कृति में हमारे पर्यावरण को प्रदूषित कर दिया है औद्योगिक विकास के परिणाम हम प्रकृति को नष्ट कर भुगत रहे हैं। इसलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"हवा शहर की इसलिए बीमार हो रही है
मिल की चिमनी काला ज़हर उगलती है दिनभर"[141]

औद्योगिक परिवेश में वायु प्रदूषण दिनोंदिन विकराल रुप धारण करता जा रहा है जहरीले धुँए ने सबका जीवन मुश्किल कर दिया है और मानव है फिर भी प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहा है। प्रकृति ईश्वर की अनुपम कृति है। हरे भरे पेड़ों की बलि चढ़ाकर हमने कंकरीट के जंगल तो विकसित कर लिए लेकिन हमने आने वाली पीढ़ियों का जीवन छीन लिया। आधुनिक जीवन में आई इस मार्मिकता को ज़हीर कुरेशी ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

"काटते काटते वन गया
जिन्दगी से हरापन गया
सोच में भी प्रदूषण बढ़ा
इसलिए शुद्ध चिंतन गया
मंजिलों पर बनी मंजिलें
गाँव शैली का आनन्द गया
हर समय दौड़ते–भागते
शहरी लोगों का जीवन गया"[142]

वृक्ष मनुष्य के जीवन से काफी निकटता रखते हैं। वृक्ष हैं तो हमारी सांसें हैं, सांसें हैं तो हमारा जीवन है। ये वृक्ष हमारे ऊपर अभिभावकों सा आशीर्वाद बनाए रखते हैं। ज़हीर कुरेशी प्रकृति के इस अनुपम रुप को इस तरह व्यक्त करते हैं –

"जो पेड़ मेरे पिता ने कभी लगाया था
पिता के बाद, पिता–सा ही उसका साया था।"[143]

आज मनुष्य प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर प्राकृतिक असंतुलन पैदा कर रहा है। बहती नदियों पर बाँध बनाकर प्राकृतिक आपदाओं को आमंत्रित कर रहा है। उन्मुक्त बहती हुई नदियों की पीड़ा इस प्रकार व्यक्त की है –

"वो नदी है उसे बहने में मजा आता है
उसको भाता नहीं ठहरा हुआ पानी होना
तुमने फसलों से लगाया है रकम का अंदाज
तुमने देखा ही नहीं फसलों का धानी होना।"[144]

प्राकृतिक संसाधनों के अँधाधुंध दोहन से आहत ज़हीर कुरेशी ने चिड़िया और घांस के माध्यम से पर्यावरण प्रदूषण को इस तरह अभिव्यक्त किया है –

"कुछ इस तरह से घांस के जंगल हुए सपाट
अब घोंसले बनाने को भी तिनके नहीं रहे।"[145]

ऐसा नहीं है कि ज़हीर कुरेशी ने प्राकृतिक पर्यावरण को लेकर सिर्फ निराशावादी अभिव्यक्ति ही की हो, वे भविष्य के प्रति भी आशावादी हैं। मनुष्य का सहज प्रकृति प्रेम व अनुशासन ही वह सूत्र है जिसके द्वारा बेहतर भवविष्य की कल्पना की जा सकती है। ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में प्रकृति के प्रति आशावाद को दर्शाते हुए कुछ शेर दृष्टव्य हैं –

"वो बनके बदलियाँ बरसेगा मीठे पानी की
मुझे पता था समंदर बरसेगा ज़रुर"[146]

और –

"क्या बुझेगी नदी से प्यास उसकी
जिसमें सागर की प्यास बाकी है
रोज रोंदी गई है पैरों से
अपने जीवट से घास बाकी है"[147]

स्पष्ट है कि ज़हीर कुरेशी ने प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति चिंतन प्रचुर मात्रा में दिखलाई देता है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि जहीर कुरेशी की ग़ज़लों की भाव–भूमि बहुत व्यापक है उन्होंने अपने जीवनानुभव से जिस प्रकार प्राकृतिक परिवेश, धर्म, संस्कृति, रिश्ते–नाते और परिवार को लेकर के मार्मिक शेर कहे हैं, वैसे कम ही ग़ज़लकारों में दिखलाई देते हैं।

***

: संदर्भ सूची :

1. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, भूमिका से –
2. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, भूमिका से
3. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, भूमिका से
4. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 16
5. वही पृ॰सं॰ 28
6. वही पृ॰सं॰ 33
7. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, भूमिका से
8. वही पृ॰सं॰ 64 (द्वितीय संस्करण)
9. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 20
10. वही पृ॰सं॰ 20
11. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 71
12. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 43
13. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 103
14. साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ॰ नगेन्द्र, पृ॰सं॰ 158
15. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 14
16. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, सं. डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 83
17. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 35
18. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 33
19. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 20
20. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 16
21. वही पृ॰सं॰ 24
22. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 31
23. वही पृ॰सं॰ 84 (द्वितीय संस्करण)
24. वही पृ॰सं॰ 126 (द्वितीय संस्करण)
25. रास्तों में रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 34

26. पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, ज़हीर कुरेशी, भूमिका से
27. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 80
28. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 28
29. ज़हीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 292
30. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 117 (द्वितीय संस्करण)
31. स्त्री उपेक्षिता, प्रभा खेतान, पृ॰सं॰ 105
32. भीड़ में सबसे अलग,ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 19
33. पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, ज़हीर कुरेशी, पृ॰स॰ 4
34. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 118 (द्वितीय संस्करण)
35. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 11
36. भीड़ में सबसे अलग,ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 41
37. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 17
38. ज़हीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 230
39. पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 71
40. वही, पृ॰सं॰ 103
41. रास्तों में रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 102
42. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 112
43. रास्तों सें रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 43
44. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 32
45. वही, पृ॰सं॰ 26
46. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 103 (द्वितीय संस्करण)
47. वही, पृ॰सं॰ 105
48. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 18
49. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 37
50. वही, पृ॰सं॰ 66
51. वही, पृ॰सं॰ 51
52. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 64 (द्वितीय संस्करण)
53. वही, पृ॰सं॰ 103
54. ज़हीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 163

55. रास्तों सें रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 32
56. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 105 (द्वितीय संस्करण)
57. वही, पृ॰सं॰ 102
58. ज़हीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 44
54. ज़हीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 163
59. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 71 (द्वितीय संस्करण)
60. वही, पृ॰सं॰ 11
61. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 7
62. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 31
63. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 35
64. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 54
65. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 27
66. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 17
67. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 91
68. भीड में सबसे अलग पृ॰सं॰ 16
69. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर पृ॰सं॰ 37
70. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 74
71. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 18
72. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 127 (द्वि॰ सं॰)
73. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 105 (द्वि॰ सं॰)
74. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰ सं॰ 20
75. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰ सं॰ 112
76. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 31
77. वही, पृ॰सं॰ 13
78. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 112
79. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 58
80. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13
81. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 60
82. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 38

83. वही, पृ॰सं॰ 45
84. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 65
85. भीड में सबसे अलग, पृ॰सं॰ 98
86. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 106
87. भीड में सबसे अलग, पृ॰सं॰ 29
88. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 78
89. कविता कोश से
90. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 77
91. भीड़ में सबसे अलग, पृ॰ सं॰ 39
92. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 60
93. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 67
94. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर पृ॰सं॰ 16
95. भीड़ में सबसे अलग, पृ॰स॰ 82
96. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 41
97. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 48
98. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 100
99. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 84 (द्वितीय संस्करण)
100. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 103 (द्वितीय संस्करण)
101. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 99 (द्वितीय संस्करण)
102. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 111 (द्वितीय संस्करण)
103. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 16
104. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 37
105. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 45
106. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 20
107. बोलता है बीज भी, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 77
108. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 23
109. भारतीय संस्कृति, बाबू गुलाबराय, पृ॰सं॰ 3
110. खड़ी बोली में, राम काव्यों में चित्रित समाज और संस्कृति, डॉ॰ मनोहर सर्राफ, पृ॰सं॰ 22

111. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 83 (द्वितीय संस्करण)
112. रास्तों सें रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 111
110. खड़ी बोली में, राम काव्यों में चित्रित समाज और संस्कृति, डॉ॰ मनोहर सर्राफ, पृ॰ सं॰ 22
111. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 83 (द्वितीय संस्करण)
112. रास्तों सें रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 111
113. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 42 (द्वितीय संस्करण)
114. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 31
115. रास्तों सें रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 103
116. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 92
117. रास्तों सें रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 58
118. रास्तों सें रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 48
119. भीड़ में सबसे अलग पृ॰सं॰ 53
120. भीड़ में सबसे अलग पृ॰सं॰ 67
121. जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 102
122. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 73
123. रास्तों सें रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 71
124. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 15
125. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 74
126. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 83
127. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 69
128. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 84
129. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 105
130. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 108
131. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 28
132. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 86
133. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 16
134. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी पृ॰सं॰ 57
135. पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 24

136. रास्तों सें रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 34
137. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 23
138. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 72
139. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 113
140. निकला न दिग्विजय को सिकन्दर, पृ॰सं॰ 17
141. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 28
142. भीड़ में सबसे अलग, पृ॰सं॰ 57
143. भीड़ में सबसे अलग, पृ॰सं॰ 13
144. भीड़ में सबसे अलग, पृ॰सं॰ 225
145. भीड़ में सबसे अलग, पृ॰सं॰ 31
146. भीड़ में सबसे अलग, पृ॰सं॰ 107

***

अध्याय पंचम

v/;k;&ipe

ledkyhu fgUnh x-t-ydkj vkSj t-ghj dqjS'kh

आधुनिक हिन्दी कविता का अवलोकन करें तो 1960 ई॰ तक आते–आते कविता की पृष्ठभूमि परिवर्तित होने लगती है जो अपनी पूर्ववर्ती कविताओं से भिन्न है। उसमें वस्तु, भाव और कलापक्ष तीनों ही दृष्टियों से पार्थक्य दिखलाई पड़ता है। डॉ॰ रामदरस मिश्र ने लिखा है – "मेरी स्पष्ट धारणा है कि सन् 1960 ई॰ के बाद कविता में जो स्वर उभरे हैं, नई कविता में बीज स्वरूप विद्यमान रहे हैं। साठ के बाद इस स्वर ने तीखे व्यंग्य तथा विद्रोह का रूप धारण कर लिया। "वस्तुतः ये रूप परिवर्तन न केवल काव्य के क्षेत्र में हुए वरन् सम्पूर्ण साहित्य जगत एवं समाज में भी परिलक्षित होते हैं। इनका एक बड़ा कारण है – आजादी से उत्पन्न मोह–भंग की स्थिति। आजादी के बाद जो आशाएं एवं अपेक्षाएं अपनी चुनी हुई सरकार से देश की जनता ने लगाई थी, वह मात्र 14–15 वर्षों में ही दम तोड़ती नज़र आने लगती है। व्यवस्था के प्रति के प्रति आक्रोश, विरोध एवं छटपटाहट के स्वर उभरने लगते हैं। जनतांत्रिक व्यवस्था की विकृतियों का, व्यवस्था के शोषण की स्थितियों का, लोकतंत्र में मनुष्य की नियति का, आज़ादी की निरर्थकता के साथ–साथ भूख, बेकारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, अन्याय, अमानवीयता, अजनबीपन, साम्प्रदायिक विद्वेष और खून–खराबा जैसे विषय साहित्य के केन्द्र में आने लगते हैं। मोटे तौर पर देखें तो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्पन्न हुई मोहभंग की परिस्थिति जनित समस्याओं का निवारण आज तक नहीं हो पाया। साहित्य के मूल केन्द्र में आज भी वही विषय –वस्तु है, जो इस मोहभंग ने हमें दी है। तात्कालिक समस्याएं चाहे जो रही हों, लेकिन मूल उद्‌भव वहीं से दिखाई देता है। इसलिए 1960 के बाद के साहित्य को समकालीन साहित्य की अवधारणा से बाँधा जा सकता है, जहाँ आधुनिकता भविष्योन्मुखता की ओर मोड़ लेती है। तब से लेकर आज तक वर्तमान को बेहतर बनाने के प्रयास जारी हैं। काव्य के क्षेत्र में आज भी मुक्तिबोध, धूमिल, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, शमशेर, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, रघुवीर सहाय, गिरिजा कुमार माथुर, श्रीकान्त वर्मा, कुँअर नारायण और केदारनाथ सिंह की अनुगूँज सुनाई देती है तो

कथा साहित्य में मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा, मन्जू भण्डारी, ज्ञानरंजन और कृष्णा सोबती की प्रतिच्छाया नज़र आती है। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में भी साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति एक नवीन चेतना का युग प्रारम्भ होता है और इस चेतना के सूत्रधार हैं – दुष्यंत कुमार।दुष्यंत कुमार के साथ अन्य ग़ज़लकारों ने भी समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परम्परा को विकसित करने में अपना योगदान दिया उनमें पद्मश्री गोपालदास 'नीरज', चन्द्रसेन विराट, बालस्वरूप शर्मा 'राही', श्रीराम 'शलभ', रामावतार त्यागी, अदम 'गोंडवी', कुँवर 'बेचैन', सूर्यभानु गुप्त, ओम प्रभाकर, राजेश रेड्डी, हस्तीमल 'हस्ती', विज्ञानव्रत आदि के साथ साथ–साथ ज़हीर कुरेशी का नाम भी महत्त्वपूर्ण है।

5.1 समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार

5.1.1 दुष्यंत कुमार

हिन्दी ग़ज़ल को नई दिशा प्रदान करने का गौरव दुष्यंत कुमार को जाता है। 1 सितम्बर 1933 को बिजनौर के राजपुर नवादा गाँव में जन्में दुष्यंत कुमार त्यागी – समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परम्परा के प्रमुख एवं प्रथम हस्ताक्षर हैं। अपनी ग़ज़लों में देश की दुर्दशा का जो मार्मिक चित्र दुष्यंत ने प्रस्तुत किया, उसने हिन्दी काव्य के सीमित विषय की दीवारें तोड़ दी। दुष्यंत की ग़ज़लों में उस आम आदमी की संघर्ष गाथा, सपनों का टूटना–जुड़ना, उम्मीदें, निराशा, संशय, दुःख की छायाएं अपने समय से टकराने का होंसला और नये स्वप्न बुनने की अनुगूँज शामिल है।

डॉ॰ अनिरूद्ध सिन्हा लिखते हैं "दुष्यंत कुमार ने भारतीय काव्य साहित्य की समृद्ध यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उसे एक नया मोड़ दिया। जीवन की समस्याओं के समाधान, अन्याय, शोषण, दमन उत्पीड़न और असमानता की समाप्ति के साधन के रूप में समाजवाद को अपना आदर्श स्वीकार करते हुए ग़ज़ल में समाजवादी यथार्थवाद की धारा प्रभावित की।"[1]

दरअसल आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यंजना देने के सन्दर्भ में दुष्यंत ने अपनी पैनी दृष्टि से उसके दुःख और दर्द को पहचानने की कोशिश की और जीवन से जुड़ी वास्तविकताओं का निरूपण 'साये में धूप' ग़ज़ल संग्रह में किया। दुष्यंत लिखते हैं –

"कहाँ तो तय था चिरागां हरेक घर के लिए
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए
यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है
चलो यहाँ से चलें ओर उम्र भर के लिए।"[2]

दुष्यंत ने आम आदमी की तकलीफ़ों को भी अपनी ग़ज़लों में स्वर प्रदान किए। जनता के दुःख–दर्दों को अभिव्यक्त करना दुष्यंत अपनी जिम्मेदारी समझते हैं और इसीलिए कहते हैं कि –

"मुझसे रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।"[3]

दुष्यंत के ग़ज़ल संग्रह पर विचार करते हुए डॉ॰ अनिरूद्ध सिन्हा लिखते हैं – "दुष्यंत कुमार का एक मात्र ग़ज़ल संग्रह 'साये में धूप है' जिसमें उनकी कुल 52 ग़ज़ल हैं, जिनके माध्यम से उन्होंने नये बनते समाज को नये मूल्य में ढ़ालने का प्रयास किया है। नये समाज की परख तो उन्होंने की है साथ ही जीवन के सत्य को भी प्रत्येक स्थान पर ढूँढ़ने की चेष्टा की है। जीवन का यह सत्य आज के समाज का आधार भी है।"[4] दुष्यंत समाज में परिवर्तन के पक्षधर थे, इसलिए उनकी इच्छा थी, कि, प्रतिरोध के स्वरों को समर्थन मिलना ही चाहिए शायद इसीलिए उन्होंने लिखा है –

"हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।"[5]

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें यथार्थ की भाव–भूमि पर लिखी गई हैं। डॉ॰ सिद्धनाथ कुमार की दृष्टि में "दुष्यंत कुमार ने अपनी ग़ज़लों में मुख्य रूप से सामाजिक अनुभूतियों को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है – कवि का माध्यम अधिकांशतः परिवेश की अनुभूतियों पर ही रहा है।"[6]

दुष्यंत की ग़ज़लों को भाव और भाषा के धरातल पर समझने के दृष्टिकोण से 'कल्पना' पत्रिका में प्रकाशित 'दुष्यंत कुमार का आत्मकथ्य एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। अपनी ग़ज़लों के कथ्य पर विचार करते हुए दुष्यंत लिखते हैं–"सिर्फ पोषाक या शैली बदलने के लिए मैंने ग़ज़लें नहीं लिखीं, उसके कई कारण हैं।जिनमें सबसे मुख्य है कि मैंने अपनी तकलीफ को जिससे सीना फटने लगता है ज्यादा से ज्यादा सच्चाई और समग्रता के साथ ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए ग़ज़ल कही।"[7] इसी प्रकार अपने आत्मकथा में भाषा पर विचार करते हुए वे कहते हैं कि "मेरी दिक्कत यह थी कि उर्दू मैं जानता नहीं और हिन्दी में मुझे वह चुबन, वह मुहावरा और बोलचाल का वह बहाव नहीं मिला जिसके सहारे ग़ज़लें कही जाती हैं। मगर यही अज्ञानता मेरे लिए शक्ति बन गयी। क्योंकि मुझे लगा कि आम–आदमी एक मिली–जुली जबान बोलता है। इसलिए मैंने उस भाषा की तलाश की जो हिन्दी की हिन्दी और उर्दू की उर्दू दिखाई दे।"[8]

दुष्यंत कुमार के इस आत्मकथ्य से यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने हिन्दी कविता को एक नया मोड़ दिया। निःसंदेह दुष्यंत कुमार ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से हिन्दी कविता को एक नया मुहावरा दिया, नई चेतना दी। एक ओर व्यक्ति के दुःख–दर्द को अभिव्यक्ति प्रदाान की तो दूसरी ओर व्यवस्था को चुनौती दी। वे समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परम्परा के 'मील के पत्थर' हैं जहाँ से हिन्दी ग़ज़ल में एक युग की शुरूआत होती है। इस कारण दुष्यंत कुमार समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परम्परा में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

5.1.2 गोपालदास 'नीरज'

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा में दुष्यंत के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है – गोपालदास 'नीरज'। गोपालदास 'नीरज' का जन्म 4 जनवरी 1925 को ग्राम पुरावली जिला इटावा, उत्तर प्रदेश में हुआ। कवि, गीतकार, ग़ज़लकार के रूप में प्रसिद्ध 'नीरज' समाज के सभी वर्गों में समान रूप से प्रतिष्ठित हैं। नीरज की प्रसिद्धि का आलम यह है कि कालजयी कवि गजानन माधव मुक्तिबोध ने 'एक साहित्यिक की डायरी' में लिखा है कि उनकी पत्नी को नीरज की कविताएं पसन्द हैं तो अशोक वाजपेयी ने सुदूर विदेश जाकर पाया कि वहाँ हिन्दी कवि के रूप में लोग मात्र नीरज का ही नाम जानते हैं। 'कारवाँ गुजर गया गुबार देखते रहे', 'जिन्दगी की धार को पहाड़ से उतार दो', 'अब तो मजहब कोई ऐसा भी चलाया जाए' जैसी रचनाएं लिखने वाले नीरज के साहित्य–अवदान पर कई विश्वविद्यालयों में शोध–कार्य भी हो चुके हैं।

ग़ज़ल संकलन ''नीरज की गीतिकाएं'' में 'ग़ज़ल' को 'गीतिका' के नाम से संबोधित करने वाले नीरज ने अपने मंतव्य को स्पष्ट करते हुए लिखा भी है "मेरे इस संकलन में काफी ऐसी ग़ज़लें हैं जो उर्दू ग़ज़ल के छंद विधान पर सही उतरती हैं, मगर साथ ही कुछ ऐसी ग़ज़लें भी हैं जो गीत के छंद विधान के अधिक निकट हैं। ये शुद्ध रूप से न तो गीत ही हैं, न ग़ज़ल ही। बल्कि दोनों की मिली–जुली संगत है। इसीलिए मैंने उन्हें गीतिका कहा है।"[9]

नीरज की ग़ज़लों में आज की राजनीति में व्याप्त सिद्धान्तहीनता, आतंकवाद, अलगाववाद, साम्प्रदायिकता का चित्रण हुआ है। वे अपनी ग़ज़ल में लिखते हैं –

"अब तो इक ऐसा बरक मेरा तेरा ईमान हो
एक तरफ गीता हो, जिसमें, एक तरफ कुरआन हो
काश ऐसी भी मुहब्बत हो कभी इस देश में
मेरे घर उपवास हो जब तेरे घर रमजान हो।"[10]

नीरज की ग़ज़लों में समकालीन कविता के रूप में आम–आदमी का चिंतन, मूल्यों का चिंतन और सबसे बढ़कर इंसानियत का चिंतन है।मानवीय मूल्यों के प्रति नीरज का आग्रह स्वाभाविक है। तभी वे एक ऐसे मजहब की बात अपनी ग़ज़ल के माध्यम से करते हैं जिसमें सिर्फ इंसान पैदा हो– हन्दू या मुसलमान नहीं। वे लिखते हैं –

"अब तो मजहब कोई ऐसा भी चलाया जाए
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए
आग बहती है यहाँ गंगा में, झेलम में भी
कोई बतलाए कहां जा के नहाया जाए।"[11]

'नीरज' की ग़ज़लों पर अपनें विचार अभिव्यक्त करते हुए डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष' लिखते हैं – "नीरज की अपनी मस्ती है, अपना तरन्नुम है और अपना चिंतन है। इस त्रिवेणी में अवगाहन करने वाले इस अनूठे शायर की कलम को हर जगह वाहवाही और प्रशंसा मिली है।"[12]

5.1.3 बालस्वरूप 'राही'

नवगीत के सशक्त हस्ताक्षर रहे बालस्वरूप 'राही' ग़ज़लकार के रूप में भी प्रतिष्ठित रहे। 16 मई, 1936 ई॰ तिमिरपुर, दिल्ली में जन्में 'राही' बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कविता, गीत, नवगीत, ग़ज़ल और संपादन के सम्मिलित व्यक्तित्व से संयुक्त 'राही' जी ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के संपादकीय दायित्व का निर्वहन भी सफलतापूर्वक किया। राही जी के गीत संकलन 'जो नितांत मेरी है' में उनकी ग़ज़लें भी संकलित हैं। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में उनकी ग़ज़लें प्रकाशित हैं। डॉ॰ शेरजंग गर्ग द्वारा सम्पादित 'नया जमाना : नई ग़ज़लें' संग्रह में भी राही जी की ग़ज़लें प्रकाशित हैं।

'राही' जी की ग़ज़लों में आम आदमी के सरोकारों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। अंर्तमन की उस पीड़ा की अभिव्यक्ति जो जीवन संघर्ष के उतार–चढ़ाव से उत्पन्न होता है। यह द्वन्द्व राही जी की ग़ज़लों में कई

स्तर पर अनेक संदर्भों में विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से उजागर हुआ है। साहित्यकार समाज का दर्पण होता है। वह आगाह करता है उन राजनीतिज्ञों को जो अपने देश की जनता के आत्मसम्मान को मिटानें पर तुले हैं। राही जी इसे ग़ज़ल के मिसरों में यूँ अभिव्यक्त करते हैं कि –

"लोग शरमायें इसे अपना वतन कहने में
ऐसी खिदमत न करो कौम के ठेकेदारों
इस इमारत में रहेंगी कई नस्लें 'राही'
रेत इतनी न भरो नींव में ठेकेदारों।"[13]

राही जी युगबोध सम्पन्न रचनाकार हैं, इसलिए अपनी ग़ज़लों में सांकेतिक अव्यवस्था और विपुलता का अधिक यथार्थ चित्रण करते हैं, जिसमें परिवेश जन्य विसंगति दिखाई देती है –

"हर महकदार फूल कैदी है
मुक्त इस्पात है जहाँ मैं हूँ
कीच है बे हिसाब काई है
पर न जल जाता है जहाँ मैं हूँ।"[14]

रचनाकार की संवेदना को अनुभव करते हुए राही जी उस रचना प्रक्रिया तक जा पहुँचते हैं जिस मानसिक धरातल पर रचना का सृजन होता है। राही जी रचनाकार की मनःस्थिति को उजागर करते हुए लिखते हैं –

"हम पर दुःख का परबत टूटा तब हमने दो चार कहे
उस पे भला क्या बीती होगी जिसने शेर हजार कहे।"[15]

5.1.4 श्रीराम 'शलभ'

5 नवम्बर, 1938 ई॰ में ग्राम मसौदा, जलालपुर, जिला फैजाबाद (उत्तर प्रदेश) में जन्में 'शलभ' श्रीराम सिंह हिन्दी ग़ज़ल के सशक्त हस्ताक्षर हैं।

हिन्दी और उर्दू में समानाधिकार से लेखन कार्य करने वाले शलभ श्रीराम सिंह ने नवगीत और ग़ज़ल दोनों को ही जनपदीय धरातल प्रदान किया। साहित्यकार और संपादक की मौलिक प्रतिभा से सम्पन्न शलभ जी ने जहाँ एक ओर गीत, ग़ज़ल कहानियाँ लिखी और बांग्ला उपन्यास का हिन्दी अनुवाद किया वहीं दूसरी ओर 'अनागता', 'परम्परा', 'रूपाम्बरा' 'निराला', 'गल्प–भारती', 'नया विकल्प', आदि पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। 'राहे–हयात', 'निगाह–दर–निगाह' में शलभ जी की ग़ज़लें संकलित हैं। शलभ जी पर उर्दू भाषा का प्रभाव साफ–साफ देखा जा सकता है। पर जनपदीय जमीन के हवालों से उम्दा ग़ज़लें लिखने करने वाले शलभ जी जमाने के गम को अपना गम बनाया। वे लिखते हैं कि –

"मुश्किलें थम गईं दर्द कम हो गया
अब जमाने का गम अपना गम हो गया
रोशनी अब अंधेरों की हमराज है
जो न होता था वह एकदम हो गया।"[16]

शलभ जी की ग़ज़लों की प्रमुख विशेषता यह है कि यह ग़ज़ल के छंदशास्त्र पर खरी उतरती है। मतला, मकता, रदीफ, काफ़िया और हर ग़ज़ल के हिसाब से शलभ जी की ग़ज़लें निश्चित रूप से समकालीन हिन्दी शलभ जी की ग़ज़ल परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य करती है जो प्रशंसनीय है।

5.1.5 रामावतार त्यागी

नवगीत परम्परा के प्रमुख हस्ताक्षर रहे रामावतार त्यागी का जन्म 8 जुलाई, 1925 को और निधन 12 अप्रेल, 1985 ई॰ को हुआ। साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं एवं कवि सम्मेलनों से अपनी अलग पहचान बनाने वाले त्यागी जी ने हिन्दी ग़ज़ल को भी नया आयाम दिया। 1985 ई॰ में प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह 'लहू के चंद कतरे' के माध्यम से हिन्दी ग़ज़ल के विकास में अपना योगदान देने वाले त्यागी जी की ग़ज़लें डॉ॰ शेरजंग गर्ग द्वारा संपादित 'नया

जमाना नई ग़ज़लें' और 'ग़ज़लें ही ग़ज़लें' संकलनों में भी प्रकाशित है।

जीवन के कटु यथार्थ को ग़ज़लों के माध्यम से अभिव्यक्त करने वाले त्यागी जी ने समाज के उस छल–छद्म को उजागर करने का प्रयास किया जो आम आदमी को ठगता है। इसलिए उन्होंने व्यवस्था पर प्रहार किये तो विसंगतियों पर भी। आज आम आदमी किस तरह जीवन व्यतीत कर रहा है कि इसकी एक बानगी त्यागी जी की एक ग़ज़ल में देखिए –

"तन पे कपड़ा भी नहीं पेट में रोटी भी नहीं
फिर भी मैदान में कुछ लोग डटे देखे हैं
जिनको लूटने के सिवा और कोई शौक नहीं
ऐसे इंसान भी हमनें कुछ लुटे देखे हैं।"[17]

समाज के दुःख दर्द को ग़ज़ल बनाकर कहने वाले त्यागी जी लिखते हैं –

"रोशनी तो चाहिए पर लौ जरा मध्यम रखो
चाहिए मुझसे ग़ज़ल तो आँख मेरी नम रखो
कौन सा फनकार था जिसको न दी तुमने कसम
आँख में जो भी रहे पर होंठ पर सरगम रखो।"[18]

त्यागी जी की ग़ज़लों का कथ्य ही सुन्दर नहीं है, वरन् शिल्प के स्तर पर भी उनकी ग़ज़लें सुघढ प्रतीत होती हैं। उनकी ग़ज़लों में गेयता के साथ–साथ संप्रेषण भी मिलता है। जो कवि सम्मेलनों एवं मुशायरों के लिए आवश्यक है इसीलिए त्यागी जी की ख्याति गीतकार के साथ–साथ एक ग़ज़लकार के रूप में भी पूरे देश में है।

5.1.6 सूर्यभानु गुप्त

सूर्यभानु गुप्त का जन्म 22 सितम्बर 1940 ई॰ में उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के नाथूखेड़ा गाँव में हुआ। सूर्यभानु गुप्त ने हिन्दी ग़ज़ल की

विकास परंपरा को आगे बढ़ाने के साथ–साथ उसे प्रचारित प्रसारित करने का कार्य भी किया। उन्होंने ग़ज़ल को लोकप्रिय बनाने के लिए 'हिन्दी साप्ताहिक एक्सप्रेस' में 'लोकप्रिय ग़ज़लें' नाम से एक स्तंभ भी चलाया। सूर्यभानु गुप्त की ग़ज़लें डॉ॰ शेरजंग गर्ग द्वारा संपादित हिन्दी ग़ज़ल शतक एवं डॉ॰ सरदार मुजावर द्वारा संपादित 'हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक' में भी संकलित है।

सूर्यभानु गुप्त की ग़ज़लों पर विचार करते हुए डॉ॰ सरदार मुजावर लिखते हैं कि – "सूर्यभानु गुप्त ने अपनी ग़ज़लों में जिन्दगी की धूप–छाँव, भाग–दौड़, आशा–निराशा, अमीरी–गरीबी, सच–झूठ, रोटी–कपड़ा, घोखाधड़ी, लड़ाई–हंगामा, दहशत आदि पर व्यंग्यपूर्ण ग़ज़लें लिखी हैं। मध्यकालीन विसंगतियों पर चुपके से व्यंग्य कर जाना सूर्यभानु गुप्त की ग़ज़लों की प्रमुख विशेषता है।"[19]

वर्तमान जीवन की विसंगतियों पर सूर्यभानु गुप्त लिखते हैं –

"हर लम्हा जिंदगी के पसीने से तंग हूँ
मैं भी किसी कमीज के कालर का रंग हूँ
माँझा कोई यकीन के काबिल नहीं रहा
तन्हाईयों के पेड़ से अटकी पतंग हूँ।"[20]

5.1.7 डॉ॰ कुँअर 'बेचैन'

समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों में डॉ॰ कुँअर बहादुर सक्सेना 'बेचैन' का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। 1 जुलाई, सन् 1942 को उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद के पास एक गाँव में जन्मे डॉ॰ कुँअर बहादुर सक्सेना 'बेचैन' आज तक हिन्दी ग़ज़ल की विकास परंपरा में एक दैदीप्यमान नक्षत्र है। अपने समकालीनों में सबसे उर्वर, सबसे अधिक मौलिक प्रतिभा सम्पन्न डॉ॰ कुँअर बहादुर सक्सेना 'बेचैन' के अब तक 11 ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और अनवरत साहित्य साधना एवं ग़ज़ल लेखन में लीन हैं। भारत

श्री, साहित्य श्री, कविरत्न एवं अनेंक संस्थाओं द्वारा सम्मानित डॉ॰ कुँअर 'बेचैन' ने 'शामियाने काँच के', 'महावर इन्तजारों का', 'रस्सियाँ पानी की', 'पत्थर की बाँसुरी' समेत 11 ग़ज़ल संकलनों का प्रकाशन किया।

डॉ॰ कुँअर 'बेचैन' की ग़ज़लें सच्चाईयों का आईना है। उन्होंने सामाजिक विसंगतियों, रूढ़ियों, खोखलेपन और समाज में फैली बुराईयों पर करारा व्यंग्य किया है। डॉ॰ कुँअर 'बेचैन' की ग़ज़लों में एक आशावादी स्वर दिखलाई देता है जो तमाम विकट परिस्थितियों के बाद भी सुधार की अपेक्षा रखता है। इसी आशावाद की अभिव्यक्ति अपनी एक ग़ज़ल में वो इस तरह से कहते हैं कि –

"जिन्दगी की राहों में खुश्बुओं के घर रखना
आँख में नयी मंजिल पाँव में सफर रखना
सिर्फ छाँव में रहकर फूल भी नहीं खिलते
चाँदनी से मिलकर भी धूप की खबर रखना
लोग जन्म लेते ही पंख काट देते हैं
है बहुत मुश्किल बाजुओं में पर रखना।"[21]

आधुनिकता के परिणाम स्वरूप जीवन में आए बदलाव को भी कुँअर ने बड़ी शिद्द्त के साथ अनुभव किया है। उत्तर आधुनिकता ने हमारे सामाजिक ढ़ाँचे पर प्रहार किए और इसकी सजा अब हमारे बच्चे भुगत रहे हैं। आज बच्चों का बचपन छीन उनका मशीनीकरण किया जा रहा है इस पर कुँअर 'बेचैन' लिखते हैं –

"हमने लोहे को गलाकर जो खिलौने ढ़ाले
उनको हथियार बनाने पे तुली है दुनियाँ
नन्हें बच्चों ने कुँअर छीन के भोला बचपन
उनको होशियार बनाने में तुली है दुनियाँ।"[22]

5.1.8 चंद्रसेन 'विराट'

3 दिसम्बर 1936 ई॰ को इन्दौर मध्य प्रदेश में जन्मे चंद्रसेन 'विराट' हिन्दी के ऐसे ग़ज़लकार हैं जिन्होंने हिन्दी ग़ज़ल की अवधारणा को न केवल कथा में साकार किया बल्कि उसे शुद्ध तत्सममयी हिन्दी का आकार देकर भाषा के स्तर पर भी हिन्दी ग़ज़ल बनाने का कार्य किया। चंद्रसेन 'विराट' ने ऐसे ग़ज़लकारों की अगुवाई भी की। यही कारण है ग़ज़ल के अनेक अध्येता 'विराट जी' को पहला ऐसा ग़ज़लकार स्वीकार करते हैं जिसने शुद्ध रूप से हिन्दी में ग़ज़लें लिखीं। 'चंद्रसेन 'विराट' के अब तक 10 ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें 'निर्वसना चॉदनी, 'आस्था के अमलतास', 'कचनार की टहनी', 'धार के विपरीत', न्यायकर मेरे समय', 'इस सदी का आदमी', 'हमने कठिन समय देखा है', आदि प्रसिद्ध हैं। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल की सोच और समझ को लेकर चंद्रसेन 'विराट' आगे बढ़े हैं उनका अनुसरण करने वाले ग़ज़लकारों की कतार उतनी ही लम्बी है। उनकी ग़ज़लों पर विचार करते हुए डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष' लिखते हैं कि – "विराट जी ने ग़ज़लों की बनावट में जिस ईमानदार सर्जन–धर्मिता का परिचय दिया अथवा दे रहे हैं वह निश्चिय ही प्रशंसनीय और स्तुत्य है।"[23] युगबोध एवं युग संदर्भों को जीने वाले विराट जी की ग़ज़लों में जहाँ मानवीय मूल्यों की गिरावट पर खेद है वहीं सच्चे प्रेम की तलाश भी है जिसे वह इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं –

"बुद्धि तो मिलती यहाँ, लेकिन हृदय मिलता नहीं
पूर्ण संवेदन सहित रस भावमय मिलता नहीं
ओ हिरन तू खोज मत मरूभूमि में पानी कभी
वासना मिलती यहाँ सच्चा प्रणय मिलता नहीं।"[24]

चंद्रसेन विराट की ग़ज़लों पर विचार करते हुए डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना लिखते हैं – "अपनी हिन्दी ग़ज़लों के माध्यम से चंद्रसेन विराट ने आधुनिक परिवेश में व्याप्त दूषित मानसिकता तथा देश की अव्यवस्था जन्य विषम परिस्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। आधुनिक जीवन की

कलुषित मानसिकता को प्रकट करते हुए चंद्रसेन विराट लिखते हैं कि –

"जिस तरह से गाँव कस्बों पर हावी हुआ
आदमी पर आदमी का जानवर हावी हुआ
सो गया मन का हिरण जागा हुआ है भेड़िया
विश्व देखे फिर समर शांति पर हावी हुआ
आदमी में जहर भी और अमृत भी मगर
इन दिनों विष दंत उभरे हैं, जहर हावी हुआ।"[25]

5.1.9 पुरुषोत्तम 'प्रतीक'

25 दिसम्बर, 1937 में जन्मे 'प्रतीक' हिन्दी ग़ज़ल परंपरा में एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। 'पेड़ नहीं तो साया होता','प्यार की खुशबू', और आँखों में आसमान जैसे ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित करवाने वाले प्रतीक जी ने युगीन भाव बोध की अभिव्यक्ति अपनी ग़ज़लों में की है। व्यवस्था से मिले दुःखों को भी आम आदमी भगवान की देन समझता है। इसे अभिव्यक्त करते हुए प्रतीक जी लिखते हैं –

"चार दिन की जिन्दगी में दुःख हजारों साल के
और यह भी देखिए अहसान है भगवान का।"[26]

5.1.10 भवानी शंकर

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल के ख्यात नामों में शामिल भवानी शंकर ने हिन्दी ग़ज़ल को नई ऊचाईयां प्रदान की। 26 जून 1945 ई॰ में जन्मे भवानी शंकर ने काव्य की दोनों विधाओं (गद्य एवं पद्य) में समानाधिकार से लेखनकर अपनी ऊर्वर सृजन धर्मिता का परिचय दिया। 'भवानी शंकर की हिन्दी ग़ज़लें' संकलन के अतिरिक्त भवानी शंकर की ग़ज़लें डॉ॰ शेरजंग गर्ग द्वारा संपादित हिन्दी ग़ज़ल शतक में भी संकलित है। भवानी शंकर की ग़ज़लों की विषयवस्तु पर टिप्पणी करते हुए सूर्यभानु गुप्त ने भूमिका में लिखा– " भवानी शंकर की ग़ज़लों की जन्नत में लाखों बरसों

की पुरानी और बूढी हुई नहीं बल्कि सही अर्थो में आम–आदमी की जिंदगी की कच्ची सड़क पर बैठी चिलचिलाती धूप में रोज़ मर्रा की छोटी–मोटी खुशियों और दुःखों की असली गिट्टियाँ तोडने वाली तेज तर्राट जवान और नमकीन मजदूरिन है जो हमारी आजादी के बाद कुर्सियों और टोपियों के तिरंगे तमाशे में बुरी तरह उठ गये जन–जीवन की तमाम मौजूदा विसेतियों एवं विद्रुपताओं का साक्षात्कार सीधे पाठक से कराते हुए उस दोगली व्यवस्था की बखिया उधेडती चलती है जिसमें राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समता और न्याय के नाम पर आम आदमी और खास आदमी के लिए अलग–अलग कटघरे तराशे गये है।''[27]

औद्योगिकीरण के परिणाम स्वरुप उत्पन्न परिस्थितियों को अभिव्यक्त करते हुए भवानी शंकर लिखते है –

"हाड सूखे खेत बंजर और ये जलता मकान
देखना है चुप रहेगा और कब तक आसमान
कोख धरती की हरी होगी वहां पर दास्तों
आदमी हल में जुता होगा जहां लोहूलुहान
बाढ़ फिर आएगी बस्ती डूब जाएगी तेरी
मूक बन कर कब तलक देखेगा खतरे का निशान।"[28]

5.1.11 डॉ॰ शेरजंग गर्ग

हिन्दी ग़ज़ल की अवधारणा को पुरजोर ढंग से स्थापित करने वाले ग़ज़लकारों को आगे बड़ाने का उत्तरदायित्व निभाने वाले रचनाकारों में डॉ॰ शेरजंग गर्ग का नाम सम्मानीय है। 29 मई, 1937 ई॰ में (देहरादून) उत्तराखंड में जन्मे डॉ॰ शेरजंग गर्ग 'नया जमाना', 'नयी ग़ज़लें','ग़ज़लें ही ग़ज़लें', 'हिन्दी ग़ज़ल शतक' तीनों भागों में सम्पादित कर हिन्दी ग़ज़ल की विकास परंपरा को सुदृढ़ करने का स्तुत्य प्रयास किया है। 'क्या हो गया कबीर को','गुलाबों की बस्ती','शरारत का मौसम',गर्ग साहब के प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह हैं। हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा और अनेक साहित्य

संस्थाओं द्वारा सम्मानित–पुरस्कृत डॉ॰ गर्ग निश्चित ही समकालीन ग़ज़ल के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। समाज के आम आदमी की पीड़ा को अनुभव करने वाले डॉ॰ गर्ग को समाज की हालत नौटंकी–सी लगती है। इसीलिए वे लिखते हैं कि –

"मेरे समाज की हालत सही–सही मत पूछ
कहाँ–कहाँ ले गया टूट आदमी मत पूछ
हरेक शक्स शामिल है जहाँ नौटंकी में
वहाँ कामदी ज्यादा या त्रासदी मत पूछ।"[29]

संपादक गोपाल कृष्ण कौल डॉ॰ गर्ग की ग़ज़लों पर विचार करते हुए लिखते हैं कि – "गर्ग अपनी ग़ज़ल में बातचीत करते जरूर हैं पर यह बातचीत प्रेमास्पद और प्रेम के बीच का पारस्परिक संवाद नहीं है। यह संवाद है समाज और व्यक्ति के बीच, विकृत व्यवस्था और जागृत विरोधी चेतना के बीच।"[30]

5.1.12 अदम 'गोंडवी'

22 अक्टूबर, सन् 1947 में उत्तर प्रदेश के गौण्डा के समीपस्थ गाँव अष्टा परमपुर में जन्में अदम गौंड़वी का मूल नाम राजनाथ सिंह है। कई पत्र–पत्रिकाओं में निरन्तर ग़ज़लों के प्रकाशन के साथ–साथ दो ग़ज़ल संग्रह भी गौंड़वी साहब के प्रकाशित हैं –

"ग़ज़ल को ले चलो अब गाँव के दिलकश नज़ारों में
मुसलसल फन का दम घुटता है इन अदबी इदारों में।"[31]

ऐसे मिसरों को कहने वाले गौंड़वी साहब ने ग़ज़ल को ठेठ ग्रामीण परिवेश का रूप देकर उसे नये ढंग से परिभाषित किया। ग़ज़ल का यह नया मुहावरा उसे ऐसे वातावरण से जोड़ता है जो अभी तक अपरिचित ससा था। 'हिन्दी ग़ज़ल के तीसरे शतक' में डॉ॰ शेरजंग गर्ग लिखते हैं कि – "अपनी

ठेठ ग्रामीण पृष्ठभूमि, खेतिहर सहजता और प्रतिबद्धता के तहत राजनेताओं, रहनुमाओं पर उनकीऐयाशियों पर कटाक्ष करते हैं तो ग़ज़ल अपने कथन–विस्तार की नई जमीन तैयार करती नज़र आती है।"[32]

लोकतंत्र की विसंगतियों और खामियों पर करारा व्यंग्य करते हुए गौंड़वी साहब कहते हैं कि –

"काजू भुने हुए हैं प्लेट में व्हिस्की गिलास में
आया है रामराज विधायक निवास में
पक्के समाजवादी हैं तस्कर हो या दलाल
इतना असर है खादी के उजले लिबास में।"[33]

इसके आगे जाकर वे जनता को बगावत के लिए तैयार करते हुए लिखते हैं –

"जनता के पास एक ही चारा है बगावत
यह बात कह रहा हूँ मैं होशोहवास में।"[34]

5.1.13 राम कुमार 'कृषक'

उत्तर प्रदेश में मुरादाबाद अमरोहा जनपद के गाँव गुलाडिया में 1 अक्टूबर सन् 1943 को जन्मे राम कुमार 'कृषक' हिन्दी ग़ज़ल की विकास परंपरा में एक महत्त्वपूर्ण नाम है। 1984 ई॰ में प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह 'नीम की पत्तियाँ' से चर्चित होने वाले राम कुमार 'कृषक' की ग़ज़लें डॉ॰ शेरजंग गर्ग द्वारा संपादित 'हिन्दी ग़ज़ल शतक' एवं डॉ॰ सरदार मुजावर द्वारा संपादित 'हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक' में भी संकलित है। हिन्दी की अनियतकालीन जनवादी पत्रिका 'अलाव' का संपादन करने वाले राम कुमार 'कृषक' ने अपनी ग़ज़लों में समकालीन व्यवस्थाओं की विदूषताओं को अभिव्यक्त किया। लोकतंत्र में आदमी पर लगे पहरों को वे इस तरह अभिव्यक्त करते हैं –

"लोक पर जब भी कड़ा पहरा हुआ है
तंत्र से संबंध ही गहरा हुआ है
हैं बहुत बैचेन हैं घड़ियाँ तो यहाँ
आदमी ही कुछ अभी ठहरा हुआ है।"[35]

5.1.14 रामदरस मिश्र

15 अगस्त 1924 ई॰ को डूमरी (गोरखपुर) उत्तर प्रदेश में जन्में रामदरस मिश्र हिन्दी साहित्य में एक गद्यकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। उपन्यास, कहानी, ललित निबन्ध, यात्रा वर्णन, आत्मकथा, संस्मरण और आलोचना लिखने में सिद्धहस्त मिश्र जी ने ग़ज़लें भी लिखी और इनका एक ग़ज़ल संग्रह सन् 1986 में प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था – 'बाजार को निकले लोग'। इसके अतिरिक्त डॉ॰ शेरजंग गर्ग द्वारा संपादित 'हिन्दी ग़ज़ल शतक' में रामदरस मिश्र की ग़ज़लें संकलित हैं।

रामदरस मिश्र समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा के ही नहीं वरन् संपूर्ण समकालीन हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है। जिस प्रकार समकालीन चुनौतियों को उन्होंने अपने कथा साहित्य में कथ्य बनाकर प्रस्तुत किया उसी प्रकार की अभिव्यक्ति उनकी हिन्दी ग़ज़लों में भी दिखाई देती है। समकालीन साहित्य की एक बड़ी विशेषता है – महानगरों का अजनबीपन। इसी कथ्य को लेकर रामदरस मिश्र लिखते है –

"हम जहां से थे चले क्या फिर वहीं आना हुआ
यह अजनबी दृश्य कुछ लगता है पहचाना हुआ
याद सा आता है जंगल से कभी बिछुड़े थे हम
फिर शहर के बीच उससे आज याराना हुआ।"[215]

5.1.15 ज्ञानप्रकाश 'विवेक'

हिन्दी ग़ज़ल परंपरा के समर्पित नामों में से एक है – ज्ञान प्रकाश विवेक। 30 जनवरी 1949 को बहादुर गढ़ हरियाणा में जन्में विवेक का प्रथम

ग़ज़ल संग्रह 'धूप के हस्ताक्षर' 1984 ई॰ में प्रकाशित हुआ। तब से लेकर आज तक उनके तीन ग़ज़ल संग्रह और प्रकाशित हुये है 'आँखों में आसमान', 'इस मुश्किल वक्त में', और 'गुफ्तगुं अवाम से है' ज्ञान प्रकाश विवेक की ग़ज़लें डॉ॰ शेरजंग गर्ग द्वारा संपादित 'हिन्दी ग़ज़ल शतक' एवं डॉ॰ सरदार मुजावर द्वारा संपादित 'हिन्दी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में' सहित कई प्रसिद्ध संकलनों एवं पत्र–पत्रिकाओं में संपादित है। हरियाणा साहित्य अकादमी और राजस्थान पत्रिका द्वारा कथा सम्मान से पुरस्कृत विवेक जी ने हिन्दी ग़ज़ल को एक नया मुहावरा दिया। इनके 'धूप के हस्ताक्षर' ग़ज़ल संग्रह पर विचार करते हुए कृष्ण मधोक लिखते है – "प्रस्तुत संग्रह की ग़ज़लें जमीन से जुड़ी हुई हैं जो आस–पास के परिवेश और अनुभवों से प्रतिबिम्बित हैं। ये ग़ज़लें महानगरीय चिपचिपे अंधेरे पर धूप के हस्ताक्षर करती महसूस होती है। इन ग़ज़लों को पढ़ने के बाद यह स्पष्ट होता है कि ग़ज़लों को बनाया या गढ़ा नही गया बल्कि सहजरूप से अनुभूतियों को पदों में ढाल दिया गया है। बल्कि यूँ कहें कि शहरीय जिन्दगी की जटिलताओं आक्रोश और विसंगतियों को ग़ज़लों के माध्यम से उजागर किया गया है।"[37]

आम आदमी के सरोकारों को अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्ति देने वाले विवेक ने कई समसामयिक विषयों पर ग़ज़लें लिखीं। 'कर्फ्यू' जैसे संवेदनशील विषय पर विवेक लिखते हैं –

"ऐसे कर्फ्यू में भला कौन है आने वाला
गश्त पे एक सिपाही है पुराने वाला
सामने शहर का जलता हुआ मंजर रख के
कितना बेकैफ़ है तस्वीर बनाने वाला।"[38]

5.1.16 डॉ॰ गिरिराज शरण अग्रवाल

हिन्दी ग़ज़ल पर आलोचनात्मक लेखन करने वाले बहुत कम ग़ज़लकार हैं। उनमें से एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं – डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल। 14

जुलाई 1944 सम्भल मुरादाबाद उत्तर प्रदेश में जन्मे डॉ॰ अग्रवाल ने सन् 1987 ई॰ में प्रकाशित 'सन्नाटे में गूँज' संग्रह के माध्यम से हिन्दी ग़ज़ल परंपरा में अपनी उपस्थिति दर्ज की। तब से लेकर आज तक 'भीतर बहुत शोर है', 'मौसम बदल गया कितना', 'रोशनी बनकर जिओ' तथा शिकायत न करो तुम चार ओर' ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त 'हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें' नामक संकलन का संपादन कर डॉ॰ अग्रवाल ने हिन्दी ग़ज़ल परंपरा को विकसित करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

डॉ॰ अग्रवाल की ग़ज़लों में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति के साथ–साथ महानगरीय जीवन की विसंगतियाँ भी उजागर होती हैं। महानगरीय जीवन में आदमी किस तरह से जीता है, यही त्रासदी उनकी एक ग़ज़ल में इस प्रकार अभिव्यक्ति हुई है –

"जिन्दगी चुक गई जीत में हार में
चैन में दर्द में, चोट में, प्यार में
उम्र का एक लम्बा सफर कट गया
याद में, प्यास में, आस के ज्वार में।"[39]

5.1.17 डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना

हिन्दी ग़ज़लों को हिन्दी साहित्य की लोकप्रिय विधा के रूप में प्रतिष्ठित करवाने का उल्लेखनीय कार्य करने वाले डॉ॰ अस्थाना का नाम हिन्दी ग़ज़ल परंपरा में सम्मान के साथ लिया जाता है। 'हिन्दी ग़ज़ल का उद्‌भव एवं विकास' लिख उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल में आलोचना की संभावनाएं तलाशी, तो 'नवीनतम हिन्दी ग़ज़लों का संपादन कर उन्होंने इसके विकास का भी कार्य किया। डॉ॰ अस्थाना का जन्म 1 दिसम्बर, 1949 को अटावा, अली मर्दनपुर, हरदोई (उत्तर प्रदेश) में हुआ। कई प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं के साथ–साथ इनकी ग़ज़लें डॉ॰ सरदार मुजावर द्वारा संपादित 'हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक' में भी संकलित है।

सामाजिक यथार्थ को अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्त करने वाले डॉ॰ अस्थाना ने वर्तमान परिवेश, में महानगरीय जीवन की विद्रूपताओं और आम आदमी के दुःख–दर्द को ग़ज़ल का कथ्य बनाकर प्रस्तुत किया। व्यवस्था पर चिह्न लगाते हुए वे लिखते हैं –

"सड़कें वही हैं और मकानात वही हैं
मेरे शहर में आज भी हालात वही हैं
रोटी की बहस कल थी वही, आज भी जारी
दिल पे सभी दर्द के आघात वही हैं।"[40]

डॉ॰ अस्थाना के हिन्दी ग़ज़ल को दिये योग की चर्चा करते हुए डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष' लिखते हैं लिखते हैं कि –

"जब ये माला पूरी होगी तब उस माला के ये मूल्यवान रत्न साबित होंगे। सबके बस की बात तो नहीं पर हर दाने की कीमत अवश्य होती है।"[41]

5.1.18 डॉ॰ उर्मिलेश

डॉ॰ उर्मिलेश का जन्म 6 जुलाई, 1951 में इस्लाम नगर, जिला बदायुँ (उत्तर प्रदेश) में हुआ। हिन्दी नवगीत के साथ ही हिन्दी ग़ज़ल में भी समान रूप से हस्तक्षेप रखने वाले डॉ॰ उर्मिलेश की ग़ज़लें 'धूप निकलेगी' और 'फैसला वो भी गलत था' में संग्रहीत हैं। दूसरे 'हिन्दी ग़ज़ल शतक' संपादित शेरजंग गर्ग और 'हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक' संपादित डॉ॰ सरदार मुजावर, में भी इनकी ग़ज़लें संकलित हैं। युगीन सामाजिक यथार्थ को अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्ति प्रदान करने में डॉ॰ उर्मिलेश सिद्धहस्त हैं। आपा–धापी के इस दौर में व्यक्ति कैसे रिश्ते, दोस्त, पड़ोस, और जमीन से विलग हो जाते हैं इसकी बानगी वे अपनी ग़ज़ल में इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं –

"रिश्ते, पड़ौस, दोस्त, जमीं सबसे कट गए
फिर यूँ हुआ कि लोग यहाँ खुद से कट गए
अब पैसा पास में है तो झंझट भी है कई
तब मुफलिसी के दिन भी मुहब्बत से कट गए।"[42]

5.1.19 बेकल 'उत्साही'

1924 ई॰ में उत्तरप्रदेश में जन्मे और उर्दू एवं हिन्दी में समानाधिकार से ग़ज़लें लिखने वाले मोहम्मद शफी खां लोदी को ग़ज़ल की दुनिया में बेकल उत्साही के नाम से जाना जाता है। उर्दू ग़ज़ल और हिन्दी ग़ज़ल के बीच सेतू स्थापित करने का महत् कार्य करने वाले बेकल उत्साही की ग़ज़लें उनकी प्रकाशित नौ कृतियों में संकलित है। बेकल उत्साही की ग़ज़लों में राष्टीय एकता और धर्म निरपेक्षता की अनुगूंज स्पष्ट सुनाई देती है। निजी स्वार्थों से ग्रस्त संकीर्णतावादी तत्त्वों द्वारा धर्म के नाम पर अलगाव सिखाया जाता है। इसी अलगाव की आग में सारा राष्ट्र जलता है इसीलिए बेकल उत्साही लिखते है कि –

"हम कहीं हिन्दू कहीं मुस्लिम बने बैठे रहे,
धर्म के चौपाल पर सारा वतन जलता रहा।"[43]

5.1.20 औंकार गुलशन

हिन्दी की कई प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित होने वाले ओंकार गुलशन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा में सम्मानित नाम है। व्यक्तिगत दुःख–दर्द को समष्टि गत धरातल पर प्रस्तुत करने वाले गुलशन की ग़ज़लें अनुभूति के धरातल से सहज प्रसूत होकर जन मानस को आंदोलित करती है। गुलशन की ग़ज़लों की भाषा सरल एवं सुबोध है। आसानी से समझ में आने वाली भाषा का प्रयोग करने वाले गुलशन जी की ग़ज़लों की बानगी इन शे'रों के माध्यम से प्रस्तुत है –

"इकबार देखिये तो नदी के चढ़ाव को
तूफां में न ले जाइए कमजोर नाव को
आशा थी तुमसे घाव पर मरहम लगाओगे
लेकिन बना के रख दिया नासूर घाव को।"[44]

5.1.21 तारादत्त 'निर्विरोध'

14 जनवरी 1939 ई॰ को जयपुर राजस्थान में जन्मे तारादत्त माथुर हिन्दी ग़ज़ल आकाश में तारादत्त निर्विरोध के नाम से प्रसिद्ध हुए। 14 मार्च 2013 को इनका निधन हो गया। इनकी ग़ज़लों में समसामयिक बोध के साथ ही वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक एवं भौतिक जीवन के कटु यथार्थ को भी अभिव्यक्त किया गया है –

"राग रंग आम हो गए
काम वो तमाम हो गए
राजनीति जाति हो गई
छल कपट सलाम हो गए"।"[45]

5.1.22 अंजना संधीर

1 सितम्बर सन् 1960 ई॰ को रूड़की (उत्तर प्रदेश) में जन्मी अंजना संधीर समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परपम्परा में नया नाम है। हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती और उर्दू भाषा में समानाधिकार से लिखने वाली अंजना अनुवाद और संपादन के क्षेत्र में अनुपम कार्य कर रही है। अपने ग़ज़ल संग्रह 'बारिशों का मौसम' के माध्यम से हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में दस्तक देने वाली अंजना संधीर कई राज्यों की साहित्य अकादमियों से पुरस्कृत एवं अखिल भारतीय कवि सभा, दिल्ली से सम्मानित है।

हिन्दी–उर्दू मिश्रित भाषा में ग़ज़ल कहने वाली अंजना ने समाज के सुख – दुःख ग़ज़ल के शे'रों में पिरोये। इसकी बानगी उनकी ग़ज़ल में इस प्रकार देखने को मिलती है –

"आपका नगर देखा
आईनों का घर देखा
जिन्दगी तेरी खातिर
कितनी बार मर देखा
काँच के मकानों में
बिजलियों का घर देखा"[46]

5.1.23 आचार्य सारथी 'रूमी'

हिन्दी ग़ज़ल लेखन के साथ ही उसके विकास में योगदान देने वाले कतिपय नामों में आचार्य सारथी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उत्तर प्रदेश के चमरोआ सारकीपुरम रामपुर में 1960 ई॰ में जन्में आचार्य सारथी के अब तक चार ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी ग़ज़ल आलोचना पर भी आपकी एक पुस्तक प्रकाशित है। आम–अवाम की भाषा में ग़ज़लें लिखने वाले आचार्य सारथी मानते हैं कि जिन्दगी हर हाल में जीनी ही पड़ती है इसलिए वे लिखते हैं –

"मुझको जीनी है जिन्दगानी भी
और रचनी है एक कहानी भी
पत्तियाँ जर्द हो चुकी हैं
मैंने देखी हैं रूत सुहानी भी"।"[47]

5.1.24 राजकुमारी रश्मि

14 जनवरी 1943 में बरेली (उत्तर प्रदेश) में जन्मी राज कुमारी रश्मि हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में जाना–पहचाना नाम है। कई पत्र–पत्रिकाओं में अनवरत ग़ज़ल प्रकाशन के साथ इनका एक ग़ज़ल संग्रह 'गवाही के बावजूद' भी प्रकाशित है। 'कादम्बिनी' द्वारा ग़ज़ल लेखन के लिए पुरस्कृत राजकुमारी जी को 2004 में निराला सम्मान से भी सम्मानित किया गया। ग़ज़ल को जिन्दगी से रूबरू बातचीत मानने वाली 'रश्मि' की ग़ज़लों में समसामयिक युग बोध के साथ ही पर्यावरणीय चेतना भी

दिखलाई देती है। सार्थक प्रतीकों के माध्यम से वर्तमान जीवन की विसंगतियों से परिचय करवाने में सक्षम रश्मि की एक ग़ज़ल की बानगी देखिए –

"सागर में नदी ताल में पानी नहीं कहीं
धरती की वसीयत की कहानी नहीं कहीं
बस गीली लकड़ियों सी सुलगती है हर नज़र
सब इस तरह खामोश जवानी नहीं कहीं
अब के यह इंकलाब भी कैसा अजब हुआ
बाकी बची नज़र में निशानी नहीं कहीं"।"[48]

5.1.25 हस्तीमल 'हस्ती'

राजस्थान के एक छोटे से शहर आमेर (राजसमंद) में 11 मार्च 1946 ई॰ को जन्में हस्तीमल 'हस्ती' समकालीन ग़ज़लकारों में एक सम्मानित नाम है। 'कुछ और इस तरह से भी' क्या कहें, किससे कहें, न बादल न दरिया जाने जैसे चर्चित ग़ज़ल संग्रहों से पाठकों के बीच लोक प्रिय हस्ती जी ग़ज़लें के श्रोताओं के बीच भी समान रुप से लोकप्रिय है। महाराष्ट्र हिन्दी साहित्य अकादमी और अंबिका प्रसाद 'दिव्य' पुरस्कार से सम्मानित हस्ती जी 'युगीन काव्य ' त्रैमासिकी का संपादन कार्य भी करते है। हस्तीमल 'हस्ती' की ग़ज़लों पर विचार–विमर्श करते हुए समीक्षक – आलोचक अनिरुद्ध न्हिा लिखते है– "हस्तीमल हस्ती की ग़ज़लों को वर्गीकरण की सीमा में नहीं समेटा जा सकता। इनकी ग़ज़लों में कथा, मिथक, कल्पना और संगीत सरलता से लहराकर प्रवहमान होते है। इनकी ग़ज़लों में गाँव की मुहब्बत और महानगर के दर्द की छटपटाती हुई आहट है।"[49]

हस्तीमल 'हस्ती' जी की व्यक्तिगत पीड़ा, सामाजिक पीड़ा ग़ज़लों में रुपान्तरित होती है। आम आदमी और खास आदमी के बीच झूलती इन्सानियत के सवाल पर वे लिखते हैं –

"क्या खास क्या है आम ये मालूम है मुझे
किसके है कितने दाम ये मालूम है मुझे
मै लड़ रहा हूँ रात से लेकिन उजालों पर
होगा तुम्हारा नाम ये मालूम है मुझे।"[50]

5.1.26 डॉ॰ धनंजय सिंह

29 अक्टूबर 1945 को जन्में डॉ॰ धनंजय सिंह जीवन के तीखे अनुभवों के साथ–साथ कोमल अनुभूतियों के भी ग़ज़लकार है। दुष्यंत से प्रभावित होकर हिन्दी ग़ज़ल लेखन में आए धनंजय सिंह हिन्दी–उर्दू की सीमाओं से परे ग़ज़लको आम–आदमी के दुःख–दर्द की अभिव्यक्ति का साधन मानते हैं। ग़ज़ल में नए प्रतीकों–बिंबों एवं उपमानों के माध्यम से पाठकों तक अपनी तीव्रानुभूतियों को संप्रेषित करने वाले धनंजय सिंह लिखते है –

"इस तरह भीड़ के सैलाब से गुजरता हूँ
जैसे दलदल भरे से तालाब से गुजरता हूँ
डूब जाता है पहाड़ों का बदन चोटी तक
जब तेरी आँखें के दो आब से गुजरता हूँ।"[51]

5.1.27 अशोक 'अंजुम'

15 दिसम्बर 1966 ई॰ को (उत्तर प्रदेश) के छोटे से गाँव में जन्में अंजुम के अब तक पाँच ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके है। कई पत्र – पत्रिकाओं के अतिरिक्त अंजुम की ग़ज़लें 'ग़ज़ल : दुष्यंत के बाद (से दीक्षित दनकौरी) हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक (सं॰ डॉ॰ सरदार मुजावर) में भी संकलित है। कई पुरस्कारों से सम्मानित अंजुम विगत कई वर्षो से 'प्रयास' नामक साहित्यिक त्रैमासिकी का सम्पादन भी कर रहे है। अंजुम की ग़ज़लों पर विमर्श करते हुए डॉ॰ सरदार मुजावर लिखते है – "अशोक अंजुम की ग़ज़लें इंसानियत के चिराग को जलाती है और अन्न की रोशनी बिखराती है।"[52]

आज की व्यवस्था में झूठ और पाखंड का ही बोल बाला है। 'गरीब की हालत तो उस मछली के समान है जो व्यवस्थाओं के जाल से घिरी हुई है। इसीलिए अंजुम लिखते है –

"सच के हिस्से में है फ़ाके
झूठ उडाये माल कबीरा
हम मछली हर ओर मछेरे
फैलाए है जाल कबीरा
बचपन से हक माँग कर
पके हमारे बाल कबीरा
मजहब की दुकान खोलकर
वे है मालामाल कबीरा।"[53]

5.1.28 विज्ञान व्रत

17 जुलाई 1943 ई॰ में (मेरठ) के टेटा गाँव उत्तर प्रदेश में जन्में विज्ञान व्रत दुष्यंत के बाद की हिन्दी ग़ज़ल परंपरा में जो महत्वपूर्ण नाम उभरे उनमें से एक है। छोटी–छोटी बहरों में लिखने वाले विज्ञान व्रत एक अनूठे ग़ज़लकार है। "बाहर धूप खड़ी है", "चुप की आवाज","जैसे कोई लौटेगा", "तब तक हूँ" इनके महत्त्वपूर्ण ग़ज़ल संग्रह है। लेखन एवं चित्रकारी से जुड़े विज्ञान व्रत अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हे। आम आदमी से जुड़े सरोकारों को अपनी ग़ज़लों की विषय वस्तु बनाने वाले विज्ञान व्रत की ग़ज़लों में जहाँ एक ओर वे व्यवस्था का दोगलापन सामने आता है तो वहीं दूसरी ओर लड़ने का हौसला भी दिखाते है। इसीलिए वे लिखते हैं –

"जुगनूँ ही दीवाने निकले
अधियारा झुठलाने निकले
आहों का अंदाज नया था
लेकिन जख्म पुराने निकले।"[54]

5.1.29 नूर मोहम्मद 'नूर'

17 अगस्त 1952 ई॰ में महासोन (कुशी नगर) उत्तर प्रदेश में जन्में नूर मोहम्मद नूर समकालीन हिन्दी ग़ज़ल के सशक्त हस्ताक्षर है। नूर के तीन ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त नूर की ग़ज़लें डॉ॰ सरदार मुजावर द्वारा ंपादित सम्पादित पुस्तक "हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक" में भी संकलित है। वर्तमान दौरकी कई प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं में 'नूर' की ग़ज़लें प्रकाशित होती रहती है।

नूर की ग़ज़लों पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते हुए डॉ॰ अनिरुद्ध सिन्हा अपनी पुस्तक "समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा और विकास" में लिखते है–"नूर की ग़ज़लों को समझने के लिए यथार्थ और कल्पना का ज्ञान होना चाहिए क्योंकि इनकी सम्पूर्ण ग़ज़लें तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश से ही प्रेरणा प्राप्त की लिखी गई है।"[55] बदलते दौर में बदलती जिंदगी से नूर वाकिफ है। आज जिंदगी कितनी दुश्वार हो गई है इससे चिंतित होकर नूर लिखते है –

"इस सदी सी बेहया कोई सदी पहले न थी
इस कदर बेआब आँख की नदी पहले न थी
पाँव रखे तो कहाँ रखे बतायेंगे हजूर
आपकी धरती तो इतना दलदली पहले न थी।"[56]

5.1.30 राजेश रेड्डी

22 जुलाई 1952 को नागपुर महाराष्ट्र में जन्मे राजेश रेड्डी समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परम्परा में प्रतिष्ठित नाम है। 'उड़ान', 'आसमान से आगे', और 'वजूद' जैसे ग़ज़ल संग्रहों से अपनी पहचान स्थापित करने वाले राजेश रेड्डी की ग़ज़लें सभी प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में भी अनवरत प्रकाशित होती रहती हैं –

"यहाँ हर शख्स हर पल हादसा होने से डरता है
खिलौना है जो माटी का फना होने से डरता है

मेरे दिल के किसी कोने में इक मासूम–सा बच्चा
बड़ों की देखकर दुनियाँ बड़ा होने से डरता है।"[57]

5.1.31 लक्ष्मीशंकर वाजपेयी

10 जनवरी 1955 ई॰ में (उत्तर प्रदेश) में कानपुर के समीपस्थ गाँव सुजगवां में जन्में लक्ष्मी शंकर वाजपेयी समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में एक सुपरिचित नाम है। ग़ज़ल संग्रह 'खुशबु तो बचाली जाए' के माध्यम से अपने समकालीनों में प्रसिद्ध वाजपेयी जी की ग़ज़लें शेरजंग गर्ग द्वारा संपादित 'तीसरे ग़ज़ल शतक' में भी संकलित है। इसके अतिरिक्त कई प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं में उनकी ग़ज़लें प्रकाशित होती रहती है। कई प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित वाजपेयी जी अनेक सामाजिक सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्बन्धित है। सम्प्रति आकाशवाणी दिल्ली में पदस्थापित वाजपेयी जी ग़ज़ल लेखन में भी रत है।

तीसरे ग़ज़ल शतक की भूमिका में डॉ॰ शेरजंग गर्ग लिखते है कि "लक्ष्मी शंकर वाजपेयी ग़ज़लें तो कहते ही है ग़ज़ल के उत्साही प्रवक्ता भी है। अनेक गोष्ठियों में व्यक्त होने वाले उनके ग़ज़ल संबंधी विचार श्रोताओं को सोचने – समझने को मजबूर करते है।"[58]

समकालीन ग़ज़ल को दुष्यंत की जमील से जोड़ते हुए वाजपेयी जी भी आम आदमी के दुःख–दर्द को अनुभव करते हुए इस तरह अभिव्यक्त करते है –

"वो दर्द वो बदहाली के मंजर नहीं बदले
बस्ती से अँधेरों से भरे घर नहीं बदले
बदले है महज कातिल और उनके मौखौटे
वो कत्ल के अंदाज वो खंजर नहीं बदले है।"[59]

5.1.32 हरेराम 'समीप'

मध्य प्रदेश के मेख (नरसिंह) में 13 अगस्त 1951 ई॰ में जन्मे हरे राम समीप समकालीन ग़ज़ल के नवोदित हस्ताक्षरों में शुमार है। अब तक समीप

के चार ग़ज़ल संग्रह 'हवा से भीगते हुए', 'आँधियों के दौर में', 'कुछ तो बोलो' 'किसे नहीं मालूम' और 'इस समय में हम' प्रकाशित है। हरियाणा साहित्य अकादमी एवं बई संस्थाओं से सम्मानित व पुरस्कृत समीप जी की ग़ज़लें प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती है। व्यवस्था की विसंगतियों से उत्पन्न विद्रोह समीप जी ग़ज़लों में विद्यमान है। इस खोफनाक दौर में हमें आपसी प्रेम व्यवहार एवं भाई चारा बनाकर रखना होगा अन्यथा वोटों की राजनीति इस देश को टुकड़ों–टुकड़ों में बाँट देगी यह समीप जी ग़ज़लों की स्वाभाविक विषयवस्तु है। प्रस्तुत है एक बानगी –

"आपस में अगर अपनी सखावत बनी रहे
इस खौफनाक दौर में हिम्मत बनी रहे
वो आखिरी बयान में समझा गया हमें
जैसे भी हो प्यार की दौलत बनी रहे।"[60]

5.1.33 डॉ॰ हनुमंत नायडू

तेलगु भाषी और हिन्दी ग़ज़ल के प्रमुख हसताक्षरों में शुमार डॉ॰ हनुमंत नायडू का जन्म 7 अप्रैल 1933 में हुआ "हिन्दी ग़ज़लः जलता हुआ सफर" इनका प्रमुख ग़ज़ल संग्रह है। जिंदगी के हवाले से डॉ॰ नायडू लिखते है –

"एक टूटा जाल है यह जिन्दगी
दर्द का अहवाल है ये जिन्दगी
एक नन्हीं सी हंसी के स्वप्न तक
इस कदर बदहाल है ये जिन्दगी"।"[61]

5.1.34 डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष'

हिन्दी ग़ज़ल के शोधार्थी रहे सुमेर सिंह ने ग़ज़लें भी लिखी हैं। इनका गीत ग़ज़ल संग्रह 'गीतों के रश्मि द्वार' प्रकाशित हैं। 'हिन्दी ग़ज़लों

का विवेचनात्मक अनुशीलन' सुमेर सिंह का हिन्दी ग़ज़लों पर प्रकाशित शोध कार्य है। वर्तमान दौर के सामाजिक यथार्थ और जीवन की विसंगतियों को ग़ज़लों के माध्यम से प्रस्तुत करने वाले श्री शैलेष की ग़ज़लों की एक बानगी प्रस्तुत है –

"स्याहियों के रिश्ते हैं दूधिया सफेदी से
रूप जो कलंकित है चॉद से भले होंगे
सिसकियों के मेले में याचना की गलियों में
पूछिये थकान उनकी पाँव जों चले होंगे।"[62]

5.1.35 डॉ॰ विनय मिश्र

12 अगस्त 1966 वाराणसी उत्तर प्रदेश में जन्मे डॉ॰ विनय मिश्र हिन्दी ग़ज़ल के नवोदित हस्ताक्षरों में से है। ग़ज़लकार होने के साथ ही हिन्दी ग़ज़ल हिन्दी ग़ज़ल आलोचना के क्षेत्र में भी कार्य कर रहे डॉ॰ विनय मिश्र ने " ग़ज़लकार : ज़हीर कुरेशी : महत्त्व एवं मूल्यांकन" का सम्पादन कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। कई प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में अनवरत प्रकाशित होने वाले डॉ॰ मिश्र का एक ग़ज़ल संग्रह 'सच और भी है' भी प्रकाशित है।

संप्रति कला महाविद्यालय अलवर (राजस्थान) में पद–स्थापित डॉ॰ मिश्र आज भी हिन्दी ग़ज़ल को नये आयाम देने में प्रयासरत हैं। डॉ॰ विनय मिश्र की ग़ज़लों में सामाजिक यथार्थ व्यवस्था का दोगलापन बाजारवाद से उत्पन्न आर्थिक विषमता जैसे विषयों पर व्यंग्य देखने को मिलता है –

"शिखर पर हैं हमारी वेदनाएँ
वे कहते हैं चलो उत्सव मनाएँ
हमीं वैसाखियों पर चल रहे थे
नहीं तो दौड़ती संभावनाएँ।"[63]

5.1.36 डॉ॰ दिनेश सिंदल

11 मई 1956 ई॰ में सिरोही (राजस्थान) में जन्मे दिनेश सिंदल अपने ग़ज़ल–संग्रह 'आँखों में आलपिन' के माध्यम से चर्चित हुए। विभिन्न विधाओं में पाँच से अधिक पुस्तकें प्रकाशित करवा चुके श्री दिनेश सिंदल की ग़ज़लें डॉ॰ शेरजंग गर्ग द्वारा सम्पादिल तीसरे ग़ज़ल शतक में शुमार है। इसके अतिरिक्त देश की अन्य कई प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में इनकी ग़ज़ल प्रकाशित होती रहती है। विमर्शों को हिन्दी ग़ज़ल के धरातल पर उतारते हुए सिंदल जी अपनी ग़ज़लों में स्त्री–विमर्श को इस तरहा परिभाषित करते हैं –

"लो उड़ी अपने घरों से कामकाजी औरतें
बाँधकर पत्थर पैरों में कामकाजी औरतें
ढूंढती हैं आज टूटे ख्वाब का कोई महल
जिन्दगी के मकबरों से कामकाजी औरतें।"[64]

"हिन्दी ग़ज़ल को एक आन्दोलन एवं संस्कार मानने वाले श्री सिंदल ने समसामयिक विषयों पर कई मार्मिक ग़ज़लें भी लिखीं हैं।

5.1.37 डॉ॰ आलोक श्रीवास्तव

हिन्दी ग़ज़ल के नवहस्ताक्षरों में सर्वाधिक ऊर्जावान एवं संभावनाओं से परिपूर्ण आलोक श्रीवास्तव का जन्म 30 दिसम्बर 1971 को राजापुर (मध्य–प्रदेश) में हुआ। पेशे से मीडियाकर्मी आलोक की ग़ज़लें डॉ॰ शेरजंग गर्ग द्वारा सम्पादित तीसरे ग़ज़ल शतक एवं अशोक अंजुम द्वारा संपादित 'नये दौर की की ग़ज़लें' में भी शुमार है। अपने ग़ज़ल संग्रह 'आमीन' से आलोचकों एवं ग़ज़ल प्रेमियों में चर्चित आलोक श्रीवास्तव ने पारिवावरिक रिश्तों पर मार्मिक ग़ज़लें लिखीं। उनकी 'माँ' और 'बाबूजी' पर हिन्दी ग़ज़लें हिन्दी परम्परा अक्षुण्य धरोहर है। 'माँ' और 'बाबूजी' पर लिखी उनकी ग़ज़लों की एक बानगी प्रस्तुत है –

"चिंतन, दर्शन, जीवन, सर्जन रूह नजर पर छाई अम्मा
सारे घर का शोर–शराबा, सूनापन तन्हाई अम्मा
सारे रिश्ते, एक दुपहरी, गर्म हवा, आतिश, अँगारे
झरना, दरिया, झील, समन्दर भीनी सी पुरवाई अम्मा।"[65]

और –

"घर की बुनियादें, दीवारें, बामोदर थे बाबूजी
सबको बाँधे रखने वाला खास हुनर थे बाबूजी
कभी बड़ा सा हाथ खर्च थे, कभी हथेली की सूजन
मेरे मन का आधा साहस, आधा डर थे बाबूजी।"[66]

5.1.38 अशोक रावत

15 नवम्बर 1953 ई॰ में मथुरा (उत्तर प्रदेश) में जन्मे अशोक रावत हिन्दी ग़ज़ल के सशक्त हस्ताक्षर हैं। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से इन्जीनियरिंग की पढ़ाई पूरी करने के बाद वह सरकारी सेवा में रहे। 2003 में उनका ग़ज़ल संग्रह 'थोड़ा सा ईमान' प्रकाशित हो चुका है और दूसरा ग़ज़ल संग्रह शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। बेहद सादगी से ग़ज़ल कहने वाले अशोक रावत की ग़ज़लें सीधे मन को स्पर्श करती हैं। उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल को नयी भाषा, नये संस्कार और नयी कहन दी है। उनकी ग़ज़लों का दूसरा गुण है कि वे कहीं से भी आयातित नहीं लगती। उनकी ग़ज़ल की एक बानगी प्रस्तुत है –

"मेरे मन में संशय की कोई दीवार नहीं
स्वाभिमान देकर मुझको कुछ भी स्वीकार नहीं
सब कुछ मिल सकता है इन बाजारों में लेकिन
चैन जहाँ मिल सकता हो कोई बाजार नहीं"।"[67]

5.1.39 डॉ॰ कुमार विनोद

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर डॉ॰ कुमार विनोद का जन्म 4 जून 1966 ई॰ में कुरूक्षेत्र हरियाणा में हुआ। 'बेरंग हैं सब

तितलियाँ' ग़ज़ल संग्रह के माध्यम से चर्चा में आने वाले कुमार अपने समय और समाज के विविध पक्षों को ग़ज़लों में अभिव्यक्त करते हैं। मानवीय अनुभव को ग़ज़ल में ढ़ाल कर लिखने वाले कुमार विनोद कहते हैं –

"बर्फ हो जाना किसी तपते एहसास का
क्या करूँ मैं खुद से ही उठते हुए विश्वास का
आँधियों से लड़ने के गिरते पेड़ को मेरा सलाम
मैं कहाँ कायत हुआ हूँ सर छुपाती घास का।"[68]

5.1.40 जहीर कुरेशी

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल के प्रतिबद्ध ग़ज़लकारों में एक लब्ध प्रतिष्ठित नाम है–जहीर कुरेशी। अद्यतन ग़ज़ल लेखन में रत जहीर कुरेशी ने हिन्दी ग़ज़ल को नये शिखर प्रदान किये। 5 अगस्त, 1950 में मध्य प्रदेश के ग्वालियर के पास गाँव में जन्मे जहीर कुरेशी ने अल्पआयु में ही ग़ज़लें लिखना प्रारम्भ कर दिया था। अब तक उनके 9 ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त सभी प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में और प्रकाशित ग़ज़ल संकलनों में जहीर कुरेशी की ग़ज़लें प्रकाशित हैं। 'लेखनी के स्वप्न','एक टुकड़ा धूप', 'चाँदनी का दुःख','भीड़ में सबसे अलग','समंदर ब्याहने आया नहीं, 'पेड़ तनकर भी नहीं टूटा','बोलता है बीज भी', 'निकला न दिग्विजय को सिकंदर', 'रास्तों से रास्ते निकले', उनके प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह है। अपने अनुभवों को व्यस्त करने के लिए ग़ज़ल को माध्यम बनाने के सवाल का उत्तर देते हुए वे कहते हैं कि –"कविता मेरे लिए न तो बुद्धि विकास का साधन रही और न ही कविता को मैंने पेट भरने का काम सौंपा। ये दोनों ही स्थितियां कवि को कविता के प्रति ईमानदार नहीं रहने दे सकती। कविता मेरी उस झिलमिलाहट की अभिव्यक्ति है, जो वर्तमान जीवन परिवेश में बिखरी हुई विसंगतियों, विद्रूपताओं के कारण मुझमें बूँद–बूँद जमा होती रहती हैं।"[69]

अपनी ग़ज़लों की विषयवस्तु पर वे स्वयं विचार करते हुए लिखते हैं – वर्तमान जीवन परिवेश में आज के आदमी की व्यथा एवं संघर्ष कथा

की संवेदनशील अभिव्यक्तियाँ हैं। जो तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से कहीं भी आँख चुराने की कोशिश नहीं करती।"[70]

समष्टि की पीड़ा को अपनी पीड़ा बनाकर जहीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्त किया है। वे लिखते हैं कि –

"आपका मेरा हर किसी का दुःख
एक जैसा है आदमी का दुःख
बन न जाए वो रोज की पीड़ा
आज जो है कभी–कभी का दुःख।"[71]

समकालीन कविता के युगबोध को जिस तरह जहीर कुरेशी जीते हैं उसी तरह अभिव्यक्त भी करते हैं। वर्तमान में प्रचारित विमर्श से हो, चाहे बाजारवाद सभी ने एक ड़र मनुष्य को दिया है। जहीर कुरेशी इसी ड़र को ग़ज़ल के शे'र में यूँ लिखते हैं –

"बवंडर हर दिशा में आ गए हैं
भयानक स्वर हवा में आ गए हैं
अपाचित बीज के विस्तार जैसे
कई डर शोषिता में आ गए हैं।"[72]

इस प्रकार हम देखते हैं कि समकालीन हिन्दी ग़ज़ल एक विस्तृत एवं व्यवस्थित ग़ज़ल परम्परा है। सही मायनों में देखें तो हिन्दी ग़ज़ल की सुव्यवस्थित अनुक्रमणिका दुष्यंत के बाद ही विकसित एवं पल्लवित हुई। हिन्दी ग़ज़ल का क्रमबद्धविकास दुष्यंत के बाद ही दृष्टिगोचर होने लगता है,, जहाँ से समर्थ ग़ज़लकारों की एक लम्बी कतार है।

समकालीन साहित्य में हिन्दी ग़ज़ल का अपना एक मुकाम है जहाँ से वह उत्तरोत्तर सफलता के नये आयाम स्थापित कर रही है। इस परम्परा में अनेंको ऐसे

ग़ज़लकार हैं जो आज भी इसकी श्रीवृद्धि करने में संलग्न हैं। इनमें हरीश निगम, अखिलेश अंजुम, नरेन्द्र मिश्र, अग्निवेश शुक्ल, डॉ॰ वेद प्रकाश अमिताभ, महेश अनध, सावित्री परमार, महेश दर्पण, ओम प्रभाकर, माणिक वर्मा, अशोक अंजुम, विजय कुमार सिंघल, मिल किशोर भावुक, कृपाशंकर शर्मा'अचूक', ओम प्रकाश चतुर्वेदी 'पराग',कमलेश भट्ट 'कलम', ज्योति शेखर, रंजना अग्रवाल, सरोज व्यास, अश्वघोष, गोपाल गर्ग, देवमणि पाण्डेय, बृज भूषण चर्तुर्वेदी 'बृजेश',अखिलेश तिवारी, अनुजस रोटिया, अजय अज्ञात, अनिरूद्ध सिन्हा, दीक्षित दनकौरी,डॉ॰ श्याम मखा, 'श्याम', अशोक गीते, विजय पाते, सुशील साहिल, भानुमित्र, चाँदशेरी, महेन्द्र नेह, राम मेश्राम आदि नाम है जो हिन्दी ग़ज़ल की समृद्ध परंपरा को न केवल आगे बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं अपितु उसे लोक प्रियता के नये शिखरों पर स्थापित कर रहे हैं।

समकालीन हिन्दी ग़ज़लों में न केवल पारंपरिक विषयों बल्कि समकालीन विमर्शों, यथा–नारी विमर्श दलित–विमर्श, आदिवासी विमर्श, वृद्ध विमर्श, के साथ –साथ बाजारवाद, पर्यावरणी बोध, कन्या भ्रूण हत्या, जैसे समसामयिक विषयों पर भी स्पष्टतः चिंतन दिखलाई देती है। आज ग़ज़ल प्रेम और श्रंगार को त्यागकर आम आदमी के नज़दीक आई तो इसका महत्त्वपूर्णकारण इसका हिन्दी परिवेश था। हिन्दी ग़ज़लों को जनवादी स्वर जहाँ हर एक समस्या से आम आदमी के साथ मिलकर मुठभेड़ कर रहा है। वहीं दूसरी ओर अपनी सशक्त अभिव्यक्ति अलंकार मुहावरे और भालाई जादू से पाठक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। इसका किसी भी भाषा में कोई विरोध नहीं है। हिन्दी ग़ज़ल आज जिस मुकाम पर है वह अपने दम पर हाँसिल किया है कभी आलोचकों के उपहास की पात्र रही हिन्दी ग़ज़ल आज उन्हीं में प्रशंसा भी पा रही है।

5-2 tghj dyk'kh vkj mud f'kYi&fo/kku

शिल्प वह माध्यम है जिसके द्वारा कोई भी रचनाकार अपने कथ्य, आशय, भावनाओं, विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वस्तुतः 'शिल्प' शब्द वास्तुकला, या मूर्तिकला से संबंद्ध है, जहाँ इसका हस्त कौशल पर आधारित कलाओं में उपयुक्त कारीगरी या हुनर के लिए होता है। हिन्दी में, शिल्प को अंग्रेजी के "Technique" 'टेकनीक' का रुपान्तरण माना जाता है। 'टेकनीक' या शिल्प वह

माध्यम है जो लेखक के अनुभाव को रचनात्मकता का आधार प्रदान कर कलात्मक मोड़ देता है। डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल का मानना है कि – "किसी भाषा को निश्चित रुप देने के लिए जो विधान प्रस्तुत किये जाते हैं वही उस कला की शिल्प–विधि है। जहीर कुरेशी ग़ज़लों में संवेदना के विविध रूप देखने के बाद उनकी ग़ज़लों में व्याप्त शिल्प–विधान का अध्ययन करना भी आवश्यक हो जाता है। जहीर कुरेशी की हिन्दी ग़ज़लों में व्याप्त शिल्प को देखने के लिए हमें उनकी ग़ज़लों का सूक्ष्म अध्ययन निम्नलिखित तत्वों के आधार पर करना होगा –

1. ग़ज़ल के अंग–शेर, मतला, मकता, काफिया, रदीफ आदि
2. ग़ज़ल की भाषा
3. छंद योजना
4. अलंकार योजना
5. बिम्ब विधान
6. प्रतीक विधान
7. व्यंग्यायत्मकता

ग़ज़ल के शिल्प विधान की दृष्टि से जहीर कुरेशी की ग़ज़लें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। ग़ज़ल के महत्त्वपूर्ण अंगों के माध्यम से हम इस कला अध्ययन कर रहे हैं।

5.2.1 ग़ज़ल के अंग

शेर : ये ग़ज़ल का महत्त्वपूर्ण अंग है। शेर में दो पंक्तियाँ होती हैं। एक पंक्ति को मिसरा कहते हैं। शेर की पहली पंक्ति के मिसरे को 'मिसरा–ए–ऊला' और दूसरी पंक्ति में 'मिसरा–ए–सानी' कहा जाता है ग़ज़ल में वैसे तो शेरों की संख्या निश्चित नहीं है लेकिन पाँच से सत्रह तक शेर किसी ग़ज़ल में हो सकते हैं। ग़ज़ल के शेरों में भाव–साम्य नहीं होती अगर हो तो ऐसी ग़ज़ल को 'मुसलसल' ग़ज़ल कहा जाता है। दो मिसरों में कहे गए शेर में विषय वस्तु की स्पष्टता प्रोढ़ता होनी चाहिए, उदाहरणार्थ –

"हर संभव है माँ दुआओं के करीब
जैसे खुशबू हो दुआओं के करीब।"[73]

मतला :

ग़ज़ल का पहला शेर मतला कहलाता है जिसके दोनों मिसरे तुकांत होते हैं, जबकि अन्य शेरों के दूसरे मिसरे में तुकांतता होती है –

"दो शेरों के अलावा चार की बातें नहीं करते
करोड़ों लोग रोटी कार की बातें नहीं करत।"[74]

मक्ता :

ग़ज़ल के अंतिम शेर मो मकता कहते हैं। उसमें शायर अपने उपनाम (तखल्लूस) का प्रयोग करता है। अगर किसी शेर के आखिरी शेर में अगर शायर ने अपने कविनाम का प्रयोग नहीं किया तो उसे ग़ज़ल का आखिरी शेर कहते हैं। जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में प्रायः मक्ते का प्रयोग नहीं के बराबर मिलता है। किसी ग़ज़ल में ही मकते का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है–

"शेरों को इस प्रकार से कहते रहे जहीर
आए अलग नज़र हजारों के बीच में।"[75]

"कबीर को तो पता ही न था जहीर है कौन
मगर जहीर के कवि कबीर के शामिल हैं।"[76]

काफिया–रदीक –

काफिया–रदीक का अर्थ है बार–बार। अर्थात् वह अक्षर या अक्षर का समूह बार बार प्रयुक्त होकर ग़ज़ल के शेरों को ग़ज़ल के सूत्र में बाँधता है उसे काफिया कहते हैं। जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में काफिया का बड़ा खूबसूरत प्रयोग हुआ है। "काँच के घर में खड़े हैं इसलिए चुप हैं –

लोग पापों के घड़े हैं इसलिए चुप हैं
नीतियों को गालियाँ देते ये पैदल लोग हैं
आज घोड़ों पर चढ़े हैं, इसलिए चुप हैं
आईनें सच बात कहना चाहते हैं किन्तु
सामने पत्थर पड़े हैं इसलिए चुप हैं
झुग्गियों की बात लगती है उन्हें बोनी
वे हिमालय से बड़े हैं, इसलिए चुप हैं
कैसे टकरा जाएंगे अन्याय आँधी से
वृक्ष बालू में गड़े हैं इसलिए चुप हैं
यदि स्वयं चढ़ते तो निश्चित चीखते चेहरे
मित्र सूली पर चढ़े हैं इसलिए चुप हैं
कायरों की पाठशाला में अधिकतर लोग
पाठ जीवन का पढ़े हैं, इसलिए चुप हैं।"[77]

और –

"सशंकित माँ की बानी हो रही है
बड़ी बिटिया सयानी हो रही है
है मीठी गंध लगभग हर दिशा में
प्रफुल्लित रातरानी हो रही है
दिये के ठीक नीचे है अँधेरा
कहावत भी पुरानी हो रही है
बिना बादल हुई बरसात ऐसी
अचानक रुत सुहानी हो रही है
प्रजातंत्रीय 'राजा' है पिया जी
वो इस कारण भी रानी हो रही है
किये वे प्रश्न बच्चों से पिता ने
निरूत्तर बुद्धिमानी हो रही है
नदी सागर की बाहों में पहुँचकर
समंदर की कहानी हो रही है।"[78]

उपर्युक्त ग़ज़लों में मतले के शेर में खड़े–घड़े और बानी–सयानी के काफिये प्रयुक्त हो रहे हैं। उसके बाद चढ़े, पड़े, बड़े, गड़े, चड़े, पड़े और दूसरी ग़ज़ल में रातरानी, पुरानी, रानी, बुद्धिमानी, कहानी के काफिये हर दूसरे मिसरे में प्रयुक्त हुए हैं। जहीर कुरेशी की ग़ज़लों की यह विशेषता है कि उनकी ग़ज़लों के काफिये अर्थवत्ता लिए होते हैं। इसी प्रकार पहली ग़ज़ल में 'इसलिए चुप हैं' और दूसरी ग़ज़ल में 'हो रही है' की रदीफ प्रयुक्त हो रही है।

जहीर कुरेशी की ग़ज़लों पर शिल्प के दृष्टिकोण से चिंतन करते हुए वरिष्ठ ग़ज़लकार एवं ग़ज़ल के उस्ताद शायर डॉ॰ दरवेश भारती लिखते हैं –"ग़ज़ल में काफिये और रदीफ का बहुत महत्त्व माना गया है। इस लिहाज से जहीर कुरेशी एक कामयाब ग़ज़लकार साबित होते हैं। हिन्दी भाषा में ग़ज़ल कहते समय में उन्होंने बहुत दक्षता व सजगता से काम लिया है रदीक सार्थक एवं क़ाफिये के प्रयोग में से सिद्धहस्त हैं। पीर, चीर, कबीर, ज्ञानी, दानी, सावधानी, वर्तमान, ढलान, प्रस्थान, स्वर, शर, मुद्राएँ, भाषाएँ, हताशाएँ, धरा, दिशा, कला, एकता, अपमान, सम्मान, अनुसंधान, परिधान, अनुदान, संरचना, शिक्षा–संख्या, अभिमान, विस्तार, गगन, चलन, मन, संतुलन, थकन, नयन, अहम्, संष्म, भ्रंम, ध्यान, ज्ञान, अनुदान, विज्ञान, तम, क्रम, उदार, ज्वार, अन्धकार–व्यवहार, स्वीकार जैसे हिन्दी के अनेक तत्सम एवं तद्भव शब्दों का ग़ज़ल में और विशेषकर काफ़ियों में सार्थक स्वाभिप्रायः प्रयोग कर उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल को समृद्ध बनाया है। हिन्दी भाषा में कही जाने वाली ग़ज़ल को दिया गया उनका यह भवदान उल्लेखनीय है।"[79]

5.2.2 छंद–विधान

'ग़ज़ल' अरबी फारसी की काव्य विधा है, इसे हिन्दी में स्वीकार किया गया और इस प्रकार हिन्दी ग़ज़ल का प्रचलन हुआ है। ग़ज़ल का एक निश्चित व्याकरण है। जिस प्रकार हिन्दी की छंदबद्ध कविता में विभिन्न छंदों का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार ग़ज़लों में भी विभिन्न बहरे (छंदं) हैं। इन्हें लय खण्ड भी कहते हैं। बहर में वर्ण मात्रा लय, गति एवं यति का

ध्यान रखा जाता है। जिस प्रकार हिन्दी में गण है। उसी प्रकार उर्दू में बहरें और अरकान है जो निम्न प्रकार है –

फाइलातुन, फाइलुन, मुफाईलुन, मफऊलान, फऊलुन, फैलुन, मुस्तफैलुन, मुतफाइलुन, फाइलात, अरबी अर्कान (गणों) का पूर्णतः पालन करते हुए भी हिन्दी की प्रकृति, पहचान, शब्द शक्ति, मिथक, कहावत, मुहावरे में ग़ज़ल लिखने का साहस जहीर कुरेशी ने हिन्दी साहित्य कोष में अभिवृद्धि करने का साहस किया। दुष्यंत के बाद हिन्दी ग़ज़ल का मुहावरा चल पड़ा तो हिन्दी में ग़ज़ल के नामकरण के साथ–साथ रूकन, अर्कान, मतला, शेर, काफिया, रदीफ, मंकते और बहरों का भी हिन्दीकरण करने का प्रयास हुआ है। हिन्दी ग़ज़ल के लिए 'गीतिका', 'मुक्तिका', 'द्विपदिका', जैसे नाम सुझाए गए तो ग़ज़ल के अन्य अंगों को भी उदयस्थल 'मतला', तुकांत (रदीफ) आदि कहकर संबोधन करने का असफल प्रयास किया। जहीर कुरेशी ने इस सब प्रयासों से दूर रहकर भी हिन्दी ग़ज़ल को हिन्दी साहित्य की विधा बनाकर यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दी ग़ज़ल इसलिए हिन्दी ग़ज़ल है क्योंकि वह हिन्दी में सोचती विचारती है। जहीर कुरेशी का स्पष्ट मानना है कि "ग़ज़ल वर्णिक छंद है जिसकी व्याकरणीय शुद्धता जाँचने की कसौटी उसकी (अरेबिक) बहर है। सोना को सोना सिद्ध होने के लिए कसौटी की जाँच–परख से गुजरना ही पड़ता है। उसी तरह हिन्दी ग़ज़ल भी अरेबिक बहरों को मानती है और अपनी परख के लिए 'बहर' की छंदानुशाषी 'तख्तीक' के लिए तैयार है।"[80]

जहीर कुरेशी ने लगभग सभी बहरों में ग़ज़लें लिखी हैं। हिन्दी ग़ज़ल लिखते समय भी वो ग़ज़ल में अनिवार्य लघु नियमों का पालन करना नहीं भूलते। यही कारण है कि हिन्दी में ग़ज़ल लिखते हुए भी पूरा ध्यान ग़ज़ल के 'टेकनीक' पर होता है।अपने नवें ग़ज़ल संग्रह में संकलित महेश अग्रवाल को दिए एक साक्षात्कार में जहीर कुरेशी कहते हैं कि "हिन्दी के नए ग़ज़लकारों में मेरा केवल यही कहना है कि हिन्दी मंचों के व्यामोह में न फंसे। हिन्दी ग़ज़ल को पूरे छंदानुशासन के साथ वर्तमान सदी के तथ्यों के

सहित कहने का प्रयास करें। हिन्दी ग़ज़ल के मुख्य धारा की कविता बनाने में उनका योगदान अपेक्षित है।"[81]

5.2.7 अलंकार योजना

अलंकार भाषा और भाव दोनों की रमणीयता में वृद्धि करने वाले साधन हैं अलंकार शास्त्र के प्रणेता आचार्य भामह का मानना है शब्द और अर्थ की वक्रोक्ति ही वाणी का अलंकार है। आचार्य दण्डी काव्य की शोभा को बढ़ाने वाले गुण या धर्म को अलंकार मानते हैं। अलंकार केवल काव्य की शोभा कारकतत्त्व ही नहीं होते वरन् वे रसानुभूति में भी सहायक हैं। काव्य में बिम्बों का उभारने में अलंकारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग दिखाई देता है। जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में अलंकारों का प्रयोग दृष्टव्य है।

अनुप्रास –

"अपना है और अपनों से अनजान हैं शहरहै।"[82]
"खिड़कियाँ खोल बंद कमरों की
और जी ले खुला–खुला होकर।"[83]

"पीठ–पीछे हुए वार से डर लगता है।"[84]
"कीचड़ की कालिमा में नहाता कमल मिला।"[85]

"बात का बतडंग उसने बनाया ही नहीं।"[86]
"पुराने तीर और तलवार बदले।"[87]
"शहर में आते हैं लेकिन वो घर नहीं आते।"[88]

विरोधाभास –

"इस सियासत ने ये जादू कर दिखाया है
दोस्ती होने लगी है आग–पानी में।"[89]

"शहर में हर कहीं मेला दिखाई देता है
हरेक फिर भी अकेला दिखाई देता है।"[90]

"हमको तुलसी के राम याद रहे
हम कबीरा के राम भूल गए।"[91]

अन्योक्ति –

"छुड़ा के जान अधिक उम्र के समंदर से
मैं सोचता हूँ काश नदी अपने घर लौटे।"[92]
"इस कलयुग के दानवीर कर्णों की गाथा मत पूछो
जितना भी काला धन था वो मुक्त हाथ से दान।"[93]

"फूल बनने के उत्साह में
अनगिनत कच्ची कलियाँ मिलीं।"[94]

"लोग, गरीबी–रेखा से नीचे हैं लेकिन
भूख, गरीबी–रेखा के ऊपर होती है।"[95]

"'निशा' के साथ जो घटना घटी थी थाने में
'ऊषा' को उसने बहुत सावधान कर डाला।"[96]

"युवा नदियों के बूढ़े सागरों से
कहाँ होते हैं संगम जानते हैं।"[97]

मानवीकरण –

"बिजलियाँ भी दर्ज करती रही अपना विरोध
छेड़छानी पर तुले मेघों के हुड़दंगों के बीच।"[98]

"छोड़कर लज्जा अचानक पेड़ से लिपटी लता
भंग यूँ भी पेड़ का, संयम नियम होने लगा।"[99]

"पेड पंछी पहाड़ों ने आवाज़ दी
जंगलों ने बुलाया तो अच्छा लगा।"[100]

"सुगंध लाँघती रहती है अपनी सीमाएँ रही।"[101]

रुपक –

"प्रजा–तंत्रीय 'राजा' है पिया जी
वो इस कारण भी 'रानी' हो रही है।"[102]

"वो अपने फल को ही चखने लगा बलात्
घर में कभी–कभी ऐसा पिता रहा।"[103]

उपमा –

"आज भी कुछ लोग हैं 'बुश' की तरह
आज भी सद्दाम् होते हैं कई।"[104]

"सोच से लोग 'कलयुग' बने
सोच से लोग द्वापर बने।"[105]

5.2.3 जहीर कुरेशी की ग़ज़ल की भाषा

ग़ज़ल हो या साहित्य की अन्य विधा भाषा ही अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। भाषा भावों एवं विारों की वाहक होती है डॉ॰ रामस्वरुप चतुर्वेदी ने 'भाषा और संवेदना' नामक पुस्तक में लिखा है "कवि भाषा विशिष्ट प्रयोग ही करता है मोटे तौर से कहना चाहें तो भाषा का यह विशिष्ट प्रयोग ही काव्य भाषा है। सामान्य भाषा और काव्य भाषा का अंतर इस बात में है, कि सामान्य भाषा में जहाँ शब्दों का एक सुनिश्चित अर्थ रहता है जबकि काव्य

भाषा में यह सुनिश्चितता सह्य नहीं है। काव्य भाषा शब्दों को बार–बार अमूर्त करती है। कवि अर्थ अर्थ के स्थूलता को तोड़कर उसकी अमूर्त और उन्मुक्त प्रधति को पुनः स्थापित करता है। सामान्य भाषा और काव्य भाषा के स्तर पर शब्दों की यह दोहरी प्रकृति भाषा की अपनी विशेषता है।"[106] जहीर कुरेशी ने भी भाषा संबंध कुछ नये प्रयोग किये हैं। कहन की अपनी शैली विकसित की है। जहीर कुरेशी की भाषा पर विचार करते हुए डॉ॰ मधु खराटे लिखते हैं – "जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में भाषा के तीन रुप दृष्टिगत होते हैं। उर्दू से प्रभावित भाषा, शुद्ध हिन्दी भाषा, हिन्दुस्तानी भाषा।"[107] यद्यपि जहीर कुरेशी ने उर्दू से प्रभावित भाषा में ग़ज़लें कम ही लिखी हैं, फिर भी कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

"लग रहा है एक जिंदा लाश सा
भीड़ में चुपचाप चलता आदमी।"[108]

"वो रहनुमा नही बहुरुपिया लगा है मुझे
है उसके पास मुखौटे हज़ार पढ़ लेना।"[109]

"लोग तन से तो धल–उज्जवल रहे
किन्तु अंतर से दिये का तल रहे
हाँ वही सिद्धार्थ कहलाये गए
हंस जिनके तीर से घायल रहे।"[110]

"जब तक कथित प्रकार की शुचिता बनी रही
मन में पवित्र रहने की दुविधा बनी रही।"[111]

जहरी कुरेशी ने आम बोलचाल की हिन्दुस्तानी भाषा में ही अधिकतर शेर कहे। उन्होंने अपनी बात कहने के लिए अपनी ही माटी की भाषा का प्रयोग किया –

"धीरे–धीरे टूट रहे हैं खुशफहमी के किले तमाम
मीलों पीछे छूट रहे हैं खुशियों के सिलसिले तमाम।"[112]

"मुश्किलें गुजरीं तो जीने का मजा जाता रहा
अनवरत संघर्ष करने का मजा जाता रहा।"[113]

"काम करने वाले भी बेखबर नहीं रहते
मिल रही है कम पगार लोगों को।"[114]

जहीर कुरेशी की ग़ज़लों की भाषा पर टिप्पणी करते हुए डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं –"उनकी भाषा खड़ी बोली का आदर्श रुप है। उनके इस देसी रुप की जितनी तारीफ की जाये कम है।"[115] स्पष्ट है कि जहीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़लों में आम–बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग सर्वाधिक किया है। उनका स्पष्ट मानना है कि उर्दू के शब्दों को देवनागरी लिपि में लिखने मात्र से कोई ग़ज़ल हिन्दी ग़ज़ल नहीं हो जाती। उसके लिए आवश्यक है भारतीय भाषाओं एवं बोलियों को आत्मसात करना और उनका प्रयोग अपनी अभिव्यक्ति में करना। यही भाषिक विशेषता जहीर कुरेशी को हिन्दी ग़ज़ल परम्परा का महत्त्वपूर्ण ग़ज़लकार बनाती है।

शब्द प्रयोग –

कविता के भाव शब्द रथ पर बैठकर अपनी यात्रा तय करते हैं। "शब्दार्थौ संहितौं काव्य" से भी यही सिद्ध होता है। हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्द उत्पत्ति के आधार पर चार प्रकार के माने जाते हैं –

1. तत्सम
2. तद्भव
3. देशज और
4. विदेशी

जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में इन सभी प्रकार के शब्दों का सुंदर एवं सटीक प्रयोग देखने को मिलता है।

तत्सम शब्दों का प्रयोग –

तत्सम वे शब्द होते हैं जो संस्कृत भाषा से सीधे ही हिन्दी भाषा में प्रयुक्त किये जाते हैं। जहीर कुरेशी के ग़ज़ल संग्रहों में प्रयुक्त कतिपय तत्सम शब्दों का प्रयोग द्रष्ट्रव्य है – विष–वमन, भ्रूण–हत्या, श्वेत, अंगरक्षक, धवल, उज्ज्वल, सिक्ताकण, आत्म–विश्लेषण (एक टुकड़ा धूप), वर्तिका, प्रार्थना, अंग–प्रत्यंग, शाश्वत, शून्य, ब्रह्मांड, पिष्ट–पेषण, सचिव, कला–परिषद्, शस्त्र–विक्रेता, नवयुवक (चाँदनी का दुःख), क्षमता, सम्मान, मुक्तहस्त, विहंग, स्थिर–प्रज्ञ, कपोत, मृग–मरीचिका, विशेषज्ञ, संतुलित (समंदर ब्याहने आया नही है), गणिका, चयन, चीर–हरण, निषिद्धि, विवाद, शिखर, शिल्पी, परिधान, अनुशासन (भीड़ में सबसे अलग) पारदर्शी, निराधार, सद्भावना, मृग–छोना, उर्वर, वायुयान, अभिसार, (पेड़ तनकर भी नहीं टूटा) अनवरत, वंचित, कूप–मंडूक, प्राण–दायक, क्रम, गौर–वर्ण, क्षितिज, शिराओं, (बोलता है बीज भी), अश्रु, रत्न, प्रतीक्षा, शीर्ष, धरित्री, समर्पण, परमाणु, षड़यंत्र, सोन–मछली, प्रतिबंध, विधि–विधान, पारदर्शी, ब्रह्मचर्य, (निकला न दिग्विजय को सिकंदर), पवित्र, सुगंध, दंत–कथा, विमान, आहुतियाँ, स्वप्न, छाया–चित्रों, वधू–स्वयंवर, हिम–शिखर, मधुकरी, निकर्ष, हिमनयन (रास्तों से रास्ते निकले)

तद्भव शब्दों का प्रयोग –

तद्भव वे शब्द हैं, जो तत्सम शब्दों से किंचित रूपान्तर से निर्मित हुए हैं। भाव की सहजता, मधुरता एवं सरलता में तद्भव शब्द सहायक होते हैं। जहीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़लों में तद्भव शब्दों का खुलकर प्रयोग किया यथा – काँटे, बंदर, रात, कपड़ा, हास, आँसू , बाती, समंदर, आग, राख, चाँद (एक टुकड़ा धूप), भीतर, हाथ, नंगा, कीचड़, बूढ़ा, शक्कर, तीन, सूरज, अपने, बरस (चाँदनी का दुःख), दाँत, जन्म, सच, पहला, आखर, किशन, करम (भीड़ में सबसे अलग), वान, कान, सुभाव, ब्याह, पात, मीठा, धाम, मुट्ठी, सोना, साँप (समंदर ब्याहने आया नहीं है), होंठ, सौ, मंतर, नींद, रुत, (पेड़ तनकर भी

टूटा नहीं), पिता, देहरी, फूल, मोल, पीहर, पचीसों, आम, नीम, बरगद, बरस, सच्चाई, बदलिया, हथेली (बोलता है बीज भी), राजधानी, इक्कीसवीं, छतरी, काँटे, आखर, नाव, गठरी, (निकला न दिग्विजय को सिकंदर), आग, चादर, पछताना, सुभाव, ताप, अमरित, धरती, दीपक, सुनार (रास्तों से रास्ते निकले)

देशज शब्दों का प्रयोग –

देशज वे शब्द होते हैं जिनकी उत्पत्ति देशी भाषा अर्थात् लोक भाषा बोली में हुई है और हिन्दी में उनका प्रयोग किया जाता है। जहीर कुरेशी ने स्वाभाविक रुप से देशज शब्दों का प्रयोग अपनी ग़ज़लों में किया है। वस्तुतः ये हिन्दी भाषा के सौंदर्य में वृद्धि करते हैं, इनकी उत्पत्ति अज्ञात होने पर भी इनका प्रयोग धड़ल्ले से किया जाता है। जैसे डुगडुगी, खरोंच, भंड़ास, झुग्गी, झगड़ा, (एक टुकड़ा धूप), चूल्हा, झटका, खेला, ठोस, घोलना, टटोलना, डोलना (चाँदनी का दुःख), खंगालना, छप्पर, भूख, सिक्का, गुस्सा, (समंदर ब्याहने आया नहीं), हुड़दंग, चुभना, थिरकना, किलकारी, चुटकला, ठहाका, हथौड़ा, झोंपड़ी, तंबू (भीड़ में सबसे अलग), छोर, फूँक, उलझन, खाँसी, बासी, खरखराते, धड़ाधड़, मकड़ी, लाठी, भट्टी, (पेड़ तनकर भी नहीं टूटा) सीढ़ियाँ, कुएँ, बरतन, कुठार, कोख, (बोलता है बीज भी) खारा, पेड़, गाँव, गुड़ाई, भोंथरी, खूँटा, पोथी (निकला न दिगविजय को सिकंदर) बस्ती, चिड़िया, बहेलिया, बोझ, चाकरी, छप्पर (रास्तों से रास्ते निकले)

विदेशी भाषाओं का शब्द प्रयोग –

हिन्दी भाषा के शब्द भण्डार को समृद्ध करने में जहाँ उसकी मातृभाषा संस्कृत और उसकी निकली बोलियों का बड़ा महत्त्व है वहीं, अन्य विदेशी भाषाओं का भी बड़ा योगदान है। एक लम्बे समय से भारतीय लोगों का संपर्क मुगलों, तत्पश्चात् अंग्रेजों, डचों, पुर्तगालियों एवं फ्रांसीसियों से रहा है। वर्तमान समय में तो बाज़ारवाद के प्रभाव और ग्लोबलाइजेशन के परिणाम स्वरुप सारा विश्व एक–दूसरे के सम्पर्क में है। ऐसे में भाषाओं के तटबंध भी टूटे हैं। हिन्दी भाषा की सर्वग्राह्य प्रवृत्ति के परिणाम स्वरुप आज सभी भाषाओं के शब्द प्रयोग में लिए जाते हैं। ग़ज़ल तो मूल रुप से अरबी–फारसी

की विधा है। सुदीर्घकाल तक अरबी–फारसी और हिन्दी के संयोग से जन्मी उर्दू हमारे शासन की भाषा रही है। इसलिए अरबी–फारसी के कई शब्द यहाँ के जनमानस में रच–बस गये हैं। अंग्रेजी भाषा का भी यही हाल है। इसलिए इन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग आम बोलचाल में तो खुलकर होता ही है लेखन में भी कई प्रचलित शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक रुप से होता है।

अरबी–फारसी के शब्द –

ईमान, बेरहम, गिरेबां, परेशान, सफ़र, कायर, खुशफहमी, तमाम, खुशबु, (एक टुकड़ा धूप), सियासत, रोशनी, अमन, करिश्मा, आसमान, रहमान, खातिर, नफरत, फुर्सत (चाँदनी का दुःख), कारोबार, दिमाग, मुताबिक, अखबार, दहशत, बस्ती, लहूलुहान (समंदर ब्याहने आया नहीं है), फसाद, जुगनू, अजूबा, रिश्ता, जरुरत, जख्म, बदनाम, एकमुश्त (भीड़ में सबसे अलग), तहखाना, सेलानी, बयान, जुबान, कसम, मुकदमा, अहसान (पेड़ तनकर भी नहीं टूटा), मजा, नशा, जोखिम, कीमत, बियांबान, हिम्मत, तकदीर, शुमार, शिकार, जमीन, जमींदार, इमारत, शोख, रुमानी, खबर, तहखाना, दरबान (बोलता है बीज भी), दुआ, मेहमान, लड़ाके, सियासत, राहगीर, आदमी, कलाई, आवारगी, मुहब्बत, अजीब, गुज़र, गलत–बयानी, बे–जुबानी, जिंदगी, मुकाबला, बुलंद, कहर, सफेदपोश, खैरियत, हथियार, (निकला न दिग्विजय को सिकंदर), अजनबी, दुश्मनी, गंदगी, आम, खास, औरत, फरिश्ते, हाशिए, मुलाकात, (रास्तों से रास्ते निकले) आदि।

अंग्रेजी एवं पाश्चात्य भाषाओं के शब्द –

मेक–अप, फुटपाथ, डिग्गियों, गिल्टी–कॉशंस, कवर, रेपर, बैनर, पिस्तौल, लिफ्ट, फ्रिज, कैमरे, प्लेटफार्म, पैकिट, म्यूजियम, पिन–कुशिन, ऑलपिन (एक टुकड़ा धूप), एटमी, रेप, रेडियो, गैलरी, क्लब, कोर्ट, कालगर्ल, कार, कलेण्डर, एक्स–रे, रिपोर्ट, फैशन, फाइल, (चाँदनी का दुःख), फीड, कम्प्यूटर, ड्यूटी, बिजनेस, रोल, कार, एटम, इंगलिश (समंदर ब्याहने आया नहीं है), सेटेलाइट, रिफिल, फैंस, मिशन, बोनसासई (भीड़ में सबसे अलग है), ऑटोग्राफ, मिसाइल, निल, ए.के. फोर्टी सेवन, हेड, टेल, फाइव–स्टार,

न्यूज–चैनल (पेड़ तनकर भी नहीं टूटा), मशीन, रेस, फिक्स, वोट, मिसाइल, केनवास, बम, होम (बोलता है बीज भी), इंटरनेट, डीजल, ए.सी.रुम, क्लिक, मैराथन, मोबाइल, लिव–इन, बोनसाई रिदिम, पेड, न्यूज, लॉयलिस्ट, वैंटिलेटर, फोटो–सेशन, थर्ड डिग्री, बार, एयरकार, साईबर, सर्जरी, लाबिस्ट (निकला न दिग्विजय से सिकंदर), टॉइम, मार्केटिंग, स्विच, मॉल, रोबोट, केन्वास, मेल, बेलून, अल्बम, कप–प्लेट, फोन, नेट, पार्क, रुम, रिकार्ड, गे, माफिया, कॉलेज (रास्तों से रास्ते निकलें)

स्पष्ट है कि जहीर कुरेशी की कलात्मक प्रतिभा उनके शब्द प्रयोग से प्रमाणित होती है। उनके शब्द–भण्डार में प्रायः हिन्दी में प्रयुक्त होने वाली सभी भाषाओं के शब्द विद्यमान हैं। उनका शब्द सामर्थ्य गज़ब का है।

प्रतीक विधान –

प्रतीक शब्द का सामान्य अर्थ है निशान, चिह्न अथवा संकेत। प्रतीक अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। प्रतीक प्रयायेग द्वारा गहन–गंभीर भाव, किंवदंती या लोक कथा की अभिव्यक्ति भी कम शब्दों में हो सकती है। डॉ॰ हरदयाल के अनुसार "प्रतीक भाषा का ऐसा क्रिया व्यवहार है जो शब्द की लक्षणा और व्यंजना शक्तियों पर आधारित होता है, इसलिए उसमें अर्थ की अनंत संभावनाएँ होती हैं।"[116] जहीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़लों में अधिकांशतः प्राकृतिक भारतीय परिवेश से संबद्ध पौराणिक, ऐतिहासिक प्रथा जन–जीवन से संबंधित प्रतीकों का प्रयोग किया है। व्यक्ति के मानसिक द्वंद ने लिये 'अर्जुन' के प्रतीक का प्रयोग –

"हमारे द्वैत का अर्जुन समझ न पाया कभी
किए हैं द्वंद ने अक्सर विवेक पर हमले।"[117]

बाज़ारवाद के युग में अब विश्व को विजय करने की कामना किसी भी व्यक्ति की नहीं होती –

"जब से चलन में आई है बाज़ार पर विजय
निकला न दिग्विजय को सिकंदर महान भी।"[118]

उपयोगवादी संस्कृति को उजागर करता यह शेर –

"कृष्ण को चाहिए गोपियाँ
जो रचाती रहे रास को।"[119]

मानवीय जीवन की परावस्था और मृत्यु की सच्चाई को व्यक्त करता यह शेर –

"हुए वृक्षों के वे ही पात पीले
जो थे पतझड़ की दिशा में।"[120]

बिम्ब विधान –

अंग्रेजी भाषा के 'इमेज' शब्द का हिन्दी पर्याय 'बिंब' कहलाता है बिंब साहित्य की प्रत्येक विधा में विद्यमान रहता है। जहीर कुरेशी ने भी अपनी ग़ज़लों को आकर्षक और कलात्मक बनाने के लिए बिंबों का भरपूर प्रयोग किया है। किसी भाव, विचार, वस्तु, घटना आदि का इन्द्रिय संबंध काल्पनिक शब्द बद्ध संमूर्तन काव्य–बिम्ब कहलाता है। जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, प्राकृतिक, ग्रामीण परिवेश, राजनीतिक जीवन से बिंब लिये गए हैं।

प्राकृतिक बिंब –

"मेरे आँगन में खड़ा है पेड़ हर सिंगार का
जब भी छेड़ा है उसे तो खिलखिलाया है बहुत।"[121]

"इस तरह आधार की कीमत समझ आई उसे
पेड़ कटते ही बयां का घौंसला जाता रहा।"[122]

सामाजिक बिंब –

"नई सदी में लगातार कर रहे हैं लोग
जो काम का है, उसे प्यार कर रहे हैं लोग।"[123]

"कूप–मंडूक उनको ही कहते हैं लोग
वो जो घर से निकलना ही नहीं चाहते।"[124]

आर्थिक बिंब –

"गरीबी से बहुत लम्बी लड़ाई
लड़ेंगें निर्धनों का साथ लेकर।"[125]
"गिरे शेयर तो केवल एक दिन में
जो पर्वत थे वो कंकर हो गए हैं।"[126]

व्यक्तिगत बिंब –

"समझिए तब से हमारा भी गाँव छूट गया
वो जब से बस गए भारत की राजधानी में।"[127]

राजनीतिक बिंब –

"एक दिन के भोजन और तीन सौ दिहाड़ी पर
रैलियाँ बुलाती हैं, बार–बार लोगों को।"[128]

गत्यात्मक बिंब –

"महानगर में है प्रतिदिन ही कोई मैराथन
असंख्य लोग सड़क पर दिखाई देते हैं।"[129]

मिथक –

अंग्रेजी शब्द 'MYTH' मिश्र का पर्यायवाची 'मिथक' है। 'मिथ' यूनानी शब्द 'MYTOS' (माईथेस) से बना है जिसका अर्थ होता है – मुँह से निकला हुआ। कालांतर में इसका संबंध कथा से जोड़ दिया गया क्योंकि पहले कथाएँ भी मौखिक होती थीं। 'मिथक' की रचना, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में श्रेष्ठ मूल्यों की

प्रस्थापना के लिए होती हैं। धर्म को महत्त्व देते हुए धार्मिक मान्यताएँ, व्यवस्थाएँ, नियम, रीति–परंपरा आदि ही मिथक के आधार बने।इस प्रकार के मिथक धर्म और साहित्य में सेतु का कार्य करते हैं। जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में भी पौराणिक ग्रंथों एवं कथाओं के पात्रों को आधार बनाकर कई मिथकों का प्रयोग हुआ है।

"मायावी रावण की बाहों में आकर
लाँघ गई सीता भी 'लछमन' की सीमा।"[130]

"वे खुद ही नग्न होती जा रही है
बदन पर 'द्रोपदी' के चीर कम हैं।"[131]

"वो मेरी उर्वशी है उसकी काया तो नहीं गौरी
सुरुपा संगिनी की देह मैंने साँवली पाई।"[132]

नीति मिथक –

"हमारे द्वेत का 'अर्जुन' समझ न पाया कभी
किए हैं द्वंद्व ने अक्सर विवेक पर हमले।"[133]

"जब तक वो घर का भेदी मिला था न शत्रु से
उस वक्त तक ही सोने की लंका बनी रही।"[134]

"जो 'बरबस' लछमन रेखा के पार गया
वो अपने ही अनुशासन से हार गया।"[135]

"समुद्र मथ के मिला सार लेने लगते हैं
विचार शेर का आकर लेने लगते हैं।"[136]

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ –

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ (कहावतें) अभिव्यक्ति का सशक्त एवं सुगम माध्यम है। जनमानस द्वारा निर्मित एवं लोक में प्रचलित मुहावरों एवं

लोकोक्तियों द्वारा जहाँ एक ओर भाषीय मितव्ययता बढ़ती है, वहीं दूसरी भावों के 'गागर' में 'सागर' जितना अर्थ–विस्तार हो जाता है। इनके प्रयोग से भावों में सहजता, सरलता, सुगम अर्थवत्ता आती है। जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में भी लोक प्रचलित कई मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सफल एवं सार्थक प्रयोग हुआ है।

"जिंदगी से इस कदर जूझे कि पत्थर हो गये।"
"दोस्त, रिश्ते, फूल सब काँटों के बिस्तर हो गये।"
"हर कदम पर हाथ मलता आदमी।"
"रमता जोगी था बहता पानी था
किन्तु दोनों ही ठहर रहे थे वहाँ।"
"छाछ भी फूँक–फूँक पीता है
आदमीं दूध का जला होकर।"

"दूध का दूध करे पानी का पानी कर दे
न्यायाधीशों में भला कौन है हंसों से बड़ा।"

"अब लोग अपनी बात के पक्के नहीं रहे।"

"मेरी गरदन पे न लद पाओगे कोल्हू बनकर।"

"आग में जल गया रस्सियों का बदन
फिर भी बल रस्सियों में बचा रह गया।"

"कूप मंडूकों को घर की दहरी अच्छी लगी
गाँव से चलकर शहर तक जाता।"

"नित नई अफवाह का चूल्हा गरम होने लगा।"

“मुहावरों में जो पलता है आस्तीनों में
पिला के दूध, उसे घर में पालना है कठिन।”

“धरती को कालीन समझकर फैलाया
आसमान सिर पर छतरी सा तान लिया।”
“उन्हीं की मेहनतों से फूलता–फलता है काला धन
अमीरों को कमाई करके खुद कंगाल देते हैं।”

“कुछ बोलने लगी है इधर बेजुबान भी
होने लगे खड़े किसी पापी के कान भी।”

“‘वेंटिलेटर’ पर किसी की सांस चलती है
जिंदगी यूँ भी मौत से आगे निकलती है।”

“जमी है बर्फ की चट्टान मन में
हमारे दुःख पिघलना भूल बैठे।”

“पैरों का चादर से बाहर होना निश्चित है।”

“विकास जिंदा शहर को निगल भी जाता है।”

“घन गड़ा है जो पाताल में”

“शहर में आते हैं, लेकिन वो घर नहीं आते
स्वयं के दोष किसी को नज़र नहीं आते।”

“पेट भरना है ऐसी मजबूरी
चाकरी कर रहे हैं अजगर तक।”

"गढ़ेगा भैंस का 'खूँटा' यही विचार के लोग।"

"एक कहावत इस युग में भी अच्छी लगती है
ऊँची थी दुकान, मगर फीका पकवान हुआ।"

व्यंग्यात्मकता –

साहित्य में व्यंग्य का प्रयोग, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व अन्य क्षेत्रों में व्यापक विसंगतियों विद्रुपताओं एवं विडम्बनाओं का उजागर करने के लिए किया जाता है। साहित्यकार का उद्देश्य केवल लोक–मंगल व लोक–रंजन ही नहीं होता, कभी–कभी वह लोक परिमार्जन के लिए भी अपनी लेखनी चलाता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आई विसंगतियों का पर्दाफाश करने के लिए वह व्यंग्य का सहारा लेता है। जहीर कुरेशी ने भी समसामयिक जीवन की कड़वी सच्चाईयों को उजागर करने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया है।

क्षीण मानसिकता वाले लोगों के लिए वे लिखते हैं –

"कूप मंडूकों को घर की दहरी अच्छी लगी
गाँव से चलकर शहर तक जाता।"[137]

चापलूस व्यक्ति के लिए वे लिखते हैं –

"इसीलिए तो कतारें हैं चापलूसों की
खरीदते हैं खुशामद खरीदने वाले।"[138]

व्यक्ति की उपभोक्तावादी मानसिकता को उजागर करते हुए वे लिखते हैं –

"पैरों का चादर से बाहर होना निश्चित है
पैरों को इतना ज्या फैलाते हैं कुछ लोग।"[139]

माँ–बाप अपने फूल–से बच्चों पर अपने सपनों का बोझ लादते हैं। जहीर कुरेशी इस मानसिकता को इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

"लादकर माँ–बाप के सपनों का बोझ
पाठशाला चल पड़े बच्चे यहाँ।"[140]

शिक्षा के निजीकरण पर व्यंग्य करते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं –

"हमारे दौर की शिक्षा 'निजी' हुई पहले
अब आ गए हैं प्रमुख पद खरीदने वाले।"[141]

समाज की वर्ण–व्यवस्था पर तेज करते हुए वे लिखते हैं –

"वो शूद्र है सवर्ण में वो है अमुक–अमुक
दोनों के रक्त में कोई अंतर न हो सका।"[142]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में व्यंग्य की क्षमता स्वाभाविक रुप से दिखलाई देती है। वे अपने समय के छल–छदमों को बखूबी पहचानते हैं और इनसे उत्पन्न समस्याओं को भी।यही कारण है कि उनके व्यंग्य की धार बड़ी तेज है। वे तथाकथित सभ्य लोगों की चालाकियों को अच्छी तरह समझते हैं। वे व्यंग्य के माध्यम से यथार्थ को व्यक्त कर समाज को जागृत करना चाहते हैं।

निष्कर्ष रुप में हम कह सकते हैं कि जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में भाव–पक्ष के साथ–साथशिल्प पक्ष का भी उचित समन्वयदृष्टिगत होता है। ग़ज़ल के छंद–शास्त्र का पूर्ण पालन करते हुए उनकी ग़ज़लों में शेर, मतला, काफिया, रदीफ और बहर का पूर्ण ध्यान रखा गया है। भाषा के स्तर पर जहीर ठेठ हिन्दुस्तानी हैं। तत्सम, तद्भव, देशज शब्दों के साथही विदेशी शब्दों का प्रयोग उनकी भाषायी समृद्धता की ओर इंगित करता है। नये शब्द

गढ़ना उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। जहीर कुरेशी का स्वाध्याय परिष्कृत एवं परिमार्जित है। वे तथ्यों को बड़े सलीके से प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं। अपने कथ्य में प्रभावोत्पादक क्षमता उत्पन्न करने के लिए वे पारंपरिक प्रतीकों, बिम्बों के साथ–साथ नये प्रतीक और बिंब भी सृजित करते हैं। भारतीय इतिहास परंपरा, संस्कृति, साहित्य, रीति–रिवाज़, तीज–त्योहारों की उन्हें गहरी जानकारी है। इस जानकारी का प्रयोग वे अपने शेरों में भी करते हैं। प्रसंगानुकूल भाषा प्रयोग करना जहीर कुरेशी की विशेषता है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग कर वे उसे सशक्त मारक एवं अर्थवान बनाते हैं।

***

: संदर्भ सूची :

01. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा और विकास, डॉ॰ अनिरूद्ध सिन्हा पृ॰स॰ 1
02. 'साये में धूप', दुष्यंत कुमार, पृ॰स॰ 13
03. वही पृ॰स॰ 57
04. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा और विकास, डॉ॰ अनिरूद्ध सिन्हा पृ॰स॰
05. 'साये में धूप', दुष्यंत कुमार, पृ॰स॰ 13
06. दुष्यंत कुमार : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ॰ गिरीराज त्रिवेदी, पृ॰स॰124
07. नया ज्ञानोदय, ग़ज़ल महाविशेषांक, जनवरी, 2013 पृ॰सं॰ 139
08. वही पृ॰स॰ 139
09. 'नीरज की गीतिकाएँ', गोपालदास 'नीरज', भूमिका से
10. 'नीरज की पाती', गोपालदास 'नीरज', पृ॰स॰ 125
11. हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, सं. सरदार मुजावर, पृ॰स॰63
12. हिन्दी ग़ज़ल का विवेचनात्मक अनुशीलन डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष', पृ॰स॰157
13. नया जमाना नई ग़ज़लें सं. शेरजंग गर्ग, पृ॰सं॰ 141
14. जो नितांत मेरी है, बालस्वरूप 'राही', पृ॰स॰30
15. हिन्दी के लोकप्रिय ग़ज़लकार, सं. नीरज, अशोक अंजुम, पृ॰सं॰ 68
16. नया ज्ञानोदय, ग़ज़ल महाविशेषांक, पृ॰स॰ 154
17. नया जमाना : नई गज़लें, सं. शेरजंग गर्ग , पृ॰सं॰ 191
18. लहू के चंद कतरे, रामावतार त्यागी, पृ॰सं॰ 11
19. हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰स॰ 19
20. हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰स॰ 92
21. हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰स॰ 65
22. वही, पृ॰स॰ 66
23. हिन्दी ग़ज़ल का विवेचनात्मक अनुशीलन, डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष',पृ॰स॰ 58
24. हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰स॰ 70

25. कचनार की टहनी, चंद्रसेन विराट,पृ॰स॰ 121
26. पेड़ नहीं तो साया होता, पुरुषोत्तम प्रतीक, पृ॰स॰ 32
27. भवानी शंकर की हिन्दी ग़ज़लें, भवानी शंकर, पृ॰स॰ 21
28. हिन्दी ग़ज़ल शतक में, डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ॰सं॰ 65
29. नया जमाना : नई ग़ज़ल डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ॰सं॰ 272
30. ग़ज़ल सप्तक,सं.गोपाल कृष्ण कौल, पृ॰सं॰ 90
31. कविता कोश, नेट से
32. हिन्दी ग़ज़ल शतक तीसरा सं., डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ॰सं॰ 09
33. हिन्दी ग़ज़ल शतक तीसरा सं., डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ॰सं॰ 19
34. वही पृ॰स॰ 19
35. नीम की पत्तियाँ, राम कुमार 'कृषक', पृ॰स॰ 20
36. हिन्दी ग़ज़ल शतक, सं., डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ॰सं॰ 89
37. धूप के हस्ताक्षर, ज्ञान प्रकाश विवेक, प्राक्कथन से
38. गुफ्तगुँ अवाम से है, ज्ञान प्रकाश विवेक पृ॰स॰ 25
39. सन्नटे में गूँज, डॉ॰ गिरिराज शरण अग्रवाल,पृ॰स॰ 35
40. नवीनतम हिन्दी ग़ज़लें सं. डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना, पृ॰स॰ 97
41. हिन्दी ग़ज़ल का विवेचनात्मक अनुशीलन,डॉ॰ शैलेश, पृ॰स॰ 210
42. हिन्दी ग़ज़ल शतक दूसरा, सं., डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ॰सं॰ 29
43. हिन्दी ग़ज़ल का उद्भव एवं विकास, डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना,पृ॰स॰ 251
44. वही पृ॰स॰ 304
45. वही पृ॰स॰ 307
46. वही पृ॰स॰ 303
47. हिन्दी ग़ज़ल शतक दूसरा सं., डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ॰सं॰ 22
48. हिन्दी ग़ज़ल का उद्भव एवं विकास, डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना,पृ॰स॰ 313
49. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा और विकास, डॉ॰ अनिरूद्ध सिन्हा, पृ॰स॰110
50. हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰स॰ 220
51. हिन्दी ग़ज़ल का उद्भव एवं विकास, डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना,पृ॰स॰ 308
52. हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰स॰ 29

53. वही पृ॰स॰ 118
54. हिन्दी के लोकप्रिय ग़ज़लकार, सं. नीरज, अशोक अंजुम, पृ॰सं॰ 102
55. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परंपरा और विकास, डॉ॰ अनिरूद्ध सिन्हा, पृ॰स॰133
56. हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰सं॰ 107
57. जान–ए–ग़ज़ल, सं., नरेश शांडिल्य, पृ॰स॰ 150
58. हिन्दी ग़ज़ल शतक तीसरा सं., डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ॰स॰ 12
59. ग़ज़ल दुष्यन्त के बाद, सं. दीक्षित दनकौरी, पृ॰स॰ 286
60. नये दौर की ग़ज़ल सं., अशोक अंजुम, पृ॰सं॰ 123
61. हिन्दी ग़ज़ल : जलता हुआ सफर, डॉ॰ हनुमंत नायडू ,पृ॰स॰ 54
62. गीतों के रश्मिद्वार, डॉ॰ शैलेष पृ॰स॰ 41
63. नये दौर की ग़ज़ल सं., अशोक अंजुम, पृ॰सं॰ 104
64. हिन्दी ग़ज़ल शतक तीसरा सं., डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ॰स॰ 66
65. वही पृ॰स॰ 30
66. वही पृ॰स॰ 31
67. नये दौर की ग़ज़ल सं., अशोक अंजुम, पृ॰सं॰ 25
68. बया पत्रिका अंक 25 सं. गौरी नाथ ,पृ॰स॰ 210
69. एक टुकड़ा धूप, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 16
70. चाँदनी का दुःख,जहीर कुरेशी, अपनी बात से
71. वही पृ॰स॰ 68 (द्वितीय संस्करण)
72. बोलता है बीज भी,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 44
73. जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें,डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 72
74. वही पृ॰स॰ 50
75. रास्तों से रास्ते निकले,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 112
76. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 17
77. जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें,डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 79
78. रास्तों से रास्ते निकले,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 27
79. जहीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 276
80. रास्तों से रास्ते निकले,जहीर कुरेशी, भूमिका से

81. वही, भूमिका से
82. एक टुकड़ा धूप, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 16
83. चाँदनी का दुःख, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 100
84. भीड़ में सबसे अलग,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 16
85. पेड़ तनकर भी नहीं टूटा,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰78
86. बोलता है बीज भी,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 52
87. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 45
88. रास्तों से रास्ते निकले,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 30
89. चाँदनी का दुःख, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 50
90. समंदर ब्याहने आया नहीं, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 69
91. रास्तों से रास्ते निकले,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 17
92. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 14
93. जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें,डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 98
94. रास्तों से रास्ते निकले,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 56
95. वही पृ॰स॰ 32
96. चाँदनी का दुःख, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 79
97. भीड़ में सबसे अलग,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 48
98. वही पृ॰स॰ 15
99. बोलता है बीज भी,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 16
100. वही पृ॰स॰ 35
101. रास्तों से रास्ते निकले, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 15
102. वही पृ॰स॰ 27
103. वही पृ॰स॰ 55
104. वही पृ॰स॰ 39
105. वही पृ॰स॰ 42
106. भाषा और संवेदना, डॉ॰ रामस्वरुप चतुर्वेदी, पृ॰स॰ 35
107. ग़ज़लकार जहीर कुरेशी की काव्य दृष्टि, डॉ॰ मधु खराटे पृ॰सं॰ 143
108. एक टुकड़ा धूप, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 30

109. चाँदनी का दुःख, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 110
110. एक टुकड़ा धूप, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 36
111. रास्तों से रास्ते निकले, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 33
112. एक टुकड़ा धूप, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 33
113. बोलता है बीज भी,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13
114. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 41
115. ग़ज़लकार जहीर कुरेशी की काव्य दृष्टि, डॉ॰ मधु खराटे पृ॰सं॰ 144
116. आधुनिक हिन्दी कपिता का अभिव्यंजनात्मक शिल्प, डॉ॰ हरदयाल,पृ॰सं॰ 203
117. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 71
118. वही पृ॰स॰ 112
119. रास्तों से रास्ते निकले, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 36
120. जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें,डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 84
121. वही पृ॰स॰ 71
122. बोलता है बीज भी,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13
123. वही पृ॰स॰ 101
124. वही पृ॰स॰ 18
125. वही पृ॰स॰ 23
126. वही पृ॰स॰ 69
127. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 20
128. वही पृ॰स॰ 41
129. वही पृ॰स॰ 28
130. बोलता है बीज भी,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 43
131. वही पृ॰स॰ 89
132. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 18
133. वही पृ॰स॰ 71
134. रास्तों से रास्ते निकले, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 33
135. बोलता है बीज भी,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 111
136. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 103
137. बोलता है बीज भी,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13

138. वही पृ॰स॰ 31

139. रास्तों से रास्ते निकले, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 16

140. वही पृ॰स॰ 114

141. बोलता है बीज भी,जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 31

142. रास्तों से रास्ते निकले, जहीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 107

***

v/;k; “k”Be

v/;k;&"k"B

tghj dqjs'kh dk lexz ewY;kadu

हिन्दी ग़ज़ल की सुदीर्घ परम्परा रही है। अमीर खुसरो से प्रारम्भ हुई हिन्दी ग़ज़ल की यात्रा जब ज़हीर कुरेशी तक आकर पहुँचती है, तब तक कई मूलभूत परिवर्तनों से गुजर कर चुकी होती है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल की अनुभूतियाँ इससे जुड़ी हैं। आधुनिक काल में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, स्वातंत्र्योत्तर युग, साठोत्तरी, समकालीन युग को पार कर आज उत्तर आधुनिक में भी हिन्दी ग़ज़ल का जादू बरकरार है। दुष्यंत कुमार से प्रारम्भ हुआ मैं युग हिंदी ग़ज़ल के लिए नूतन विधान लेकर आता है। कथ्य में विविधता, समसामधिंकता और शिल्पगत नवीनता का अहसास कराती इस हिन्दी युग में एक आन्दोलनात्मक स्वरूप ग्रहण करती है, जिसके समक्ष दो महत्त्वपूर्ण लक्ष्य दिखलाई देते हैं प्रथम तो उर्दूपन की नजाकत को छोड़कर जनवादी स्वर में अपने स्वरों को मिलाना अर्थात् आमजन अभिव्यक्ति बनना और दूसरा हिन्दी साहित्य की विधा के रूप में मान्यता प्राप्त करना।

दुष्यंत कुमार ने हिन्दी ग़ज़ल के पहले लक्ष्य को हासिल करने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल को आम जनता की आवाज़ बनाकर एक क्रांति का सूत्रपात किया जिसकी मशाल को आगे लेकर चलने वाले ग़ज़लकारों में 'चंद्रसेन विराट', 'गोपालदास 'नीरज', 'सूर्यभानु गुप्त', 'डॉ॰ कुँअर 'बैचैन', 'रामावतार त्यागी', 'बालस्वरूप 'राही', 'डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना','पुरूषोत्तम 'प्रतीक',अदम गोंडवी, ज्ञान प्रकाश विवेक और 'ज़हीर कुरेशी', का नाम उल्लेखनीय है।

उपर्युक्त सभी ग़ज़लकारों ने लगभग एक साथ ही लिखना प्रारम्भ किया था। ज़हीर कुरेशी का प्रथम ग़ज़ल संकलन 'लेखनी के स्वप्न भी सन् 1975 ई॰ में प्रकाशित हुआ था। तब प्रारम्भ हुआ ये सफर 'एक टुकड़ा धूप' (1979 ई॰)

'चाँदनी का दुःख' (1986 ई॰), 'समंदर ब्याहने आया नहीं है' (1992 ई॰), 'भीड़ में सबसे अलग' (2003 ई॰), 'पेड़ तनकर भी नहीं टूटा' (2010 ई॰), 'बोलता है बीज भी' (2014 ई॰) ,'निकला न दिग्विजय को सिकन्दर महान भी' (2016 ई॰) और 'रास्तों से रास्ते निकले' (2017 ई॰) तक अनवरत जारी है। विगत 45 वर्षों में जारी इस सफर में कुल 09 ग़ज़ल संग्रहों में 1000 से अधिक ग़ज़लें लिखने वाले जहीर कुरेशी इस विकास यात्रा के धीर–वीर–पथिक हैं। समकालीन कविता की अर्थों में और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं कि इन विगत 45 वर्षों में उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल को हिन्दी साहित्य की विधा के रूप मान्यता दिलवाई और हिन्दी ग़ज़ल की अवधारणा को मजबूती प्रदान की। ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों पर चर्चा करते हुए सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार विनय मिश्र लिखते हैं – "ज़हीर कुरेशी हिन्दी काव्य संसार के एक मात्र ऐसे ग़ज़लकार हैं जिनकी ग़ज़लें हजारों ग़ज़लों के बीच अपने आवताव के साथ आसानी से पहचानी जा सकती है। स्वयं की शैली का यह मार्ग तलाशना हर कवि का जागृत सपना होता है और ज़हीर कुरेशी इस सपने को सच करने में कामयाब हुए हैं।"[1]

ज़हीर कुरेशी के व्यक्तित्व में एक प्रकार जीवटता, जीवंतता, दृढ़ता, और एकाग्रता है। जिसके कारण उनकी लेखनी उत्तरोत्तर एक पथ पर अग्रसर होती रही। अपने लेखन परंपरा के प्रारंभिक दौर में नवगीतों से जुड़े जहीर कुरेशी ने नवगीत एवं प्रेम परक ग़ज़लें भी लिखीं लेकिन उनके सामने अपने समय का ऐसा सच था जिससे मुँह मोड़कर आगे नहीं बढ़ा जा सकता था। दुःख झेलता और सुखी जीवन के सपने बुनता आम आदमी उसके मनोमस्तिष्क को झकझोरता था। अंततः उन्होंने हिन्दी में ग़ज़ल लिखने का साहस किया और ग़ज़ल को सामाजिक संदर्भों से जोड़ इस सामाजिक लड़ाई में उसे हथियार बनाया। आम आदमी के दुःख–दर्दों को अपने लेखन में शामिल कर सत्ता और शासन के समक्ष उनकी आवाज़ को पहुँचाया। आज भी समाज में एक वर्ग ऐसा भी है जो बाहुबल एवं धनबल के आधार पर समाज का शोषण करता है। इस शक्तिशाली वर्ग का विरोध करने का साहस किसी में भी नहीं, इसी व्यथा एवं चिंता को वे इन शब्दों में व्यक्त करते हैं –

"सत्ताधीशों को 'खास' याद रहे
है करोड़ों 'आम' भूल गए।"[2]

सम्पन्न पूँजीपति वर्ग सत्ता और शासन के उच्च शिखर पर पहुँचकर आम आदमी को भूल गया। उनकी दृष्टि में सभी बौने हो गए उनको लगा कि प्रतिरोध के सभी स्वर प्रतिबन्धित हो गए। शोषण के नित–नये जुगाड़ तलाशे जाने लगे। शोषण और शोषित की खाई दिनोंदिन गहराने लगी। इसी कारण वर्तमान युग में नैतिक व सामाजिक मूल्यों का हास होता रहा। ऐसे समय में ज़हीर कुरेशी आम–आदमी की आवाज़ बनकर आते हैं और लिखते हैं –

"मैं आम–आदमी हूँ तुम्हारा ही आदमी
तुम काश देख पाते मेरे दिल को चीर के।"[3]

प्रख्यात कवि राजेश जोशी लिखते हैं – ज़हीर कुरेशी के शेर हमारे समय से कविता के रूबरू होने का सबूत है। उनकी ग़ज़ल में हिन्दी की अपनी बनक है।"[4] इसी प्रकार ग़ज़ल के सुप्रसिद्ध आलोचक और ग़ज़लकार नचिकेता भी लिखते हैं – "ज़हीर कुरेशी ग़ज़लों में मुख्य स्वर असहमति, असंतोष, आक्रोश और प्रतिरोध का स्वर है।"[5] इसी आलेख में वो आगे लिखते हैं –"ज़हीर दरअसल, वर्ग – विभाजित समाज व्यवस्था के अंतर्विरोधों अर्थिक विषमताओं, राजनीतिक विसंगतियों और विद्रूपताओं तथा सांस्कृतिक विडम्बनाओं का अपनी ग़ज़लों में तीव्र प्रतिरोध करते हैं। वह इन त्रासद समस्याओं से जूझने की जगह यथा स्थितिवाद की गिरफ्त में आकर इन समस्याओं को अपनी नियति मानकर निष्क्रिय और हाथ पर हाथ धरे बैठे मनुष्य की भी अपनी ग़ज़लों की खूब ख़बर लेते हैं।"[6] ज़हीर प्रतिरोध के स्वरों को बुलंद करने के साथ–साथ लोगों को सावचेत भी करते हैं। उनका मानना है कि अन्याय का डटकर विरोध किया जाना चाहिए। बिना लड़े हार मान लेना समझदारी नहीं कायता है। ऐसे लोगों को इंगिक करते हुए वे लिखते हैं –

"एक भी अन्याय का करते नहीं तनकर विरोध
खुद को कालीनों की शैली में बिछा लेते हैं लोग।"[7]

वर्तमान युग में नैतिक, सामाजिक मूल्यों का विघटन तीव्र गति से हो रहा है। यह विघटन हमारे घर–परिवार–समाज को अपने संक्रमण में लेता जा रहा है। भारतीय समाज में घर आत्मीयता–अपनत्व का केन्द्र रहे हैं। परिवार आपसी स्नेह और मातृत्व–भाव से सिक्त रहे हैं। समाज में पपरस्पर सहृदयता हमारी संस्कृति की पहचान रहे हैं। यही घर–परिवार आने वाली पीढ़ियों की सांस्कारिक पाठशाला थे जिनमें साथ रहते–रहते ये गुण पीढ़ियों को हस्तांतरित किये जाते थे। आधुनिक परिवेश के परिणामस्वरुप आज घर–परिवार टूट रहे हैं। दो पीढ़ियों के बीच वैचारिक मतभेद गहराते जा रहे हैं। परिवार के टूटने का सीधा–सीधा प्रभाव हमारे वृद्धों पर परिलक्षित हो रहा है। वृद्ध माता–पिता बच्चों के लिए बोझ साबित हो रहे हैं। ऐसे में माता–पिता के दिल पर क्या बीतती है। इससे भी ज़हीर कुरेशी अनभिज्ञ नहीं हैं। जहाँ कहीं भी वैचारिक अंधेरे की गुंजाईश नज़र आती है, ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लें वहाँ पहुँच जाती हैं और इस उम्मीद में भी उम्मीद की तलाश करने लगते हैं। ज़हीर कुरेशी स्वयं इस बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि "मेरी ग़ज़लों का मूल स्वर तो उम्मीद का ही है। मैं अपने शेरों के माध्यम से रोशनी भर में किवाड़ों के पीछे मौजूद उन अंधेरों की आँखों में झाँकना चाहता हूँ, जिनकी तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता। मैं मानवीयता के ताप को शिद्दत से महसूस करते हुए मनुष्य के चेहरे को बार–बार बाँचना चाहता हूँ।"[8] ज़हीर कुरेशी का यह 'बांचना' उनके शेरों से भी अभिव्यक्त होता है –

"हमारे बच्चे अगर पूछते नहीं हमको
हम इस तरह भी निःसंतान होते जाते हैं।"[9]

और –

"बोझ का पर्वत है बूढ़ा बाप बच्चों के लिए
झिड़कियाँ मिलती हैं उसको रोज आदर की जगह।"[10]

और –

"बिल्कुल अलग विचार थे दोनों पीढ़ियों के बीच
कुछ इसलिए भी घर में समस्या बनी रही।"[11]

वास्तव में घर–परिवार प्रेम–विश्वास का सेतु होते हैं। परिवार के सभी सदस्य मिल–जुलकर आत्मीयता से आनंद की अनुभूति करते हैं। परंतु आज यह सेतु टूट रहा है। समय के थपेड़ों ने हमारे घर परिवार की नींव को हिलाकर रख दिया है। परिणाम स्वरुप नित–नयी समस्याएँ सामने आ रही हैं। समाज में भी कई प्रकार की विद्रूपताएँ दृष्टिगोचर होती है। परमार्थ को भूल स्वार्थ–सिद्ध करने में लगे लोग रिश्ते नाते, मित्र–स्नेही सब खोते जा रहे हैं। पारस्परिक स्नेह, अपनत्व, निस्वार्थ भावना, सच्चाई, ईमानदारी, सहानुभूति जैसे आदर्श अब समाज से विलुप्त होते जा रहे हैं। हवाओं में ज़हर घोला जा रहा है। लोग मुखौटा लगाये घूम रहे हैं। समाज की सद्भावना को नष्ट करने की छद्म कोशिशें जारी हैं। इन सब घटनाओं को जहीर बड़ी बारीक नज़र से देखते हैं, इसीलिए इतनी सशक्त अभिव्यक्तिभी करते हैं –

"हम अपने ही लोगों की बस्ती में
संबंधों की तलाश लिए फिरते हैं।"[12]

हमारे घर–परिवार टूटनें के परिणाम स्वरुप नौकरी की तलाश में निकलने वाला युवा वर्ग नगर और महानगरों की ओर रुख करता है। महानगरों में जाकर इन युवाओं की बढ़ती भीड़ ने जहाँ एक ओर गगनचुंबी ईमारतें खड़ी कर दी दूसरी ओर असंख्य झोपड़पट्टियाँ भी पनपती चली गईं। एक ओर सुविकसित करती सड़कें, बड़े–बड़े मॉल, फाईव स्टार होटलें तो दूसरी ओर नारकीय जीवन। महानगरों में इन युवाओं ने अपनी अलग 'कल्चर' विकाति कर ली। जहीर कुरेशी बड़े गौर से इन स्थितियों को देखते हैं उनका आहत अन्तर्मन अभिव्यक्त हो उठता है और वे कहते हैं –

"ये महानगरीय जीवन का करिश्मा है
भूल बैठे हम सुखी परिवार की भाषा।"[13]
"हम बीस सालों में कितने बदल गए
अब तो हमारे बीच के रिश्ते बदल गए
फैशन भी क्या अजीब, कुछ सोचती नहीं
तन तो वही पुराना है, कपड़े बदल गए।"[14]

बढ़ते महानगरों में कई प्रकार की समस्याएँ है एक पनपी जिनके कोई समाधान थे ही नहीं। रोजगार की तलाश में आये लोगों ने बेरोजगारों की फौज में ही अभिवृद्धि की। उनमें से कुछ अपराध के दल–दल में उतर गए तो कुछ भिक्षावृत्ति में। वर्तमान समय में देखें तो 'अपराध' और भिक्षावृत्ति भी एक व्यवसाय का रूप ले चुकी है और इन व्यवसायों की भी अपनी प्रतिस्पर्धाएँ हैं और चुनौतियाँ भी। दर असल महानगरों में बढ़ती हुई आबादी और झोपड़पट्टियों में ये व्यवसाय खूब फलते–फूलते हैं। अपराध जगत में आकंठ वापस डूबने के बाद वापस लौटना सिर्फ स्वप्न में ही संभव है, इसीलिए ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"अपराध के जगत से है लौटना मुश्किल
सपने में ऐसे लोग सुधरते हैं बार–बार।" [15]

और –

"जो मधुकरी को निकले वो लालच से दूर थे
संचय की चाल चलते ही भिक्षा भटक गई।" [16]

तकनीकी के विकास के साथ–साथ शिक्षा में भी जब उत्तरोत्तर वृद्धि हुई तो समाज में स्त्रियों की दशा में भी परिवर्तन हुआ। भारतीय समाज में नारी हमेशा हाशिये पर ही रही है। परिवार और समाज में उनका स्थान मध्यकाल में नगण्य–सा ही रहा। शिक्षा के विकास के साथ–साथ जब समाज में स्त्रियों के प्रति पुरुष की मानसिकता बदली तो कई नई समस्याएँ सामने आ गयीं।

"वो गाँव में थी तो लज्जा था उसका आभूषण
शहर में बसते ही 'लाज' को लाज नहीं आई।" [17]

दहेज प्रथा, बाल विवाह, अनमोल विवाह, सती प्रथा, जैसी पुरानी समस्याओं के साथ–साथ कामकाजी औरत, फैशन, विज्ञापन से लेकर देह बेचने वाली औरत भी उनके स्त्री–विमर्श के दायरे हैं। नदी और समंदर उनके प्रिय प्रतीक हैं, जिसके माध्यम से उन्होंने खूब शेर कहे –

"पर्वत से जो चली थी समंदर को ब्याहने
जंगल के बीच में वही नदिया भटक गई।"[18]

"जैसे पहुँचे 'वधू' स्वयं'वर' तक
आ गई है नदी समंदर तक।"[19]

"नदी देह पे आकर बरम गए बादल
समुद्र यूँ भी उतरते हैं क्वाँरी नदियों में।"[20]

इक्कीसवीं सदी में आकर स्त्री–विमर्श की दिशा में भी बदलाव को अनुभव करते हैं और लिखते हैं –

"एक औरत साथ रहकर दे गई संतान सुख
हम न उसकी कोख का समुचित किराया दे सके।"[21]

वैश्वीकरण एवं बाज़ारवाद के इस युग में मानवीय मूल्यों पर बढ़ता संकट भी चिंता का कारण है। मनुष्य के बगैर मनुष्यता की कल्पना आधारहीन है। आज मनुष्य के जीवित रहने पर ही संकट खड़ा हो गया है। सभ्यता के विकास के साथ मानवीयता में भी वृद्धि होनी चाहिए थी लेकिन प्रायः देखने में आता है कि स्वार्थ–सिद्ध के इस दौर में अब मनुष्यता की परवाह कौन करता है। दिन–दहाड़े रेप, हत्या, डाका, राहजनी से आगे बढ़कर हम साईबर क्राईम की दुनिया में पहुँच गए हैं। जहाँ आदमी बिना मेहनत के ही लाखों रुपये हथिया लेता है –

"तरह–तरह के रोज दिखे 'नेट' पर हमले
नई सदी पर हुए आम साईबर हमले।"[22]

अब अपराधी को अपराध करने के लिए कहीं आने जाने की आवश्यकता नहीं है, घर बैठे किसी भी बैंक अकाउन्ट से पैसा उड़ाना अब इन अपराधियों के बाएँ हाथ का खेल हो गया है। महानगरों में बैठ कर ये लोग भोले–भाले लोगों की गाढ़े पसीने की कमाई को चुटकियों में उड़ा देते हैं –

"बिना मेहनत के कमा लेते हैं लाखों
जो 'जोखिम' के 'हुनर' तक आ गए।"[23]

वैश्वीकरण से पनपी बाज़ारवाद मानसिकता ने आज लोगों के सोच–विचार में बहुत अंतर ला दिया है। इस बाज़ारवादी विचारधारा ने अब मनुष्य और वस्तुओं में कोई भी अंतर करना छोड़ दिया। आज वस्तुओं के दाम अधिक और मनुष्य का मूल्य कम होता जा रहा है।मानवता तो बाज़ार में बिकने वाली चीज़ हो गई है। इस बाज़ार की पूरी निगाह स्त्रियों पर है। शहर–दर–शहर होने वाली सौंदर्य प्रतियोगिताएँ, गाने–बजाने और नाचे की प्रतिस्पर्धाएँ माडलिंग और विज्ञापन का आकर्षण नवयुवतियों पर इस प्रकार छाया हुआ है कि इसके लिए कोई भी कीमत चुकाने को तैयार है। यह नया आभासी संसार फ्लेश लाईटों की चकाचौंध से शुरु होता है और अकेलेपन, अधूरेपन, अजनबीपन, भय, संत्रास और घुटन पर जाकर खत्म होता है। साहित्य बाज़ार के इस छद्म खेल को उजागर करने की कोशिश करता है। लेकिन साहित्य पढ़ता कौन है ? जहीर कुरेशी ने भी अपनी ग़ज़ल के माध्यम से बाज़ारवादी मानसिकता को बेनकाब करने की पूरी कोशिश की है। ज़हीर कुरेशी लिखते हैं –

"किसी के पास कला है, किसी पे रुप का धन
जो जिसके पास 'बाज़ार' करते फिरते हैं।"[24]

आज बाज़ार की पहुँच हमारे घर तक हो गई है –

"नहीं बाज़ार जाने की जरुरत
स्वयं सभी घर तक बाज़ार पहुँचे।"[25]

घर से बाज़ार की कोई दूरी भी नहीं है और अब तो बाज़ार भी जाना जरुरी नहीं है। आज बाज़ार की शक्ति का मुकाबला करने की ताकत किसी के पास नहीं है। सभी देश एकजुट होकर इसके लिए उपारत हैं। इस दौर में कोई भी सिकंदर नहीं है। जो इस पपर विजय प्राप्त करें। जहीर कुरेशी लिखते हैं –

"जब से चलन में आई है बाज़ार पर विजय
निकला न दिग्विजय को सिकंदर महान भी।"[26]

राजनीति जहीर कुरेशी का प्रिय विषय रहा है। अपनी जनवादी विचार–धारा के चलते जहीर कुरेशी को भी हमेशा राजनीति और ताजनित समस्याओं से रुबरु होते रहे। उन्होंने खुली आँखों से राजनीतिक के दुश्चक्र देखे और इन दुश्चक्रों में पिसते आम–आदमियों को भी देखा। जनबल, धनबल, बाहुबल के साथ–साथ जाति, धर्म, सम्पदाय, भाषा क्षेत्र में बँटते 'वोटर' देखे। वर्तमान राजनीति में जब कोई सरकार पूर्ण बहुमत नहीं ला पाती तो गठबंधन की सरकारें जन–प्रतिनिधियों की खरीद–फरोख्त करती दिखती हैं, तब जहीर कुरेशी लिखते हैं –

"जब से गठबंधन की सरकारों का आया है रिवाज़
जो इधर थे, वो अचानक ही उधर होने लगे।"[27]

और पूरी राजनीतिक परिवेश पर व्यंग्य करता ये शेर भी द्रष्टव्य है –

"सियासत से ही निकली ये कथाएँ भी
बिकाऊ चीज है, अब आत्माएँ भी।"[28]

बाज़ारवाद के परिणाम स्वरूप राजनीति में भी बड़ा परिवर्तन दिखलाई दिया। बाज़ार ने अपनी पहुँच बढ़ाने के लिए हर जगह अपने 'ऐजेंट' लोबिस्ट पहुँचा दिये, जहाँ वे बाज़ारवाद की गिरफ़्त में हैं। अचानक ही राजनीति में धर्म, पंथ और धर्म गुरूओं का महत्त्व बढ़ने लगा है। –

"धर्म से पूँजी का गठबंधन हुआ
कुछ अधिक अनुदार जन–जीवन हुआ
झूठ की बिक्री बढ़ाने के लिए
दिन में सौ–सौ बार विज्ञापन हुआ।"[29]

वरिष्ठ ग़ज़लकार डॉ॰ गिरिराज शरण अग्रवाल ने ज़हीर कुरेशी ग़ज़लों को समग्र रूप में समीक्षा करते हुए लिखा है –"ज़हीर की शायरी में केवल, समाज की टूटन, महानगरीय जीवन की विद्रूपता भय और संत्रास की स्थिति, नारी शोषण और अत्याचार, नयी–सभ्यता और फैशन, आम आदमी की पीड़ा, राजनीतिक – पाखंड, मताधिकारियों की अविश्वसनीयता, निराशा, भय और शंका को ही अभिव्यक्ति नहीं मिलती, उसमें आशा की एक चिंगारी भी है जो व्यक्ति में उत्साह का संचार करके उसके संपूर्ण जीवन का रुख बदल सकती है।"[30]

स्पष्ट है कि ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में सिर्फ सामाजिक, राजनीतिक और अन्य विसंगतियों के चित्र ही नहीं मिलते वरन् उनकी ग़ज़लों में आश्वस्ति के स्वर भी विद्यमान जो मनुष्य को संघर्ष में भी जीने का हौंसला प्रदान करते हैं –

"अपनी निजी उमंग की धरती पे चल के देख
अवसाद की गुफाओं से बाहर निकल के देख
सदियों का अंधकार भी हो जाएगा विदा
अंधी सुरंग में किसी दीपक–सा जल के देख।"[31]

साहित्य की प्रत्येक विधा का अपना एक शिल्प होता है। शिल्प के लिए अलग–अलग भाषाओं में भिन्न–भिन्न शब्द प्रचलित हैं –जैसे अंग्रेजी में 'टेक्नीक' शिल्प द्वारा ही कवि किसी रचना को साकार रुप प्रदान करता है। और हिन्दी में 'शैली','रीति', रचना 'विधान' आदि। शिल्प द्वारा ही कवि किसी रचना को साकार रुप प्रदान करता है। शिल्प को परिभाषित करते हुए हम कह सकते हैं कि कवि द्वारा अपने भावों व विचारों को रुप प्रदान करने के लिए जो युक्ति अपनाई जाती है, उसे शिल्प कहते हैं। ज़हीर कुरेशी समकालीन हिन्दी ग़ज़ल के उल्लेखनीय हस्ताक्षर हैं, तो इसलिए उनका शिल्प विधान उन्हीं की तरह सुदृढ़ है उनका चिंतन बहुत गहरा है। इसलिए पाठक उन्हें पसन्द करते हैं। ज़हीर कुरेशी ने हिन्दी ग़ज़ल लिखने के लिए भी ग़ज़ल के मूल छंद शास्त्र को ही काम में लिया है। ग़ज़ल 'गागर में सागर' भरने की विधा है। ग़ज़ल की दो पंक्तियों में पूरी भावाभिव्यक्ति होती है। अरेबिक छंद काव्य का पालन करते

हुए हिन्दी में ग़ज़ल लिखना बढ़ी ही चुनौती पूर्ण कार्य था लेकिन ज़हीर कुरेशी ने इस चुनौती को स्वीकार किया और हिन्दी भाषा में ग़ज़ल के अरेबिक छंदशास्त्र के अनुरुप यथा –बहर वज़न अनिवार्य लघु और 'काफिया और रदीफ का पूर्ण पालन करते हुए ग़ज़लें लिखीं। ज़हीर कुरेशी का स्पष्ट मानना है कि "ग़ज़ल वर्णिक छंद है जिसकी व्याकरणीय शुद्धता जाँचने की कसौटी उसकी (अरेबिक) बहर है।" सोने को सोना सिद्ध होने के लिए कसौटी की जाँच परख से गुज़रना पड़ता है। उसी तरह हिन्दी ग़ज़ल भी अरेबिक बहरों का मानती है और अपनी परख के लिए 'बहर की छंदानुशाषी 'तख्तीअ' के लिए तैयार हैं।"[32]

इसलिए ज़हीर कुरेशी ने लगभग सभी बहरों में ग़ज़लें लिखी है। हिन्दी ग़ज़ल लिखते समय भी वो ग़ज़ल के अनिवार्य लघु के नियम का पालन करना नहीं भूलते। अपने नवें ग़ज़ल–संग्रह 'रास्तों से रास्ते निकले' में संकलित महेश अग्रवाल को दिए एक साक्षात्कार में ज़हीर कुरेशी कहते हैं कि "हिन्दी के नए ग़ज़लकारों से मेरा केवल यही कहना है कि हिन्दी मंचों के व्यामोह में न फँसे। हिन्दी ग़ज़ल को पूरे छंदानुशासन के साथ वर्तमान सदी के तथ्यों के सहित कहने का प्रयत्न करें हिन्दी को मुख्य धारा की कविता बनाने में उनका अपेक्षित योगदान है।" अपनी ग़ज़लों में अप्रस्तुत को प्रस्तुत करने के लिए ज़हीर कुरेशी ने प्रतीक एवं बिम्ब का भी सफल और सार्थक प्रयोग किया।

प्रतीक का सामान्य अर्थ है –निशान 'चिह्न' अथवा संकेत प्रतीक भावों को प्रकट करने का प्रमुख साधन है। ज़हीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़लों में अधिकांशतः प्रतीक भारतीय परिवेश से संबद्ध पौराणिक, ऐतिहासिक तथा जन–जीवन से लिए गये हैं –

"हमारे द्वेत का अर्जुन समझ न पाया कभी
किए हैं द्वंद ने अक्सर विवेक पर हमले।"[33]

और –

"जब से चलन में आई हैं बाज़ार पर विजय
निकला न दिग्विजय को सिंकदर महान भी।"[34]

और –

"कृष्ण को चाहिए गोपियाँ
जो रचाती रहे रास को।"[35]

और –

"हुए वृक्षों के वे ही पात–पीले
जो थे तैयार पतझर की दिशा में।"[36]

उपर्युक्त प्रयुक्त प्रतीकों में 'अर्जुन' के माध्यम से किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति की मानसिक स्थिति, 'सिकंदर' के प्रतीक से विश्व विजय करने वाला यौद्धा और कृष्ण गोपियों के माध्यम से वर्तमान युवक–युवतियों की दशा और 'पीले–पत्तों' के माध्यम से वृद्ध मनुष्यों के बारे में बताया गया है। ज़हीर कुरेशी ने प्रतीकों का बड़ा ही सार्थक प्रयोग किया है। ज़हीर कुरेशी की हिन्दी ग़ज़लों में बिम्ब विधान का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ है। अपने व्यक्तिगत अनुभवों को व्यक्त करने के लिए बिंबों का प्रयोग किया जाता है। किसी भाव, विचार, वस्तु, घटना आदि का इन्द्रिय संबंध काल्पनिक शब्द बद्ध संमूर्तन काव्य–बिम्ब कहलाता है। ज़हीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़लों में व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, प्राकृतिक, ग्रामीण परिवेश, राजनीतिक लगभग जीवन के प्रत्येक क्षैत्र से बिम्ब लिए गये हैं।

प्राकृतिक बिम्ब

"मेरे आँगन में खड़ा है पेड हर सिंगार का
जब भी छेड़ा है उसे तो खिलखिलाया है बहुत।"[37]

सामाजिक बिम्ब

"पिता के घर से पी–घर की दिशा में
चली नदियाँ समंदर की दिशा में।"[38]

प्राकृतिक बिम्ब

"इस तरह आधार की कीमत समझ आई उसे
पेड़ कहते ही बया का घोंसला जाता रहा।"[39]

सामाजिक बिम्ब

"कूप–मण्डूक उनको ही कहते है लोग
वो जो घर से निकलना नहीं चाहते।"[40]

आर्थिक बिम्ब

"गरीबी से लम्बी लड़ाई
लडेंगे निर्धनों को साथ लेकर।"[41]

आर्थिक बिम्ब

"गिरे 'शेयर' तो केवल एकदिन में
जो पर्वत थे वो कंकर हो गए है।"[42]

व्यक्तिगत बिम्ब

"समझिए तब से हमारा भी गाँव छूट गया
वो जब से बस गए भारत की राजधानी में।"[43]

गत्यात्मक बिम्ब

"महानगर में है प्रतिदिन ही कोई 'मेराथन'
असंख्य लोग सड़क पर दिखाई देते।"[44]

ज़हीर कुरेशी ग़ज़लों में पौराणिक ग्रंथों एवं कथाओं के पात्रों को आधार बना मिथकों का प्रयोग भी हुआ है। मिथक 'शब्द' का निर्माण 'मिथ' (MYTH) शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ होता है – मुँह से निकला हुआ। परन्तु कालान्तर में इनका संबंध कथा से जोड़ दिया गया क्योंकि कथाएँ भी मौखिक ही होती थीं। मिथक की रचना सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में श्रेष्ठ मूल्यों की प्रस्थापना के लिए होती है। धर्म को महत्त्व देते हुए धार्मिक मान्यताएँ, व्यवस्थाएँ, नियम रीति–परम्परा आदि ही मिथक के आधार पर बने। उस प्रकार मिथक धर्म एवं साहित्य के बीच सेतु की स्थापना करते हैं। स्त्री–विमर्श पर शेर लिखते हुए कई मिथक ज़हीर कुरेशी ने रचे –

"मायावी रावण की बातों में आकर
लाँघ गई सीता भी 'लछमन' की सीमा।"[45]

"वे खुद ही नग्न होती जा रही है
बदन पर 'द्रोपदी' के चीर कम है।"[46]

"वो मेरी उर्वशी है उसकी छाया तो नहीं गौरी
सुरुपा संगिनी की देह मैंने सांवली पाई।"[47]

नीतिगत मिथक

"हमारे द्वेत का 'अर्जुन' समझ न पाया कभी
किए हैं द्वंद्व ने अक्सर विवेक पर हमले।"[48]

"जो बरबस 'लछमन रेखा' के पार गया
वो अपने ही अनुशासन से हार गया।"[49]
"जब तक वो घर का भेदी मिला था न शत्रु से
उस वक्त तक ही सोने की लंका बनी रही।"[50]

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ अभिव्यक्ति का एक सशक्त एवं सुगम माध्यम है। जनमानस द्वारा निर्मित और लोक में प्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से 'गागर में सागर' भरने का गुण विद्यमान है। इनके प्रयोग से रचना में गत्यात्मकता आती है। जहीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़लों में मुहावरों एवं लोकोक्तियों की भरपूर प्रयोग किया।

"जिंदगी से इस कदर जूझे कि पत्थर हो गये।"[51]

"दोस्त रिश्ते फूल सब काँटों के बिस्तर हो गये।"[52]

"हर कदम पर आँख मलता आदमी।"[53]

"रमता जोगी था, बहता पानी था
किन्तु, दोनों ठहर रहे थे वहाँ।"[54]

"दूध का दूध करे, पानी का पानी कर दे
न्यायाधीशों में भला कौन है हंसों से बड़ा।"[55]

"उन्हीं के मेहनतों से फूलता–फलता है काला धन
अमीरों को कमाई करके खुद कंगाल देते हैं।"[56]

"एक कहावत इस युग में भी सच्ची लगती है
ऊँची थी दुकान, मगर फीका पकवान हुआ।"[57]

ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों की भाषा आम–बोलचाल की हिन्दी भाषा है कहीं–कहीं उसमें उर्दू शब्दों की अधिकता होती है तो कभी–कभी संस्कृतनिष्ठ तत्सम भाषा का प्रयोग भी वे करते हैं। लेकिन अधिकतर ग़ज़लों की भाषा आम–आदमी के बोल–चाल की हिन्दी भाषा है। उदाहरणार्थ –

उर्दू मिश्रित भाषा

"लग रहा है एक जिंदा लाश–सा
भीड़ में चुपचाप चलता आदमीं।"[58]

संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली

"लोग तन से तो धवल उज्ज्वल रहे
किन्तु अंतर से दिए का तल रहे
हाँ वही 'सिद्धार्थ' कहलाये गए
हंस जिनके तीर से घायल रहे।"[59]

और –

"जब तक कथित प्रकार की शुचिता बनी रही
मन में पवित्र रहने की दुविधा बनी रही।"[60]

आम हिन्दी भाषा

"धीरे–धीरे टूट रहे हैं खुशफहमी के किले तमाम
मीलों पीछे टूट गए हैं खुशियों के सिलसिले तमाम।"[61]

ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों की भाषा पर टिप्पणी करते हुए डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं – "उनकी भाषा खड़ी बोली का आदर्श रुप है। उनके इस देसी रुप की जितनी तारीफ की जाये कम है।"[62]

ज़हीर कुरेशी का स्पष्ट मानना है कि उर्दू के शब्दों को देवनागरी में लिखने मात्र से हिन्दी ग़ज़ल नहीं होती। उसके लिए आवश्यक है हिन्दी भाषा को आत्मसात करना और बिना हिन्दी मुहावरे को अपनाये हिन्दी में ग़ज़ल कहना मुश्किल है। शब्द–प्रयोग की दृष्टि से ज़हीर कुरेशी सम्पन्न रचनाकार हैं। उनका स्वाध्याय इतना अधिक विस्तृत है कि लगभग सभी बोली–भाषा के हिन्दी में प्रयुक्त शब्द उनके शब्दकोश में शामिल है। विष–वमन, अंग रंक्षक, सिक्ताकण, वर्तिका, अंग–प्रत्यंग पिस्ट–पेषण, मुक्त हस्त, विहग, स्थिर–प्रज्ञ, कपोत, मृग–मरीचिका, उर्वर, अभिसार, कूप–मंडूप, क्षितिज, धरित्री, हिम–शिखर, भुजंग, मधुकरी जैसे शुद्ध हिन्दी के तत्सम शब्दों का प्रयोग उनकी ग़ज़लों में देखने को मिलता है। ऐसा नहीं है कि ज़हीर कुरेशी को विदेशी शब्दों से कोई परहेज हो। युगानुरुप उनकी ग़ज़लों में विदेशी भाषाओं के शब्दों का भी भरपूर प्रयोग दिखलाई देता है। गिरेबान, खुशफहमी, गुम्बद, सियासत, रहमान, नफरत, फुरसत, मुताबिक, एकमुश्त, तहखाना, सैलानी, हिम्मत, तकदीर, शुमार, हाशिए, फरिश्ते, अजनबी, सफेदपोष (अरबी–फारसी), मेकअप, डिग्रियों, गिल्टी–फांशस, कवर, रेपर, मीडियम, कॉलगर्ल, कलेण्डर, एक्सरे, फीड, ब्युटी, कम्प्यूटर, बिजनेस, सेटेलाईट, रिफिल, मिशन, बोनसाई, ऑटोग्राफ, फाईव स्टार, न्यूज चैनल, इंटरनेट, वेन्टीलेटर, लिव–इन, मार्कटिंग, बेलून, स्विच, सैलिटस, जेडप्लस, लाबिस्ट, शूटर, माफिया, रिर्काड, डीजल, पार्क, रूम, गे, (अंग्रेजी एवं अन्य पाश्चात्य भाषाओं) के शब्दों का प्रयोग भी उनकी ग़ज़लों में दिखाई देता है। ऐसा नहीं है कि ज़हीर कुरेशी को देसी भाषाओं के शब्दों की जानकारी न हो। वे भारतीय मिट्टी से जुड़े ग़ज़लकार हैं। कई लोक भाषाओं एवं बोलियों के शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग

उनकी ग़ज़लों में दृष्टिगोचर होता है। जैसे डुगडुगी, खरोंच, चूल्हा, झौंपड़ी भट्टी, लाठी, छप्पर, टटोलना, भड़ास, झमेला, झटका, बाट, खारा, गुड़ाई, भोंथरी, गठरी, खूँटा, पोथी, आदि शब्द उनकी ग़ज़लों में प्रयुक्त हुए हैं।

साहित्यकार का उद्देश्य लोकमंगल एवं लोकरंजन ही नहीं होता। जीवन की विसंगतियों तथा विद्रूपताओं का पर्दाफाश करने के लिए वह लोक– परिमार्जन के लिए व्यंग्य का भी सहारा लेता है। व्यंग्य ज़हीर कुरेशी की रचना धर्मिता का महत्त्वपूर्ण अंग है कई समसामयिक स्थितियों पर उन्होंने गहरे व्यंग्य किए हैं। क्षीण मानसिकता वाले लोगों पर कटाक्ष करते हुए वे लिखते हैं –

"कूप मंडुपों को घर की देहरी अच्छी लगी
गाँव से चलकर शहर तक रास्ता जाता रहा।"[63]

वर्तमान युग में पनपी उपभोक्तावादी प्रवृति पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं –

"पैरों का चादर से बाहर होना निश्चित है
पैरों को इतना ज्यादा फैलाते हैं कुछ लोग।"[64]

समाज की वर्ण–व्यवस्था पर तेज करते हुए वे लिखते हैं –

"वो शुद्र है सवर्ण में वो है अमुक–अमुक
दोनों के रक्त में कहीं अंतर न हो सका।"[65]

इस प्रकार हम देखते हैं ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में समकालीन साहित्य की लगभग सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं। विकलांग–विमर्श का वैश्विक परिदृश्य'में संकलित अपने आदेश में डॉ॰ पूनम त्रिवेदी लिखती हैं – कथ्य और भाषा की दृष्टि से ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में जो विविधता है, वह हिन्दी साहित्य के कम ग़ज़लकारों में है। राजनीतिक सामाजिक देश गाँव गरीबी भूख आदि विषयों को स्पर्श करती हुई ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लें सहज ही पाठकों को यथार्थ का बोध

कराती हैं। समाज के हर पहलू को मर्मस्पर्शी भावना अभिव्यक्ति प्रदान करना उनकी ग़ज़लों की विशेषता है।"[66] ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों का केनवास बहुत विस्तृत है। वे गली से लेकर गाँव तक, घर से लेकर शहर नगर से लेकर महानगर तक, वेश से लेकर परिवेश तक, देश से लेकर विश्व तक की खोज–अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्त करते हैं। इस विपरीत होते समय में भी अपनी ग़ज़लों के माध्यम से वे अपने पाठकों को खबरदार करते रहते हैं।

***

संदर्भ–सूची

1. ज़हीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन सं. डॉ॰ विनय मिश्र, भूमिका से
2. रास्तों से रास्ते निकले ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 17
3. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 64
4. ज़हीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन, पृ॰सं॰ 4
5. ज़हीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन, पृ॰सं॰ 13
6. ज़हीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन, पृ॰सं॰ 13
7. भीड़ में सबसे अलग ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 14
8. ज़हीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन, डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 106
9. पेड़ तन कर भी टूटा नहीं ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 62
10. समंदर ब्याहने आया नहीं है ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 28
11. रास्तों से रास्ते निकले ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 33
12. लेखनी के स्वप्न ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 87
13. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ.सं॰ 71 (द्वितीय संस्करण)
14. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 116 (द्वितीय संस्करण)
15. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 84
16. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 94
17. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 105
18. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 94
19. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 111
20. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰108
21. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 34
22. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 71
23. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 71
24. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 62
25. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 92

26. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 112
27. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 65
28. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 79
29. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 103
30. जहीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन सं. डॉ॰ विनय मिश्र, पृ॰सं॰ 318
31. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 101
32. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, भूमिका से
33. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 71
34. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 112
35. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 36
36. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़ल सं. डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 79
37. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़ल सं. डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 23
38. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़ल सं. डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 84
39. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13
40. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 18
41. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 23
42. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 18
43. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 20
44. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 28
45. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 43
46. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 89
47. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 18
48. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 71
49. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 111
50. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 33
51. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13
52. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13
53. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 30

54. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 33
51. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13
52. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13
53. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 30
54. चाँदनी का दुःख,ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 33
55. समंदर ब्याहने आया नहीं है ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 28
56. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 37
57. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 82
58. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 30
59. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 36
60. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 82
61. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 30
62. ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी की काव्य दृष्टि सं. डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 144
63. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13
64. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 16
65. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 107
66. विकलांग–विमर्श का वैश्विक परिदृश्य, डॉ॰ पूनम त्रिवेदी, पृ॰सं॰ 576

***

v/;k; lIre

अध्याय सप्तम्

उपसंहार

हिन्दी ग़ज़ल परंपरा में ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी का स्थान "विषय पर सात अध्यायों में शोध कार्य पूर्ण करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचना और आसान हो गया कि हिन्दी ग़ज़ल परंपरा में ज़हीर कुरेशी का स्थान विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होंने हिन्दी ग़ज़ल को लोकप्रियता के शिखर पर ले जाने का प्रयास किया है। 1975 ई॰ में प्रकाशित उनके प्रथम ग़ज़ल संग्रह "लेखनी के स्वप्न" से प्रारम्भ हुआ, हिन्दी ग़ज़ल का यह सफर 2017 में भी अनवरत जारी है। अनेक अवरोधों एवं विरोधों के बीच भी हिन्दी ग़ज़ल के मार्ग पर अडिग एवं अटल रहने वाले ज़हीर कुरेशी के अब तक आठ और ग़ज़ल संग्रह, 'एक टुकड़ा धूप' (1979), 'चाँदनी का दुःख' (1986), 'समंदर ब्याहने आया नहीं है' (1992), 'भीड़ में सबसे अलग' (2003), 'पेड़ तनकर भी नहीं टूटा' (2010), 'बोलता है बीज भी' (2014), 'निकला न द्विगविजय को सिकंदर' (2016), 'रास्ते से रास्ते निकले' (2017), शीर्षकों से प्रकाशित हुए। अपने पहले ग़ज़ल संग्रह से ही हिन्दी ग़ज़लकार के रूप में अपनी पहचान स्थापित करने वाले ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में हिन्दी का अपना मुहावरा सर्वत्र व्याप्त दिखता है। उन्होंने अपनी ग़ज़लों के प्रतीक, बिम्ब और मिथक तलाशने के लिए हिन्दी के ही साहित्य, संस्कृति और संस्कारों का सहारा लिया। इसी माटी की महक उनकी ग़ज़लों में खुशबू बिखरती नज़र आती है। अपने प्रथम ग़ज़ल संग्रह 'लेखनी के स्वप्न' में वे लिखते हैं –

"चुभते हैं इसलिए मोह के काँटे,
यौवन में संन्यास लिए फिरते हैं ।"[1]

संन्यास की परंपरा भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल पक्ष है। पूरे शे'र को विवेचना की दृष्टि से देखा जाए तो सिर्फ भाषिक आधार पर ही नहीं वरन् चिंतन के आधार पर भी यह शे'र पूरी तरह से ज़हीर कुरेशी की इस बात का

समर्थन करता है कि हिन्दी भाषा का अपना एक इतिहास है, संस्कृति है, परंपरा है और मिथक है। यौवन में संन्यास की परंपरा इतिहास सम्मत है। प्राचीनकाल से ही हमारे यहाँ ऋषि–मुनि, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, आदि शंकराचार्य और स्वामी विवेकानन्द जैसे व्यक्तित्व रहे, जिन्होंने देशहित–राष्ट्रहित में युवावस्था में ही संन्यास धारण कर लिया था।

अपने दूसरे ग़ज़ल संग्रह, 'एक टुकड़ा धूप' की भूमिका में ज़हीर कुरेशी लिखते हैं "दुष्यंत की ग़ज़ल को हिन्दी अथवा हिन्दी प्रकृति की ग़ज़ल की ओर ले चलने का दायित्व मैंने अपने कंधों पर भी महसूस किया और तब नयी शैली की ग़ज़ल को मैंने हिन्दी में सोचा–उनके बिम्बों, प्रतीकों, उसकी कहन सहित।"[2] स्पष्ट है कि हिन्दी ग़ज़ल के इस धीर–पथिक ने अन्य हिन्दी ग़ज़लकारों की भाँति न तो हिन्दी ग़ज़ल के लिए अन्य नाम सुझाए और ना ही हिन्दी की प्रकृति के विपरीत उसे संस्कृत निष्ठता की ओर धकेलने का काम किया। आम–आदमी की बोलचाल की भाषा में उन्होंने ग़ज़लें कही। भाषिक भेद–भाव से परे उन्होंने इस बात पर अधिक जोर दिया कि हिन्दी ग़ज़ल में भारतीय मनस्विता प्रतिबिम्बित हो। ज़हीर कुरेशी की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल को हिन्दी साहित्य की एक विधा मानकर ही लिखा। समकालीन साहित्य की जितनी भी विशेषताएँ आलोचक बताते हैं। वह उनकी ग़ज़लें में विद्यमान हैं बदलते परिवेश को उन्होंने एक सचेत साहित्यकार की नज़रों से देखा और जो अनुभव किया उसे अभिव्यक्त किया।

"भावनाओं के शहर में लोग बेघर हो गये,
जिंदगी से इस कदर जूझे कि पत्थर हो गये।"[3]

(महानगरों की समस्या)

"सच्चाई, ईमानदारी और नैतिकता के,
निश्चित रहे किराए हैं इस बस्ती में।"[4]

(नैतिक मूल्यों का अवमूलन)

"भ्रूण–हत्या सड़क पर है,
स्तब्ध मुद्राएँ सड़क पर हैं।"[5]

(स्त्री–विमर्श, लिंग–भेद की समस्या)

"धीरे–धीरे टूट रहे हैं खुशफहमी के किले तमाम
मीलों पीछे छूट गये हैं खुशियों के सिलसिले तमाम।"[6]

जैसी समकालीन साहित्य से ओत–प्रोत हिन्दी ग़ज़लों में हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि करने वाले ज़हीर कुरेशी ने बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में प्रचारित–प्रसारित विमर्शों पर भी अपनी लेखनी चलाई। इक्कीसवीं सदी में आए साहित्यिक बदलावों को भी उन्होंने अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। मानव जीवन में तकनीकि सुविधाओं एवं भौतिकवादी संस्कृति के परिणाम स्वरूप बनते–बिगड़ते रिश्ते–नाते हो, चाहे विश्व बाज़ारवाद की 'डिमांड' पर बिकते, सिसकते, थिरकते, सहमते और मचलते आम आदमी के जज्बात हो हर जगह अपनी लेखनी से संग खड़े मिलेंगे। कभी हूँकार के साथ, तो कभी प्रतिकार के साथ। आधुनिक हिन्दी कविता की शायद ही कोई ऐसी प्रवृत्ति हो जिस पर ज़हीर कुरेशी का चिंतन उपलब्ध न हो। बल्कि यूँ कहें कि कहीं–कहीं पर तो वे आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों–कवियों से भी अधिक 'बोल्ड' नज़र आते हैं। वैश्यावृत्ति, पुरूष–वैश्यावृत्ति, सेरोग्रेसी, लिव–इन–रिलेशनशिप, 'गे' लेस्बियन, अंग–प्रदर्शन जैसे उत्तर आधुनिक विषयों पर भी उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। ग़ज़ल के मूल स्वरूप को छिन्न–भिन्न किये बिना उन्होंने बड़े ही खूबसूरत तरीके और सलीके से शे'र कहे हैं। लगभग 1200 ग़ज़लों और नौ ग़ज़ल–संग्रहों में बिखरा उनका लेखन आज इस मुकाम पर आ पहुँचा है कि हिन्दी ग़ज़ल के इस शिखर पुरूष को हिन्दी साहित्य में भी उस मुकाम पर पहुँचाया जाए जिसके वो सही मायने में हकदार हैं।

हिन्दी में ग़ज़ल अरबी–फारसी से आई। भारतीय सरजमीं पर यह विदेशी पौधा यहाँ के वातावरण में इतना फला–फूला कि अब इसे यहाँ की आबो–हवा रास आने लगी है। ज़हीर कुरेशी ने जब हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में कदम रखा,

उसके पहले हिन्दी में ग़ज़ल लेखन का वातावरण तैयार होने लगा था। भारतेन्दु हरिश्चंद्र से आधुनिक काल में प्रारम्भ हुआ हिन्दी ग़ज़ल का सफर, छायावादीकाल में जयशंकर प्रसाद, 'निराला' ने प्रगतिवादी काल में रामेश्वर शुक्ल'अंचल', जानकी बल्लभ शास्त्री, शमशेर बहादुर सिंह 'शमशेर', त्रिलोचन शास्त्री और परवर्ती काल में दुष्यंत कुमार, सूर्यभानु गुप्त, गोपालदास 'नीरज', चंद्रसेन विराट' डॉ॰ कुँअर 'बेचैन', भवानी शंकर, पुरूषोत्तम 'प्रतीक', रामावतार त्यागी, बालस्वरूप 'राही', डॉ॰ शेरजंग 'गर्ग', ज्ञान प्रकाश 'विवेक' रामदरस मिश्र, बेकल 'उत्साही', रामकुमार 'कृषक', डॉ॰ गिरिजाशरण 'अग्रवाल', डॉ॰ रोहिताश्व 'अस्थाना', ने आगे बढ़ाने में अपना योगदान दिया। ज़हीर कुरेशी ने भी इस आन्दोलन में अपनी महती भूमिका निभाई, उन्होंने न केवल देवनागरी में ग़ज़लें लिखी वरन् हिन्दी ग़ज़ल में युगानुरूप परिवर्तन भी किए। यही कारण है उनके बाद हिन्दी ग़ज़ल क्षेत्र में पदापर्ण करने वाले ग़ज़लकारों में भी ज़हीर कुरेशी जैसी कहन दिखलाई देती है। आज कई युवा ग़ज़लकार हैं, जो हिन्दी ग़ज़ल की परंपरा को और अधिक समृद्ध कर रहे हैं, इनमें वरिष्ठ अनूप, विनय मिश्र, विजयवाते, आलोक श्रीवास्तव, कुमार विनोद, वेद प्रकाश 'अमिताभ', ए॰एफ॰ नज़र आदि नाम उल्लेखनीय हैं। आज हिन्दी ग़ज़ल, हिन्दी साहित्य की मुख्य विधा, के रूप में स्वीकार की जा रही है तो इसमें जनाब ज़हीर कुरेशी के योगदान का भूलना असंभव होगा। ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों पर शोध करने वाले विद्वान आलोचक डॉ॰ मधु खराटे के अनुसार – "ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों में चिंतन पक्ष के साथ शिल्प–विधान का उचित समन्वय दृष्टिगत होता है। उनकी ग़ज़लों में ग़ज़ल के अंगों जैसे – शेर, मतला, काफ़िया, रदीक का ध्यान रखा गया है। परन्तु मकते का प्रयोग नहीं है। केवल एक–दो शेरों में तखल्लुस है। भाषा कम से कम फारसी–उर्दू के शब्द होने के कारण उनकी ग़ज़लें हिन्दुस्तानी हैं।"[6]

"ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी की काव्य–दृष्टि" आलोचनात्मक ग्रंथ के कवरपेज़ पर मुम्बई विश्वविद्यालय, मुम्बई के हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं प्रोफेसर डॉ॰ रतन कुमार पाण्डेय लिखते हैं – "हिन्दी ग़ज़ल को नये संस्कार एवं नये तेवर की ओर ले जाने वाले ज़हीर कुरेशी वक्त की आग में तपकर आज देश के सर्वोपरि हिन्दी ग़ज़लकार के रूप में अपना स्थान बना चुके हैं।"[7] स्पष्ट है ज़हीर

कुरेशी की हिन्दी ग़ज़लकार के रूप में प्रसिद्धि सम्पूर्ण देश में है। मध्यप्रदेश की ऐतिहासिक राजधानी ग्वालियर के समीपस्थ अशोक नगर में जन्मे और ग्वालियर को अपनी कर्म स्थली बना, कर्म स्थल हिन्दी ग़ज़लकार के रूप में स्थापित होकर वर्तमान में मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में निवास कर रहे हैं। महाराष्ट्र के दो ही विश्वविद्यालयों के हिन्दी साहित्य के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में उनकी ग़ज़लें पढ़ाई जा रही हैं। हिन्दी ग़ज़ल आलोचना में उन पर स्वतंत्र रूप से दो–दो ग्रंथ लिखे जा चुके हैं – 1. "ज़हीर कुरेशी महत्त्व और मूल्यांकन संपादक डॉ॰ विनय मिश्र (जिसमें देश के अलग–अलग भागों के 37 समालोचकों के आलेख शामिल हैं और 2. डॉ॰ मधु खराटे द्वारा संपादित 'ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी की काव्य दृष्टि।"

ज़हीर कुरेशी के छठे ग़ज़ल–संग्रह – "पेड़ तनकर भी नहीं टूटा" की समीक्षा करते हुए नीरज गोस्वामी लिखते हैं – "पिछले पैंतीस सालों के दौरान कही गयी ऐसी एक नहीं बल्कि अपनी सरल विचारवान और प्रयोगधर्मी लगभग आठ सौ ग़ज़लों से ज़हीर साहब देश के सर्वोपरि ग़ज़लकार के रूप में आसानी से चिह्नित किये जा सकते हैं। हिन्दी के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में उनकी ग़ज़लों का शामिल होना इसका पुख्ता प्रमाण है। ये ऐसा कारनामा है जो हिन्दी ग़ज़लों के इतिहास में पहली बार हुआ है।"[8] निःसंदेह एक साहित्यकार के लिए इससे बड़ी प्रसिद्धि की और कोई बात नहीं हो सकती कि उसके जीते–जी हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम में उसे पढ़ाया जाये। ज़हीर कुरेशी की ये ऐसी उपलब्धि है जो अपने समकालीनों में उन्हें ऊँचा और आला दर्जा प्रदान करती है। एक समर्पित रचनाकार के रूप में उन्होंने जनवादी विचाारधारा की प्रतिबद्धता का निर्वाह किया है। आम भारतीय की चिंता में आकंठ डूबा उनका चिंतन जब ग़ज़लों में शेर बनकर अभिव्यक्त होता है तो पाठक को चमत्कृत ही नहीं करता बल्कि उसे आश्वस्त भी करता हुआ कहता है कि –

"मैं आम आदमी हूँ तुम्हारा ही आदमी
तुम काश देख पाते मेरे दिल को चीर के।"[9]

ये सही है कि किसी रचनाकार के मनोभावों को जानने के लिए किसी नार्को टेस्ट की नहीं वरन् उसकी रचनाओं के आस्वादन की आवश्यकता होती है और जब कोई आस्वादक ज़हीर कुरेशी के रचना–संसार से गुजरता है तो पाता है कि उनकी ग़ज़लों में उँकेरे गए चित्र बड़े भवनों या महलों के नहीं, और ना ही तथाकथित कल्पना–लोक के वायवीय सुखों के हैं, इन सबसे दूर वे बड़े जतन से आम–आदमी के सपनों का बुनने का प्रयत्न करते हैं। समाज का उपेक्षित शोषित वर्ग उनकी ग़ज़लों के केन्द्र में है, अपने पूरे यथार्थ के साथ। इक्कीसवीं सदी भू–मण्डलीकरण एवं बाज़ारवाद की है। बाजार का डर आज हर व्यक्ति के भीतर समाया हुआ है। अर्थशास्त्री जेमसन के अनुसार – "बाजार का फलसफा हमारे समय की सबसे निर्णायक लड़ाई का युद्ध स्थल बन गया है। मुनाफे के नाम पर सबकुछ जायज यह बात सचमुच कठिन है कि वैश्विक पूँजी के इस दौर में मूल्यों की बात की जाए।"[10] जेमसन के ये शब्द आज का घोर यथार्थ है बाज़ार की वस्तुओं के बीच मनुष्य भी एक वस्तु बनकर रह गया है। मानवीय मूल्यों का पतन तीव्रता से हो रहा है। ज़हीर कुरेशी ने भी बाज़ार की इस भयावह मूल्यहीनता को बड़ी बखूबी से अभिव्यक्त किया है।

"सभ्यता के कौन से युग में खड़े हैं हम,
बोलते हैं युद्ध के बाज़ार की भाषा।"[11]

"अब तो डर की भी मार्केटिंग होती है,
डर भी बाज़ारों तक आते रहते हैं।"[12]

"मुक्त पूँजी के प्रतिकार की,
ये लड़ाई है बाज़ार की।"[13]

ज़हीर कुरेशी को ज़हीर कुरेशी बनाने में सबसे बड़ा योगदान उनके स्वतंत्र, मौलिक चिंतन और आमजन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता है। कोई भी रचनाकार अपने समय के सच को छोड़कर बड़ा नहीं हो सकता। युगानुरूप प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करना ही एक सच्चे साहित्यकार का उद्देश्य रहता है। अपने इतिहास

संस्कृति से उदाहरण लेकर वह अपने युग के सत्य को उजागर करना चाहता है। जहीर कुरेशी को भारतीय ज्ञान परंपरा, इतिहास, संस्कृति, रीति–रिवाज, तीज–त्यौहार की न केवल गहरी समझ है बल्कि वे इसमें रचे–बसे हैं। इसलिए वे अपनी ग़ज़लों के लिए शेर तलाशते समय हमारे देश की गौरवमयी सभ्यता और इसके भौगोलिक परिवेश का भी सहारा लेते हैं। यहाँ कुछ शेरों के माध्यम से यह दृष्टव्य है –

पौराणिक ज्ञान –

"सर्प बनकर जो हमेशा विष वमन करते रहे,
एक तख्ती टाँगकर वे लोग शंकर हो गए।"[14]

महाकाव्य ज्ञान –

"जो बरबस लछमन रेखा के पार गया,
वो अपने ही अनुशासन से हार गया।"[15]

"इस कलयुग के दानवीर कर्णों की गाथा मत पूछो,
जितना भी काला धन था वो मुक्त हस्त से दान किया।"[16]

इतिहास ज्ञान –

"ये अर्थ शास्त्र भी कहता है, अपनी भाषा में,
नकद की राह हमेशा उधार से निकली।"[17]

"कबीर को तो पता भी न था ज़हीर कौन है,
मगर ज़हीर के कवि में कबीर शामिल है।"[18]

रीति–रिवाज–संस्कार –

"स्वयंवरों की प्रथाएँ कभी रही होंगी,
स्वयं वधु के चलन से ही अब विवाह हुए।"[19]

"मानता ही नहीं मेहमान को भगवान कोई,
गर्मजोशी से अतिथि का हुआ सत्कार नहीं।"[20]

"है युग परमाणु–परिवारों का शायद इसलिए बच्चे,
शहर में दादा–दादी, नाना–नानी तक नहीं पहुँचे।"[21]
"सात फेरे लिए बिन रहे साथ में,
शहर में ये नवाचार होने लगे।"[22]
"बंद करते न लोग आहुतियाँ,
हाथ जलते, अगर हवन में नहीं।"[23]

ऋतु ज्ञान –

"जो न पतझर जी सका, उस पर न मधु ऋतु आएगी,
देख, अपने शुष्क पतझर से निकलकर देख तो।"[24]

देश–परिवेश ज्ञान –

"झुग्गियों की बात लगती है उन्हें बोनी,
वे हिमालय से बड़े हैं इसलिए चुप हैं।"[25]

"नगा–लैंण्ड के अलग मुद्दे,
उनको जोड़ो न कश्मीर के साथ।"[26]

साहित्य ज्ञान –

"हमको तुलसी के 'राम याद रहे,
हम कबीर के राम 'भूल गए।"[27]

"कहानी खूब थी 'उसने कहा था',
अब हम उनमें भी 'लहना' जानते हैं।"[28]

"मीठे अंगूर फिर भी खट्टे थे,
लोमड़ी ने उछल के देख लिया।"[29]

ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों पर चर्चा करते हुए वरिष्ठ ग़ज़लकार डॉ॰ अनिरूद्ध सिन्हा लिखते हैं – सामाजिक सरोकारों से लैस ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लें जन से संवाद करती हैं और आगाह करती हैं कि इतिहास परंपरा और संस्कृति की सहजता में ही जीवन की सहजता है निहित है। हमें देखना होगा और सावधान रहना होगा कि कहीं पाश्चात्य अपसंस्कृति की शक्तियाँ हमें दिग्भ्रमित न कर दें।"[30]

इसी क्रम में डॉ॰ परितोष मालवीय लिखते हैं – "सही मायने में ज़हीर कुरेशी ही हिन्दी ग़ज़ल के प्रतिनिधि ग़ज़लकार हैं। भविष्य में जब भी कभी हिन्दी ग़ज़ल के इतिहास पर शोध या चर्चा होगी, ज़हीर कुरेशी के बिना वह अधूरी तथा अप्रामाणिक मानी जाएगी।"[31]

इस अध्याय के अंत में निष्कर्ष रूप मैं इतना कहना चाहता हूँ कि ज़हीर कुरेशी दुष्यंतोत्तर हिन्दी ग़ज़ल परंपरा के महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि ग़ज़लकार हैं। हिन्दी ग़ज़ल को लोकप्रियता को शिखर पर पहुँचाने वाले चुनिंदा ग़ज़लकारों में ज़हीर कुरेशी का नाम आता है। आज हिन्दी ग़ज़ल को हिन्दी साहित्य की विधा के रूप में स्वीकृति दिलवाने का सफल कार्य उनकी ग़ज़लों के माध्यम से ही संभव हो पाया है। उनकी ग़ज़लें शोधार्थियों के प्रिय विषय के रूप में मान्यता पा रही है। हिन्दी परम्परा के इतिहास और विकास के बाद जिन हिन्दी ग़ज़लकारों पर शोध कार्य हुए उनमें दुष्यंत, चंद्रसेन विराट, डॉ॰ कुँअर बेचैन, पद्मश्री गोपाल दास 'नीरज' और ज़हीर कुरेशी का नाम भी शामिल है। अंत में ज़हीर कुरेशी के ही एक मतले से इस अध्याय को समाप्त करना चाहता हूँ –

"धीरे–धीरे उस मुकाम पर आते हैं कुछ लोग
जीवन में ही दंतकथा बन जाते हैं कुछ लोग।"[32]

***

संदर्भ–सूची

1. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, सं. डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 83
2. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, भूमिका से
3. वही, पृ॰सं॰ 14
4. वही, पृ॰सं॰ 17
5. वही, पृ॰सं॰ 33
6. ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी की काव्य दृष्टि, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 173
7. वही, फ्लेप से
8. किताबें ग़ज़लों की, नीरज गोस्वामी, पृ॰सं॰ 167
9. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 64 (द्वितीय संस्करण)
10. अँधेरे में विचार, संपादक – विजय कुमार
11. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 71
12. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 59
13. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 20
14. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 13 (द्वितीय संस्करण)
15. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 111
16. समंदर ब्याहने आया नहीं है, पृ॰सं॰ 13
17. भीड़ में सबसे अलग, पृ॰सं॰ 43
18. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 17
19. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 41
20. वही, पृ॰सं॰ 103
21. वही, पृ॰सं॰ 97
22. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 23
23. वही, पृ॰सं॰ 33
24. वही, पृ॰सं॰ 35
25. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, सं. डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰सं॰ 119
26. वही, पृ॰सं॰ 79

27. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 59

28. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 17

29. वही, पृ॰सं॰ 37

30. ज़हीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन, संपादक – विनयय मिश्र, पृ॰सं॰ 17

31. वही, पृ॰सं॰ 212

32. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, पृ॰सं॰ 16

***

ifjf'k"V

संदर्भ–सूची

1. आधार ग्रंथ
2. संदर्भ ग्रंथ
3. कोश साहित्य
4. पत्र–पत्रिकाएँ

1. आधार ग्रंथ :

I. ग़ज़ल संग्रह –

1. लेखनी के स्वप्न, ज़हीर कुरेशी, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली (1975 ई॰)
2. एक टुकड़ा धूप, ज़हीर कुरेशी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के–71, कृष्ण नगर,दिल्ली (1979 ई॰), द्वितीय संस्करण, विद्या प्रकाशन, सी–449, गुजैनी, कानपुर–22 (2016 ई॰)
3. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरेशी, पराग प्रकाशन, कर्ण गली शाहदरा, दिल्ली (1986 ई॰), द्वितीय संस्करण, विद्या प्रकाशन, सी–449, गुजैनी, कानपुर–22 (2016 ई॰)
4. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरेशी, अयन प्रकाशन, 1/20, महरौली, नई दिल्ली–110 030 (1992 ई॰)
5. भीड़ में सबसे अलग, ज़हीर कुरेशी, मेधा बुक्स प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110 032 (2003 ई॰)
6. पेड़ तनकर भी नहीं टूटा, ज़हीर कुरेशी, अयन प्रकाशन, 1/20, महरौली, नई दिल्ली–110 030 (2010 ई॰)
7. बोलता है बीज भी, ज़हीर कुरेशी, प्रतिश्रुति प्रकाशन, 7–ए– बेंटिक स्ट्रीट, कोलकाता–700 001 (2014 ई॰)
8. निकला न दिग्विजय को सिकंदर, ज़हीर कुरेशी, अंजुमन प्रकाशन, 942, आर्य कन्या चौराहा, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद–211003 (उत्तर–प्रदेश) (2016 ई॰)
9. रास्तों से रास्ते निकले, ज़हीर कुरेशी, अयन प्रकाशन, 1/20, महरौली, नई दिल्ली–110 030 (2017 ई॰)

II. अन्य ग्रंथ –

1. कुछ भूला कुछ याद रहा, ज़हीर कुरेशी, अंजुमन प्रकाशन, 942, आर्य कन्या चौराहा, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद–211003 (उत्तर–प्रदेश) (2016 ई॰)
2. कुछ भूले बिसरे शायर, चयन एवं संपादन–ज़हीर कुरेशी, पहले–पहल प्रकाशन, प्रा0लि0, 25–ए–प्रेस काम्पलेक्स, एम॰पी॰ नगर, भोपाल (2017ई॰)

2. संदर्भ ग्रंथ :

1. अमीर खुसरो और उनकी हिन्दी रचनाएँ, डॉ॰ भोलानाथ तिवारी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली (1985 ई॰)
2. अमीर खुसरो–भावनात्मक एकता के अग्रदूत, डॉ॰ अशोक भट्टाचार्य के लेख से, पृ॰ 61, सं. मलिक मोहम्मद, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली (1975 ई॰)
3. आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजनात्मक शिल्प, डॉ॰ हरदयाल, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद (1978 ई॰)
4. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रतीक विधान, डॉ॰ नित्यानन्द शर्मा, साहित्य सदन, देहरादून, प्रथम संस्करण संवत् 2025
5. आधुनिक काव्य धारा, डॉ॰ केसरी नारायण शुक्ल, सरस्वती मंदिर, बनारस
6. इन आवाज़ों को ठहरा लो, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1977 ई॰
7. उर्दू शायरी में भारतीयता, डॉ॰ बानो सरताज, अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली–110 030
8. कवियों का कवि–शमशेर, डॉ॰ रंजना अरगड़े, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110 030 प्रथम संस्करण 1988 ई॰
9. कुछ और कविताएँ, शमशेर बहादुर सिंह, जगत शंखधर, वाराणसी प्रथम संस्करण 1957
10. ग़ज़ल एक यात्रा, सूर्यप्रकाश शर्मा, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, प्रथम संस्करण 1988

11. ग़ज़ल एक अध्ययन, चानन गोविंदपुरी, सी.आर. पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1980
12. ग़ज़ल सप्तक, गोपालकृष्ण कौल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1991
13. ग़ज़ल : सौन्दर्य मीमांसा, डॉ॰ अब्दुर्रशीद.ए.शेख, जयभारती प्रकाशन, लालजी मार्केट, माया प्रेस रोड़, 258/265, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद–3 प्रथम संस्करण–2002
14. ग़ज़ल : दुष्यन्त के बाद, सं. दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002
15. ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी की काव्य दृष्टि, डॉ॰ मधु खराटे, विद्या प्रकाशन, सी–449, गुजैनी, कानपुर–22 प्रथम संस्करण–2013
16. ग़ज़लिका, सं. रुद्र कार्षिकेय, सावित्रीय साहित्य सदन, वाराणसी, प्रथम संस्करण–1955
17. गंध रचती छंद, बलवीर सिंह 'रंग', सं. शारदा जौहरी, अर्चना प्रकाशन, कासगंज, प्रथम संस्करण–1962
18. गीतों के रश्मिद्वार, डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष', राज्यश्री प्रकाशन, मथुरा, प्रथम संस्करण–1984
19. गुफ्तगूँ अवाम से है, डॉ॰ ज्ञानप्रकाश 'विवेक', वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002, प्रथम संस्करण–2008
20. गुलाब और बुलबुल, त्रिलोचन शास्त्री, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002
21. चिंतामणि भाग–एक, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, आठवाँ संस्करण–2009
22. ज़हीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, डॉ॰ मधु खराटे, विद्या प्रकाशन, सी–449, गुजैनी, कानपुर–22 प्रथम संस्करण–2013
23. ज़हीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन, सं. डॉ॰ विनय मिश्र, उर्वशीयम प्रकाशन, बी–12, सी–2 एवं सी–3, वर्धमान कॉम्पलेक्स, यमुना विहार, दिल्ली–110053 प्रथम संस्करण–2010

24. दुष्यंत कुमार–व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ॰ गिरिराज त्रिवेदी, शांति प्रकाशन, हरियाणा, प्रथम संस्करण–2003
25. धूप के हस्ताक्षर, डॉ॰ ज्ञान प्रकाश विवेक, कादम्बिनी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1989
26. नया जमाना नयी ग़ज़लें, सं. एवं संकलन डॉ॰ शेरजंग गर्ग, सुबोध पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1987
27. नवीनतम हिन्दी ग़ज़लें, सं. डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना, सुनील साहित्य सदन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1989
28. नये दौर की ग़ज़लें, सं. अशोक अंजुम, रवि पब्लिकेशंस, 33, हरि नगर मेरठ प्रथम संस्करण–2009
29. निराला का परवर्ती काव्य, डॉ॰ रमेश चंद्र मेहरा, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण–1963
30. नीरज की पाती, गोपालदास 'नीरज', हिन्द पॉकेट बुक्स, प्रा॰ लि॰ दिल्ली, प्रथम संस्करण–1992
31. नीम की पत्तियाँ, रामकुमार 'कृषक', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1984
32. पेड़ नहीं तो साया होता, पुरुषोत्तम 'प्रतीक', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1991
33. प्रेमघन सर्वस्व (भाग–1), सं. प्रभाकरेश्वर उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण–1939
34. बाज़ार को निकले हैं लोग, रामदरश मिश्र, विकास पेपर बेक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1986
35. बेला, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', हिन्दुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद
36. बोल–चाल, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी वि. साहित्य कुटीर, बनारस, प्रथम संस्करण–संवंत् 2013
37. भवानी शंकर की हिन्दी ग़ज़लें, भवानी शंकर, लोकचेतना प्रकाशन, जबलपुर, प्रथम संस्करण–1978

38. भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झांसी प्रथम संस्करण–संवंत् 2037

39. भारतेन्दु ग्रंथावली भाग–2, सं. ब्रजरत्न दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1978

40. भाषा और संवेदना, डॉ॰ रामस्वरुप चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1964

41. मिट्टी की ओर, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल पटना, प्रथम संस्करण–1946

42. रुपरेखा, हरिकृष्ण 'प्रेमी', आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1962

43. शमशेर की कविताएँ, नरेन्द्र वशिष्ठ,

44. सन्नाटे में गूँज, डॉ॰ गिरिराज शरण अग्रवाल, प्रतिभा प्रतिष्ठन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1987

45. समकालीन हिन्दी कविता की भूमिका, डॉ॰ मोहन,

46. समकालीन काव्य यात्रा, डॉ॰ नंदकिशोर नवल,

47. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल : परम्परा और विकास, डॉ॰ अनिरुद्ध सिन्हा, रसंविप्र प्रकाशन, आर–27, रीता ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली–110092, प्रथम संस्करण–2010

48. साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल, डॉ॰ मधु खराटे, विद्या प्रकाशन, सी–449, गुजैनी, कानपुर–22 प्रथम संस्करण–2002

49. साठोत्तरी हिन्दी ग़ज़ल में विद्रोह के स्वर, डॉ॰ भावना कुँअर, अयन प्रकाशन, 1/20, मेहरोली, नई दिल्ली–110030, प्रथम संस्करण–

50. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1985

51. हिन्दी ग़ज़ल : उद्‌भव एवं विकास, डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना, सुनील साहित्य सदन, 3320–21, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 संस्करण–2010

52. हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, डॉ॰ सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002 प्रथम संस्करण–2001

53. हिन्दी ग़ज़ल जलता हुआ सफर, डॉ॰ हनुमंत नायडू, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, द्वितीय संस्करण–2003

54. हिन्दी ग़ज़ल : ग़ज़लकारों की नज़र में, डॉ॰ सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002 प्रथम संस्करण–2001

55. हिन्दी ग़ज़ल : दशा और दिशा, डॉ॰ नरेश निसार, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002 प्रथम संस्करण–2004

56. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण–2003

57. हिन्दी कहानियों का शिल्प विधान, डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल,

58. हिन्दी ग़ज़ल शतक, सं. डॉ॰ शेरजंग गर्ग, किताबघर प्रकाशन, 24, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002 संस्करण–2006

59. हिन्दी ग़ज़ल शतक (दूसरा), सं. डॉ॰ शेरजंग गर्ग, किताबघर प्रकाशन, 24, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002 संस्करण–2006

60. हिन्दी ग़ज़ल शतक (तीसरा), सं. डॉ॰ शेरजंग गर्ग, किताबघर प्रकाशन, 24, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002 संस्करण–2009

61. हिन्दी ग़ज़ल का विवेचनात्मक अनुशीलन, डॉ॰ सुमेर सिंह 'शैलेष', नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–1997

62. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002 प्रथम संस्करण–2007

63. हिन्दी के लोकप्रिय ग़ज़लकार, सं. नीरज, अशोक अंजुम, हिन्द पॉकेट बुक्स, प्रा॰ लि॰ जी–40, जोरबागलेन,नई दिल्ली–110 003 संस्करण–2009

64. हमारे प्रतिनिधि कवि, डॉ॰ विश्वंभर 'मानव', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–1969

65. हमारे लोकप्रिय गीतकार गोपालदास नीरज, सं. डॉ॰ शेरजंग गर्ग, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002 प्रथम संस्करण–2006

66. हमारे लोकप्रिय गीतकार दुष्यंत कुमार, सं. डॉ॰ शेरजंग गर्ग, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110 002 प्रथम संस्करण–2005

67. 101 किताबें ग़ज़लों की, डॉ॰ नीरज गोस्वामी, शिवना प्रकाशन, पी॰सी॰ लैब, सम्राट कॉम्पलेक्स बेसमेंट, बस स्टेण्ड, सीहोर–466001 (मध्य प्रदेश) तृतीय संस्करण–2017

3. कोश साहित्य :

1. आदर्श हिन्दी कोश, सं. पं. रामस्वरुप शास्त्री
2. उर्दू–हिन्दी शब्दकोश, सं. मुहम्मद मुस्तफा खां, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण–1959
3. ब्रिटेनिका विश्वकोश
4. नालंदा विशाल शब्द सागर, सं. नवल जी, न्यू एम्पीरियल बुक डिपो, दिल्ली, संस्करण–2007
5. नालंदा अद्यतन कोश, सं. पुरुषोत्तम नारायण अग्रवाल
6. महाराष्ट्र शब्दकोश भाग–सातवाँ
7. मानक हिन्दी कोश पाँचवां खण्ड
8. वृहत् हिन्दी कोश, प्र.सं. कालिका प्रसाद ज्ञान मंडल, प्रा.लि. वाराणसी, तृतीय संस्करण–संवत् 2020
9. व्यवहारिक हिन्दी–अंग्रेजी कोश, सं. महेन्द्र चतुर्वेदी/भोलानाथ तिवारी,
10. संक्षिप्त हिन्दीशब्द सागर कोश, सं. पं. रामस्वरुप शास्त्री
11. संस्कृत–हिन्दी कोश, सं. वामन शिवराम आप्टे
12. हिन्दी राष्ट्र भाषा कोश
13. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मंडल, वाराणसी,तृतीय संस्करण–1985

14. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–2, धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मंडल, वाराणसी, तृतीय संस्करण–1985

4. पत्र–पत्रिकाएँ :

1. आजकल, ग़ज़ल विशेषांक, मई, 1981, सं. वेदप्रकाश अरोड़ा
2. आरोह ग़ज़ल अंक 28, सं. रत्तीलाल शाहीन
3. दैनिक जागरण, रजत जयंती अंक, नवम्बर, 1972
4. तेवरी, पक्ष्र जुलाई से सितम्बर, 1983 सं. रमेश राज
5. नया ज्ञानोदय, ग़ज़ल महा विशेषांक, जनवरी, 2013, सं. रवीन्द्र कालिया
6. मधुमति, अक्टूबर, 2006, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
7. समय के साथी, जून–जुलाई, 2010

***

साक्षात्कार

(प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध हेतु शोधार्थी द्वारा लिया गया जहीर कुरेशी जी का साक्षात्कार)

(1) रा.अ.: ग़ज़ल से आपका क्या तात्पर्य है ?

ज.कु.: ग़ज़ल एक 'डेन्स पोइट्री फार्म' है। इसके शेरों में बात को विस्तार नहीं दिया जाता, ग़ज़ल का एक शेर बराबर एक कविता। ग़ज़ल में जितने शेर, उतने प्रसंग, उतनी कवितायें। लेकिन, शेर रुपी कविता को प्रायः संकेतों में ..... उसकी व्यंजना में ग्रहण किया जाता है।

शर बिद्ध गजाला (हिरणी) की आह से जोड़ कर की जाने वाली ग़ज़ल की परिभाषाएं पुरानी हुई। मेरे विचार से, ग़ज़ल एक घनीभूत काव्य विधा है – जिसकी अपनी एक सुदीर्घ परंपरा और 'मेनरिज्म' है अपने विशिष्ट 'मेनरिज्म' के तहत, गागर में सागर जैसे व्यंजना–परक कथ्य के कारण, आज भी ग़ज़ल समकालीन सभी काव्य–विधाओं में सबसे अधिक असर–कारक काव्य विधा है। आम आदमी से लेकर खास बुद्धिजीवियों तक उसकी लोकप्रियता निर्विवाद है।

(2) रा.अ. ग़ज़ल को हिन्दी या उर्दू विशेषण के साथ प्रयुक्त करना कहाँ तक सही है ?

ज.कु.: शायरी का एक दौर ऐसा भी रहा, जब शेर सिर्फ फारसी में कहे जाते थे। एक अर्से तक, महान शायर मिर्ज़ा ग़ालिब भी फारसी में ग़ज़लें कहते रहे। वो तो भला हो वली दकनी जैसे शायरों का, जो अवाम तक बात पहुँचाने की धुन में उर्दू में शेर कहने लगे। बाद में गालिब को भी आम आदमी तक बात पहुँचाने की आवश्यकता महसूस हुई और गालिब भी लश्करी जुबान उर्दू में शेर कहने लगे। तभी 'फारसी ग़ज़ल' और 'उर्दू ग़ज़ल' जैसा भेद परिलक्षित हुआ।

हिन्दी भी एक स्वतंत्र भाषा है। हिन्दी भाषा की अपनी संस्कृति है, इतिहास है, परंपरा है, मिथक है। उस भाषा में अगर कोई शेर कहता है तो उसके साथ "हिन्दी ग़ज़ल" विश्लेषण क्यों न लगाया जाए ? फारसी ग़ज़ल, उर्दू ग़ज़ल, गुजराती ग़ज़ल, मराठी ग़ज़ल, पंजाबी ग़ज़ल, की तर्ज पर "हिन्दी ग़ज़ल" क्यों नहीं हो सकती ?

(3) रा.अ.: क्या आप इन विशेषणों से सहमत हैं ?

ज.कु.: जी हॉ।

(4) रा.अ.: यदि सहमत हैं तो हिन्दी ग़ज़ल का उद्‌भव कब से स्वीकार करते है ?

ज.कु.: सांकेतिक रूप से, हिन्दी ग़ज़ल का उद्‌भव अमीर खुसरो से माना जा सकता है। उनकी ग़ज़लों का एक मिसरा फारसी का तो दूसरा हिन्दी का होता है। ब्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोली की छटा अमीर खुसरो के काव्य का प्राण तत्व है।

(5) रा.अ.: आपकी नज़र में हिन्दी का पहला ग़ज़लकार कौन है ?

ज.कु.: हज़रत अमीर खुसरो।

(6) रा.अ.: आप सही मायने में हिन्दी ग़ज़ल लेखन का प्रारंभ कब से मानते हैं ?

ज.कु.: 1970 से। 1970 से 1975 तक के काल खंड में दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल के कथ्य में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। राजनैतिक रूप से वह कालखंड इन्दिरा गाँधी की हठ और जय प्रकाश नारायण के आँदोलन का चरम काल था। उस राजनैतिक ताप को आत्मसात करते हुए, दुष्यंत ने अपने शेरों में उन कथ्यों को शामिल किया, जो उनसे पहले ग़ज़ल के माध्यम से शायर कहने में प्रायः संकोच करते थे। इसी प्रस्थान–बिन्दु को हिन्दी रचनाकारों ने हिन्दी ग़ज़ल का अभ्युदम–काल माना।

(7) रा.अ.: समकालीन हिन्दी ग़ज़ल के क्या मायने हैं ?

ज.कु.: समकालीन कविता (मुक्त छंद और छंद मुक्त कविताओं के समानान्तर खड़ी है आज की हिन्दी ग़ज़ल।

हिन्दी ग़ज़ल आज की सर्वाधिक सुनी, पढ़ी और पसंद की जाने वाली काव्य–विधा है। उसका मुख्य कारण है – डेन्सिटी ऑफ पोइट्री। केवल दो पंक्तियों में एक पूरी कविता का जन्म। शेर का गागर में सागर होना। शेरों की उद्धरणशीलता। किसी भी काव्य विधा की यही उपलब्धि उसे जनश्रुति की कविता बनाती है। ऐसी विरल कविता जन–मानस की स्मृति में दूर तक और देर तक निवास करती है। हिन्दी ग़ज़ल जैसी सह संभावना, फ्री वर्स पोइट्री में तो बिल्कुल नहीं है। वह न तो हमारी स्मृति में रहती है, न ही उसे शेर की तरह अविलंब उद्धृत किया जा सकता है।

(8) रा.अ.: आप पिछले 40–50 वर्षों से हिन्दी ग़ज़ल से जुड़े हैं। आज हिन्दी ग़ज़ल को किस मुकाम पर पाते हैं ?

ज.कु.: दुष्यंत के पूर्व काल तक, ग़ज़ल को एक लोकप्रिय विधा माना जाता था। पत्र–पत्रिकाएं भी, ग़ज़ल को प्रकाशित करने में एक प्रकार का संकोच–सा करती थी। एक – दो पत्रिकाएं तो ऐसी थी जो लिखती थी – कृपया प्रकाशनार्थ लघु–कथा एवं ग़ज़लें न भेजें। विगत 40–50 वर्षों में धीरे–धीरे हिन्दी ग़ज़ल ने सिद्ध किया कि वर्तमान समाज .....राजनीति के साथ–साथ, आधुनिक टेक्नोलॉजी भी मनुष्य के जीवन पर गहरा असर डाल रही है। मशीनीकरण के इस दौर में, मनुष्य भी मशीन के कल–पुर्जो की तरह हो गया है। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल भी आधुनिक तकनीक, मशीनीकरण, संवेदनहीनता, बाजारवाद को ग़ज़ल की शैली में अपना विषय बना रही है।

आज देश की हर हिन्दी पत्र–पत्रिका ग़ज़ल को स्थान दे कर खुशी महसूस करती है। देश के कुछेक विश्वविद्यालयों में, 'आधुनिक काव्य' विषय

के अंतर्गत हिन्दी ग़ज़लें एम॰ ए॰ (हिन्दी) स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में निर्धरित हुई है। यह हिन्दी ग़ज़ल की स्वीकृति का प्रस्थान बिन्दु है।

(9) रा.अ.: इससे आपका जुड़ाव स्वाभाविक है या कुछ विशेष कारण है ?

ज.कु.: अगर हिन्दी ग़ज़ल से मेरा जुड़ाव स्वाभाविक नहीं होता तो साढ़े चार दशक लंबी यात्रा संभव न थी।

(10) रा.अ.: समकालीन हिन्दी ग़ज़ल किन सरोकारों को लेकर आगे बढ़ी है ?

ज.कु.: समकालीन हिन्दी ग़ज़ल के भी वही सरोकार हैं, जो समकालीन हिन्दी कविता के हैं। संक्षेप में कहूँ तो समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों की दृष्टि समय के कुचक्र में पिसते आम आदमी की अंतर्वेदना, उसकी आशा–निराशा, उसकी इच्छा–आकांक्षा, क्षोभ, घुटन, संत्रास, तथा पीड़ा के अतिरिक्त आर्थिक विषमता, सामाजिक असमानता तथा राजनैतिक भ्रष्टाचार पर भी खूब गई है। दुष्यंत के कालखंड से ही व्यवस्था–विरोध शेरों का मुख्य विषय रहा है। समाज में बदलाव लाने की आवश्यकता अधिकांश रचनाकारों के शेरों के पार्श्व से अनुँगूँज की तरह निरंतर सुनाई देती रहती है।

(11) रा.अ.: इसके सामाजिक सरोकारों को विस्तार से समझाइए ?

ज.कु.: समकालीन हिन्दी ग़ज़लों का मूल स्वर सामाजिक चेतना का है। इसमें मानव जीवन एवं समाज संपृक्तता समाहित है। अधिकांश ग़ज़लकारों के शेरों में मानवीय मूल्यों के विघटन से निर्माण हुई अनुशासनहीनता सामाजिक जीवन में दृष्टिगत हो रही है। विसंगति,विद्रूपता के प्रति ग़ज़लकारों की व्यवस्था एवं आक्रोश, महानगरीय जीवन में व्याप्त भौतिकता एवं विलासी प्रवृत्ति के साथ झुग्गी–झोंपड़ियों का नारकीय जीवन, आम आदमी की कीड़े–मकोड़ों के समान जिन्दगी, संपन्न वर्ग द्वारा आम आदमी का शोषण, सर्वत्र व्याप्त भय एवं दहशत का जानलेवा वातावरण ग़ज़लकारों में चिन्ता जगाती है। सामाजिक

सरोकारों के शेर प्रायः हर ग़ज़लकार की ग़ज़लों में बहुतायत से मिल जाते हैं।

(12) रा.अ.: क्या हिन्दी ग़ज़ल सही मायने में आम आदमी की अभिव्यक्ति है ?

ज.कु.: बिल्कुल।

(13) रा.अ.: आप इसे किस तरह अभिव्यक्ति करते है ?

ज.कु.: एक संवेदनशील, समाज–संपृक्त, चेतस कवि की तरह।

(14) रा.अ.: साहित्य में आजकल विमर्श तलाशे जा रहे हैं। क्या हिन्दी ग़ज़ल भी इन विमर्शों संपृक्त है ?

ज.कु.: चूँकि हिन्दी ग़ज़ल भी समकालीन हिन्दी कविता (साहित्य) की एक प्रशाखा ही है, इसलिए वह भी अपने आप को विमर्शों से कैसे दूर रख सकती है। उसमें भी अब पोस्ट मॉर्डनिज़्म ..... स्त्री विमर्श जैसे विमर्शों की अनुगूँज सुनाई देने लगी है।

(15) रा.अ.: अगर है तो किस प्रकार है, नहीं है तो क्यों नहीं ?

ज.कु.: इस जानकारी के लिए कृपया निम्नांकित आलोचना पुस्तकों के निम्नांकित आलेख पढ़िए :–

(अ) डॉ॰ विनय मिश्र द्वारा संपादित आलोचना पुस्तक "जहीर कुरेशी : महत्व और मूल्याँकन" के पृ॰ क्रं॰ 81 पर श्री अनिरूद्ध सिन्हा का "जहीर कुरेशी की ग़ज़लें और उत्तर आधुनिकता"।

(अ) डॉ॰ मधु खराटे (मो॰नं॰ 09422567778) द्वारा संपादित आलोचना

पुस्तक "ग़ज़ल जहीर कुरेशी की काव्य–दृष्टि" का पृ॰ क्रं॰ 64 पर प्रकाशित आलेख –"जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में नारी विमर्श"।

(16) रा.अ.: 'भीड़ में सबसे अलग' और 'पेड़ तनकर भी नहीं टूटा' संग्रहों में अस्मिता का विमर्श किस प्रकार अभिव्यक्ति पाता है ?

ज.कु.: आपका प्रश्न अस्पष्ट और उलझा हुआ है किस की अस्मिता ? कृपया दोनों ग़ज़ल संग्रहों की 200 ग़ज़लों से स्वयं गुज़रिए और स्वयं अस्मिता का विमर्श तय कीजिए।

(17) रा.अ.: हिन्दी ग़ज़लकारों की भीड़ में आप अपने आप को किस प्रकार अलग पाते हैं ?

ज.कु.: इस प्रकार के प्रश्न का रचनाकार द्वारा स्वयं उत्तर दिया जाना व्यर्थ के अनेक विवादों को जन्म दे सकता है। इस तरह के उत्तर तो शोध छात्रों को उस रचनाकार के विषय में स्वयं तय करना चाहिए।

(18) रा.अ.: हिन्दी ग़ज़ल आज किस मुकाम पर है आप कैसे अनुभव करते हैं ?

ज.कु.: इस प्रश्न का उत्तर, उत्तर क्रम. 8 में पहले ही दिया जा चुका है।

(19) रा.अ.: शुक्र है, हिन्दी ग़ज़ल आज भी तथा कथित लाफ्टर एवं द्विअर्थी कॉमेडी से मुक्त है ?

ज.कु.: असंबद्ध प्रश्न। उत्तर देना आवश्यक नहीं।

(20) रा.अ.: आपकी ग़ज़लें आज विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रम का हिस्सा हैं। कैसे महसूस होता है।

ज.कु.: 2006 और 2007 में मेरी ग़ज़लें दो अलग–अलग विश्वविद्यालयों के बी॰ए॰ पार्ट–I और बी॰ए॰ पार्ट–II पाठ्यक्रम में सम्मिलित हुई थीं।

मुझे सबसे ज्यादा प्रसन्नता तब हुई, जब 2008 में 'आधुनिक काव्य' विषय के अन्तर्गत मेरी 20 ग़ज़लें उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव और 05 ग़ज़लें स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, नाँदेड़ के स्नातकोत्तर एम॰ए॰ (उत्तरार्ध) हिन्दी पाठ्यक्रम में सम्मिलित की गईं।

इस प्रकार मैं हिन्दुस्तान का पहला ग़ज़लकार बना, जिसकी कुल 25 ग़ज़लें देश के दो अलग–अलग विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर हिन्दी पाठ्यक्रम में निर्धारित हुईं। यह वस्तुतः मेरा नहीं, हिन्दी ग़ज़ल की स्वीकृति और सम्मान है।

(21) रा.अ.: हिन्दी ग़ज़ल पर होने वाले शोध–कार्यों की दिशाएं क्या होंगी ?

ज.कु.: यह हिन्दी ग़ज़लकार नहीं, शोध निदेशक तय करेगें।

(22) रा.अ.: क्या आपकी नजर में हिन्दी ग़ज़ल को अब भी अपने "मीर और गालिब" की तलाश है ? या 'वो सदी तुम्हारी थी, ये सदी हमारी है' से संतुष्ट हैं ?

ज.कु.: हर कालखंड में हर विधा को अपने शीर्षस्थ रचनाकारों की तलाश रहती है।

(23) रा.अ.: क्या हिन्दी ग़ज़ल राजनीति का शिकार हुई है ?

ज.कु.: इस कालखंड में, कोई भी व्यक्ति या विधा या वस्तु राजनीतिक–निरपेक्ष रह ही नहीं सकती। फिर हिन्दी ग़ज़ल से राजनीतिक–निरपेक्ष रहने की अपेक्षा क्यों ?

(24) रा.अ.: हिन्दी ग़ज़ल का बेहतर भविष्य किन ग़ज़लकारों में देखते हैं ?

ज.कु.: अच्छा हो, इस प्रश्न का उत्तर आप किसी आलोचक, संपादक, या शोध निदेशक से पूछें।

(25) रा.अ.: हिन्दी ग़ज़ल के नए आयाम क्या होंगे ?

ज.कु.: उसे समकालीन हिन्दी कविता की आलोचना में छंद–मुक्त या मुक्त–छंद कविता जैसा सम्मान मिलना ही मेरे लिए हिन्दी ग़ज़ल का नया आयाम होगा ?

***

lsfeukj ,oa
izdkf'kr 'kks/k&i=

इतिहास संकलन समिति, भीलवाड़ा (राज.)

सामाजिक न्याय के प्रणेता डॉ. भीमराव अम्बेडकर के निर्वाण दिवस पर आयोजित

''समरस भारत– समर्थ भारत''

नेशनल सेमिनार (6 एवं 7 दिसम्बर 2017)

जिला – भीलवाड़ा

श्री/सुश्री/श्रीमती डॉ. रामावतार मेघवाल

पद व्याख्याता– हिन्दी संस्था/स्थान राजकीय महाविद्यालय, कोटा

उपर्युक्त दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में उपस्थित रहे एवं सामाजिक समरसता के अग्रदूत – मध्यकालीन संत विषय पर शोध आलेख प्रस्तुत किया।

(डॉ. के.एस. गुप्ता)	(डॉ. मोहन लाल साहू)	(डॉ. जगदीश चन्द्र खटीक)
क्षैत्रिय अध्यक्ष, राजस्थान	प्रान्त प्रमुख, चित्तौड़ प्रांत	आयोजन सचिव, भीलवाड़ा

सिंहस्थ 2016

अंतरराष्ट्रीय शोध संगोष्ठी

INTERNATIONAL RESEARCH CONFERENCE

भाषा, साहित्य और बदलता सामाजिक परिदृश्य : भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ

6-7 मार्च 2016

आयोजक : अक्षर वार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका एवं संस्था कृष्णा बसंती

सहयोग : हिंदी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/सुश्री/डॉ. रामाअवतार मेघवाल संस्था राजकीय महा० कोटा ने अक्षर वार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका एव संस्था कृष्णा बसंती उज्जैन द्वारा हिन्दी अध्ययनशाला विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के सहयोग से दिनांक 6-7 मार्च 2016 को भाषा, साहित्य और बदलता सामाजिक परिदृश्य : भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ पर केन्द्रित अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में सहभागिता की।

इन्होंने भू० क० के दौर में 'मनुष्य विमर्श' करती कहानियाँ विषय पर शोध पत्र प्रस्तुत किया / व्याख्यान दिया / सत्र की अध्यक्षता की।

डॉ. प्रेमलता चुटैल
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी अध्ययनशाला
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. गीता नायक
आचार्य
हिन्दी अध्ययनशाला
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा
प्रधान संपादक : अक्षर वार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका
आचार्य हिन्दी अध्ययनशाला एवं कुलानुशासक
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. मोहन बैरागी
संपादक
अक्षर वार्ता

ISBN : 978-81-921231-6-5

स्त्री विमर्श

कल, आज और कल

अनुक्रम

क्र.सं.	नाम / लेखक	पृ.सं.
1.	प्रिन्ट और इलेक्ट्रानिक मीडिया के समक्ष स्त्री – डॉ. अमित शुक्ल	09
2.	वैधव्य और हिन्दी सिनेमा – प्रमोद मीणा	17
3.	स्त्री एक : रूप अनेक – डॉ. संजू श्रीमाली	26
4.	बदलते संदर्भों में नारी की स्थिति – एक सूक्ष्म अवलोकन – डॉ. चन्द्रकान्त तिवारी	30
5.	डॉ. प्रभा खेतान का स्त्री–विमर्श – डॉ. विवेक शंकर	35
6.	"महादेवी वर्मा के लेखन में नारी स्वातंत्र्य का प्रश्न" – डॉ राजेन्द्र कुमार सिंघवी	38
7.	हिंसा का सर्वाधिक घिनौना स्वरूप– कन्यावध (एक ऐतिहासिक विश्लेषण) – डॉ.संबोध गोस्वामी	43
8.	स्त्री और धर्म – पूनम मोहनानी	53
9.	समकालीन हिन्दी गज़लों में स्त्री विमर्श – रामावतार मेघवाल, महेन्द्र कुमार मीणा	57
10.	नागार्जुन के उपन्यासों में स्त्री विमर्श – डॉ. नेहा पालनी	63
11.	सुभद्राकुमारी चौहान की कहानियां और स्त्री चेतना – स्नेह सुधा	70
12.	"स्त्री के शोषण और पीड़ा की परिवेशजन्य स्थितियां और साहित्य" – डॉ. विमलेश शर्मा	75
13.	हरिमोहन के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श – रमा आर्य	79
14.	विज्ञापनों में भारतीय स्त्री – सुमीत द्विवेदी	83
15.	स्त्री ? स्त्री ? स्त्री ? – डॉ. सुनीता कुमारी गुप्ता	87
16.	बाल विवाह से महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का समाजशास्त्रीय अध्ययन – मोनिका, प्रियंका सिह (अनुसन्धान कर्ता)	92
17.	डॉ. सुमन राजे कृत 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास और साहित्येतिहास की स्त्री दृष्टि' – विरेन्द्र कुमार मीणा	97
18.	राजस्थान की भील जनजाति में महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन – डॉ.लक्ष्मीनारायण आर्य, डॉ. प्रशान्त कुमार	102
19.	संवेदना के धरातल पर दलित नारी –डॉ. (श्रीमती) दीपिका विजयवर्गीय	106
20.	मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में स्त्री विमर्श – भगवान सहाय शर्मा	111
21.	स्वप्न–समय' में स्त्री चेतना–सविता सिंह – वर्षा वर्मा	115
22.	सुरक्षित पर्यावरण के लिए संघर्ष (स्त्री–विमर्श के संदर्भ में) – संदीप कुमार	118
23.	समकालीन नारी आन्दोलन – जीतेश कुमार	121

निश्चय ही मानसिक झंझावातों से गुजरती है, तब जाकर वह ऐसे निर्णय पर पहुंचती है। जहीर कुरैशी भारतीय नारी की इस मानसिकता को इस तरह अभिव्यक्ति प्रदान करते है, कि –

"जब भी औरत ने अपनी सीमा रेखा को पार किया
पार–गमन से पहले, खुद को कितने दिन तैयार किया" [7]

स्त्री का पार–गमन केवल बेमेल विवाह का परिणाम नहीं है, कई अन्य कारण भी है जो ऐसी स्थिति के लिए जिम्मेदार है। समाज में ऐसी विकट परिस्थितियां भी है जहां दो रोटी के जुगाड़ के लिए स्त्रियां अपना शरीर तक गिरवी रख देती है। समकालीन हिन्दी गज़ल के सशक्त हस्ताक्षर अदम गोंडवी लिखते है कि –

"कोई भी सिरफिरा धमका के जब चाहे जिना कर ले/हमारा मुल्क इस माने में बुधुआ की लुगाई है/रोटी कितनी महंगी है ये वो औरत बतायेगी/जिसने जिस्म गिरवी रख के ये कीमत चुकाई है" [8]

वैश्यावृत्ति आज भी इस देश की गौरवाशाली संस्कृति पर धब्बा है। उत्तर आधुनिकतावादी सोच ने इस विकृत मानसिकता को और बढ़ावा ही दिया। समकालीन हिन्दी गज़लकारों ने नारीवाद से जुड़े इस अहम् यथार्थ पर भी अपनी लेखनी चलाई। इसी सिलसिले को आगे बढ़ाते हुए ऋषिवंश लिखते है कि –

"वहां बाजार उम्दा थे चमचमाती हुई सड़के/कुतुबमीनार के पीछे लड़कियॉ धन्धा कर आई/कई बूढ़ो का कमसिन देह का कुछ ऐसा चस्का था/कि कस्बों गांवों से मासूम पेशे में उतर आई" [9]

जहीर कुरेशी लिखते है –

"रूप लुटता था, रूप लुटता है/लूट का सिलसिला पुराना है/आज के युग में 'कॉलगर्ल' सही/तन का पेशा बड़ा पुराना है" [10]

समाज का भोगवादी दृष्टिकोण औरत को सिर्फ जिस्म ही नहीं बल्कि जिन्स (वस्तु) भी समझता आया है। उसकी खरीद–फरोख्त का इतिहास भी मानव इतिहास जितना ही पुराना है। इसलिए चन्द्रसेन विराट लिखते है –

"कल शहर की मंडियों में बिक गई/वह किसी की प्रियतमा है दोस्तों/मां गरम खाना किये बैठी रही/पुत्र कोठों पर रमा है दोस्तों" [11]

"उपभोक्तावाद और नारी अस्मिता के प्रश्न" शीर्षक आलेख में डॉ. वीरेन्द्र सिंह लिखते है कि "सामंतीय पूंजीवाद में फैशन कुछ लोगो का कर्म था पर भोगवादी पूंजीवाद में वह वर्ग–विशेष का श्रृंगार–प्रसाधन बना, जो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आदि के द्वारा छनकर पूरे समाज को 'देह' की गिरफ्त में लाता जा रहा है। औरत का शरीर फैशन का वाहक है। औरत फैशन में आकर अपने–आपसे अजनबी बन जाती है।" [12] आज का युवा वर्ग फैशन की चपेट में है। सौन्दर्य प्रसाधनों के एक बड़े बाजार की दृष्टि इन युवाओं, विशेष रूप से युवा स्त्रियों पर है। अपनी फैशन परस्ती के चलते आज स्त्रियां जहां 'केटवॉक' में थिरक रही है वही दूसरी ओर विज्ञापनों की चकाचौंध में अपना मानसिक सन्तुलन खो देह–प्रदर्शन कर रही है। शायद इसीलिए समकालीन

हिन्दी गज़ल में प्रारम्भ से ही स्त्री–विमर्श की सशक्त अभिव्यक्ति दिखलाई देती है। नारी शोषण एवं अत्याचार को जिस संवेदना के साथ हिन्दी गज़ल ने अभिव्यक्त किया वह दर्शनीय है। भारतीय नारीवाद के परम्परागत संघर्ष के उस इतिहास को जहीर कुरैशी ने आसानी से एक गज़ल में प्रस्तुत कर दिया जिसे प्रस्तुत करने में कथा साहित्य को एक विस्तृत फलक की आवश्यकता होती है। इस संवेदना को जहीर कुरैशी ने अपनी एक गज़ल में कुछ इस तरह अभिव्यक्त किया –

"क्या कहे अखबार वालो से व्यथा औरत
यौन शोषण की युगो लंबी कथा औरत
कल सती होकर जली थी, आज पति के हाथ
बन गई जीवित जलाने की प्रथा औरत" [2]

प्रसिद्ध नारीवादी लेखिका "सिमोनद बोआ" ने नारी की स्थिति को स्पष्ट करते हुए अपनी पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' में लिखा है " औरत को औरत होना सिखाया जाता है। औरत बनी रहने के अनुकूल बनाया जाता है।" [3] इसी कथ्य को गज़लकार ए.एफ. नजर अपनी गज़ल में शेर बनाकर इस तरह प्रस्तुत करते है –

"उसे किरदार इस दुनियां में औरत का निभाना है
हजारों जुल्म सहने है मगर फिर मुस्कुराना है"
छुपाने है उसे ससुराल के जुल्मो सितम सारे,
जो मैके को खुशी बख्शे वही किस्सा सुनाना है" [4]

भारतीय समाज स्त्रियों को समान अधिकार देने का दावा तो करता है लेकिन व्यवहार में ऐसा दिखलाई नहीं देता। नारी आज भी अपनी मुक्ति का संघर्ष कर रही है। इसी सिलसिले को जहीर कुरैशी अपनी गज़ल के शेर में यूं अभिव्यक्त करते है –

"आपने पत्नी को सारे सुख बराबर के दिए
किन्तु मिल सकती नहीं उसको बराबर की जगह" [5]

समाज में आज भी औरत को बराबरी का दर्जा नहीं मिला। समाज में नारी के कर्त्तव्यों का बखान सब करते है लेकिन जब उसे अधिकार देने की बात आती है तो सब पीछे हट जाते है। समकालीन हिन्दी गजल में भारतीय समाज में जारी अनमेल विवाह पर भी अपनी चिन्ता जाहिर की है। समाज के धनशाली तथा बलशाली वयोवृद्ध अपने धन–बल के जोर पर समाज की गरीब लड़कियों से विवाह कर लेते है। ऐसी अनमेल शादियों का दंश स्त्रियों को झेलना पड़ता है तब जहीर कुरैशी लिखते है, कि –

"उम्र के साथ थकी देह, हुआ मन बूढ़ा/मन के पश्चात् हुआ व्यक्ति का चिन्तन बूढ़ा/उस सुहागिन की व्यथा आप भला क्या समझे/जिसके तपते हुए यौवन को मिला तन बूढ़ा।" [6]

अनमेल विवाह के परिणाम एक नारी के जीवन के कहां तक प्रभावित करते है यह सामाजिकों से छुपा नहीं है रीति–रिवाजों से बंधी भारतीय नारी भी ऐसे विवाहों के परिणामस्वरूप ही संस्कारों की लक्ष्मण रेखा लांघने का साहस जुटाती है। इसके लिए

निश्चय ही मानसिक झंझावातों से गुजरती है, तब जाकर वह ऐसे निर्णय पर पहुंचती है। जहीर कुरैशी भारतीय नारी की इस मानसिकता को इस तरह अभिव्यक्ति प्रदान करते है, कि –

"जब भी औरत ने अपनी सीमा रेखा को पार किया
पार–गमन से पहले, खुद को कितने दिन तैयार किया" [7]

स्त्री का पार–गमन केवल बेमेल विवाह का परिणाम नहीं है, कई अन्य कारण भी है जो ऐसी स्थिति के लिए जिम्मेदार है। समाज में ऐसी विकट परिस्थितियां भी है जहां दो रोटी के जुगाड़ के लिए स्त्रियां अपना शरीर तक गिरवी रख देती है। समकालीन हिन्दी गज़ल के सशक्त हस्ताक्षर अदम गोंडवी लिखते है कि –

"कोई भी सिरफिरा धमका के जब चाहे जिना कर ले/हमारा मुल्क इस माने में बुधुआ की लुगाई है/रोटी कितनी महंगी है ये वो औरत बतायेगी/जिसने जिस्म गिरवी रख के ये कीमत चुकाई है" [8]

वैश्यावृत्ति आज भी इस देश की गौरवाशाली संस्कृति पर धब्बा है। उत्तर आधुनिकतावादी सोच ने इस विकृत मानसिकता को और बढ़ावा ही दिया। समकालीन हिन्दी गज़लकारों ने नारीवाद से जुड़े इस अहम् यथार्थ पर भी अपनी लेखनी चलाई। इसी सिलसिले को आगे बढ़ाते हुए ऋषिवंश लिखते है कि –

"वहां बाजार उम्दा थे चमचमाती हुई सड़के/कुतुबमीनार के पीछे लड़कियॉ धन्धा कर आई/कई बूढ़ो का कमसिन देह का कुछ ऐसा चस्का था/कि कस्बों गांवों से मासूम पेशे में उतर आई" [9]

जहीर कुरेशी लिखते है –

"रूप लुटता था, रूप लुटता है/लूट का सिलसिला पुराना है/आज के युग में 'कॉलगर्ल' सही/तन का पेशा बड़ा पुराना है" [10]

समाज का भोगवादी दृष्टिकोण औरत को सिर्फ जिस्म ही नहीं बल्कि जिन्स (वस्तु) भी समझता आया है। उसकी खरीद–फरोख्त का इतिहास भी मानव इतिहास जितना ही पुराना है। इसलिए चन्द्रसेन विराट लिखते है –

"कल शहर की मंडियों में बिक गई/वह किसी की प्रियतमा है दोस्तों/मां गरम खाना किये बैठी रही/पुत्र कोठों पर रमा है दोस्तों" [11]

"उपभोक्तावाद और नारी अस्मिता के प्रश्न" शीर्षक आलेख में डॉ. वीरेन्द्र सिंह लिखते है कि "सामंतीय पूंजीवाद में फैशन कुछ लोगो का कर्म था पर भोगवादी पूंजीवाद में वह वर्ग–विशेष का श्रृंगार–प्रसाधन बना, जो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आदि के द्वारा छनकर पूरे समाज को 'देह' की गिरफ्त में लाता जा रहा है। औरत का शरीर फैशन का वाहक है। औरत फैशन में आकर अपने–आपसे अजनबी बन जाती है।" [12] आज का युवा वर्ग फैशन की चपेट में है। सौन्दर्य प्रसाधनों के एक बड़े बाजार की दृष्टि इन युवाओं, विशेष रूप से युवा स्त्रियों पर है। अपनी फैशन परस्ती के चलते आज स्त्रियां जहां 'केटवॉक' में थिरक रही है वही दूसरी ओर विज्ञापनों की चकाचौंध में अपना मानसिक सन्तुलन खो देह–प्रदर्शन कर रही है। शायद इसीलिए समकालीन

गज़लकार कहता है –

"घूंघट–चूनर –शाल–दुपट्टा लाज शर्म था जिनका गहना
फैशन शो में नाच रही उन आम लड़कियों पर चर्चा हो" [13]

इसी कथ्य को जहीर कुरैशी कुछ इस तरहा अभिव्यक्त करते है –

"अतिपारदर्शी वस्त्रों की फैशन परेड में
हाथों से तन छिपाना जरूरी नहीं लगा" [14]

नारीवादी विमर्श से जुड़ी एक समस्या महिला अत्याचार एवं उत्पीड़न की भी है। महिला अत्याचार के अनेक कारणों में से एक प्रमुख कारण दहेज प्रथा भी है जिसके भीषण परिणाम आज भी समाज भुगत रहा है। कन्याभ्रूण हत्या जैसी विकराल समस्या का उद्‌भव भी इसी के भीतर कहीं गहरे पेठे हुए है। दहेज विरोधी कानूनों के बावजूद भी यह प्रथा जारी है। समकालीन हिन्दी गज़ल में दहेज प्रथा से जुड़ी सभी समस्याओं पर चिन्तन किया गया है। दहेज न लाने के कारण वधु को जीवित जलाने पर चन्द्रसेन विराट लिखते है कि –

"पाया नहीं दहेज तो जला दी गई बहू/हंसते है हैवान कि अपना देश यही/फांसी पर लटकी खुद क्वांरी कन्याएं/दे दहेज प्रतिदान कि अपना देश यही।" [15]

इसी क्रम में तुफैल चतुर्वेदी लिखते है –

"अच्छा दहेज दे न सका मैं बस इसलिए
दुनियां में जितने ऐब थे बेटी में आ गए" [16]

राजगोपाल सिंह लिखते है –

"अपने बूढे बाप का दुःख जानती है बेटियां
इसलिए मरकर भी जी लेती है वो ससुराल में" [17]

ऐसा नहीं कि समकालीन हिन्दी गज़ल का नारी–विमर्श एक तरफा हो, अर्थात केवल नारी के पीड़ित रूप का चित्रण ही उसमें किया गया हो। समकालीन हिन्दी गज़लकार नारी के साहसिक संघर्ष की गाथा भी रचता है। दहेज मांगने वालों से शादी की मनाही करने वाली नारी का चित्रण भी यहां देखने को मिलता है –

"सुन दहेज की बात, कहा बेटी ने उठकर/नहीं चाहिये दूल्हे के मिस एक लुटेरा/घरवाले, बाराती, सब के सब हैरत में/रहे देखते लड़की का उत्साही चेहरा" [18]

उत्तर आधुनिक मानसिकता ने कन्याभ्रूण परीक्षण की समस्या को भी जन्म दिया जिसके भयानक परिणाम आज लैंगिक विषमता के रूप में समाज भुगत रहा है। इस ज्वलंत समस्या का चित्रण भी समकालीन हिन्दी गज़ल में हुआ है। जहीर कुरैशी लिंग निर्धारण की समस्या पर कुछ इस तरह से लिखते है –

"लिंग निर्धारण समस्या हो गई/कोख में ही कत्ल कन्या हो गई/लोग कर पाये नहीं खुलकर विरोध/सिर्फ अखबारों में निंदा हो गई" [19]

वस्तुतः 'कन्याभ्रूण हत्या' में शामिल तथाकथित सभ्य समाज की विकृत मानसिकता को नकारा नहीं जा सकता। अखबार और मीडिया भी खुलकर इसका विरोध नहीं कर पाते। प्रगति के साथ–साथ पतन की इसी दास्तां को नित्यानंद तुषार गज़ल में इस तरह अनुभव करते है –

''तरक्की की बुलंदी या पतन की इंतिहा है ये/करा के टेस्ट खुद बेटियों को मार देते है।'' [20]

समकालीन काव्य की एक विशेषता यह भी है, कि प्राचीन काव्यों को भी नये विमर्शो की कसौटी पर परखती है। यही कारण है कि कई प्राचीन सन्दर्भ अब नये विमर्शो में व्याख्यायित हो रहे है। पौराणिक सन्दर्भो से आज के विमर्शो को जोड़ते हुए डॉ. बालगोविन्द द्विवेदी कहते है, कि –

''दशानन के लिए नित स्वर्ण–मृग–मारीचि बनते है/ठगी जाती सरल सीता, कहीं कुछ भी नहीं बदला/ठगे देवेन्द्र नारी को, विषय का विषम विष पीकर/अहल्या हो रही पाषाण नित कुछ भी नहीं बदला।'' [21]

इसी तरह से –

''जानकी! इस बार रावण को पुनः/भीख लक्ष्मण–रेख के बाहर न दो।'' [22]

आधुनिकता के परिणामस्वरूप जब स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार हुआ तो वह घर की चहारदीवारी को लांघ कर परिवार की अर्थव्यवस्था में हाथ बंटाने लगी। आर्थिक आत्मनिरर्भता स्त्रीवाद का लोकप्रिय नारा है। आत्मनिरर्भता प्राप्त करने की जिद में स्त्रियां आज सभी क्षैत्रों में अपना नाम रोशन कर रही है। उसने यह स्थान अपनी योग्यता से हासिल किया है इसीलिए चन्द्रसेन विराट लिखते है कि –

''श्रम राजनीति कि सैन्य शासन, यान्त्रिकी सेवा/खुद साथ नर के कर रही सहकार है नारी/कर्त्तव्य पालन कर रही हो तो तुम्हे निश्चित/हर एक सही अधिकार का अधिकार है नारी।'' [23]

आज की कामकाजी स्त्रियां अपने साहस के बल पर प्रगति के नित नये आयाम स्थापित कर रही है इसीलिए समकालीन गज़लकार कहता है कि–

''उड़ चली तितलियां घरों से कामकाजी औरते/नापती आकाश परों से कामकाजी औरते।''

दिनभग ऑफिस में कार्य करने वाली स्त्रियां अपने घर की जिम्मेदारियों का निर्वहन भी उतनी ही लगन से करती है। गज़लकार ए.एफ. नजर स्त्री की इसी मानसिकता को कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त करते है –

''चूल्हा चौका फाइल बच्चे/दिनभर उलझी रहती है/वो घर में और दफ्तर में अब/आधी–आधी रहती है।'' [24]

इस प्रकार हम कह सकते है, कि हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं के साथ – साथ हिन्दी गज़ल में भी समकालीन विमर्शो की प्रतिध्वनियां सुनाई देती है। कई महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय शेर समकालीन गज़लकारों ने नारी–विमर्श के सन्दर्भ में

कहे। नारी पर होने वाले अत्याचार, देह–शोषण, लैंगिक शोषण, स्त्री–अस्मिता, दहेजप्रथा, फैशन, बाजारवाद का प्रभाव आदि सभी विषयवस्तु को अपनी गज़लों का कथ्य बनाती हुई आज की गज़ल निश्चित सफलता के जिस मुकाम पर है, वह उसका अपना बनाया हुआ है।

– व्याख्याता हिन्दी, व्याख्याता राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय, बारां

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पत्र–पत्रिकाऐं :–

1. जहीर कुरैशी : महत्व और मूल्यांकन सं0 डॉ. विनय मिश्र, उवशीयम, प्रकाशन दिल्ली पृ. 291
2. चांदनी का दुःख, जहीर कुरैशी, पराग प्रकाशन दिल्ली पृ. 35
3. स्त्री उपेक्षिता, प्रभा खेतान
4. पहल, ए.एफ. नजर, बोधि प्रकाशन जयपुर पृ. 63
5. पेड़ तनकर भी नहीं टूटा, जहीर कुरैशी, अयन प्रकाशन नई दिल्ली पृ. 4
6. जहीर कुरैशी की चुनिन्दा गज़लें, डॉ. मधु खराटे, विद्या प्रकाशन कानपुर, पृ. 73
7. समन्दर ब्याहने आया नहीं, जहीर कुरैशी, अयन प्रकाशन नई दिल्ली पृ. 11
8. समय से मुठभेड, अदम गोंडवी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली पृ. 64
9. सुर बहार, ऋषिवंश, नमन प्रकाशन नई दिल्ली पृ. 82
10. चांदनी का दुख, जहीर कुरैशी, पृ. 44
11. धार के विपरीत, चन्द्रसेन विराट, चित्रलेखा प्रकाशन इलाहाबाद पृ. 86
12. संचेतना पत्रिका, सितम्बर से दिसम्बर 1996 डॉ. वीरेन्द्र सिंह
13. मैं सदियों की प्यास, नरेश शांडिल्य, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली पृ. 34
14. पेड़ तनकर भी नहीं टूटा, जहीर कुरैशी, अयन प्रकाशन नई दिल्ली पृ. 103
15. न्याय कर मेरे समय, चन्द्रसेन विराट, समान्तर प्रकाशन शाजांपुर, (उ0प्र0) पृ. 63
16. सारे बरक तुम्हारे, तुफेल चतुर्वेदी, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली पृ.
17. खुशबूओं की यात्रा, राजगोपाल सिंह, अयन प्रकाशन महरौली नई दिल्ली
18. अकेला हूँ मगर तन्हा नहीं हूं, मधुप शर्मा, भास्कर पब्लिकेशन कानपुर
19. भीड़ में सबसे अलग, जहीर कुरैशी मेघा बुक्स न्यू शाहदरा दिल्ली पृ. 41
20. दूरियों के दिन, नित्यानन्द तुषार, अयन प्रकाशन महरौली नई दिल्ली
21. यथार्थ की सिरहन, डॉ. बालगोविन्द द्विवेदी, मीमान्सा प्रकाशन, कानपुर पृ. 58
22. धार के विपरीत, चन्द्रसेन विराट, चित्रलेखा प्रकाशन इलाहाबाद पृ. 118
23. हमने कठिन समय देखा है, चन्द्रसेन विराट, दिशा प्रकाशन त्रिनगर दिल्ली पृ. 67
24. पहल, ए.एफ. नजर, बोधि प्रकाशन जयपुर पृ. 15

• • •

मूल्य : 60 रुपए

वर्ष 3 अंक 2-3 अप्रैल-सितंबर 2017 ISSN 2454-3330

समहुत

साहित्यिक सरोकारों का साझा मंच

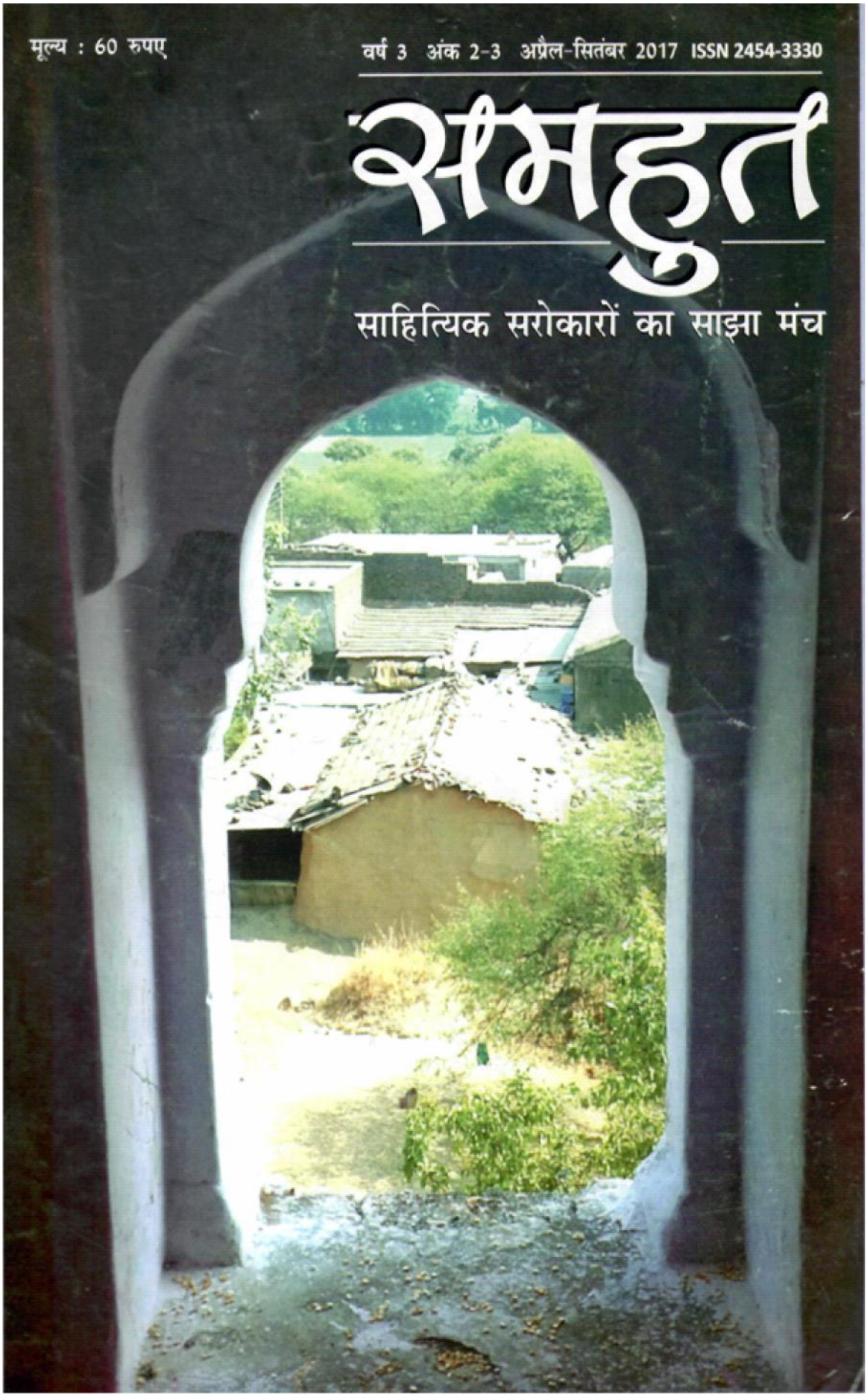

समहुत

साहित्यिक सरोकारों का साझा मंच

वर्ष 3 अंक 2-3 अप्रैल-सितंबर 2017

संपादक

डॉ. अमरेंद्र मिश्र

संपादकीय संपर्क एवं रचनाएं भेजने का पता

'मौसम' 4/516, पार्क एवेन्यू,
वैशाली, गाजियाबाद-201010
मो.: 09873525152
ई-मेल : samhutpatrika@gmail.com

कला-सज्जा

लिटिल बर्ड

4637/20, हरि सदन, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-2
मो.: 09911866239

मुद्रक

प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स

ए-21, झिलमिल, इंडस्ट्रियल एरिया,
शाहदरा, दिल्ली-110095
फोनः 011-22582847

मूल्य	:	*रु 30/- (एक प्रति)*
वार्षिक	:	*रु 120/-*
त्रैवार्षिक	:	*रु 360/-*
पांच-वर्ष	:	*रु 600/-*
आजीवन	:	*रु 5000/-*

(यह अंक रु 60/-)

संस्थाओं के लिए

वार्षिक	:	*रु 240/-*
आजीवन	:	*रु 7000/-*

शुल्क मनीआर्डर, चैक, बैंक ड्राफ्ट से संपादकीय पते पर भिजवाएं। दिल्ली से बाहर का चैक भेजने की स्थिति में रु 40/- अतिरिक्त जोड़ें।

आमुख : **बंशीलाल परमार**, मो.: 09926494975
रेखाचित्र : **विज्ञानव्रत**, मो.: 09810224571

अनुक्रम

1. **संस्मरण**
   1. विष्णु प्रभाकर का रचनाकार / प्रकाश मनु — 5
   2. गोशे–गोशे में सुलगती है चिताःकैफ ी आज़मी/इन्द्रजीत सिंह — 15
   3. चंद्रधर शर्मा गुलेरी/शैलेन्द्र चौहान — 18
   4. दूसरों के लिए जीने वाला व्यक्ति/रूपसिंह चंदेल — 20
2. **बातचीत**
   5. रामदरश मिश्र के साथ गीता शुक्ला की बातचीत — 23
      (रामदरश मिश्र की सात गज़लें, पृष्ठ-23-27)
   6. प्रबोध कुमार गोविल से आकाश राणावत का साक्षात्कार — 28
3. **डायरी - अंश**
   7. सागर की लहरें/रुचि भल्ला — 31
4. **कहानी - खंड**
   8. राईट नंबर : रॉंग नंबर/सूरज प्रकाश — 34
   9. पिछली घास/दीपक शर्मा — 41
   10. बिना तेल का पुरजा/नंदकिशोर बर्वे — 45
   11. नरम छांव/छाया सिंह — 49
   12. उस चेहरे की तलाश/जितेंद्र निर्मोही — 52
   13. पुनर्नवा/सुवंश ठाकुर 'अकेला' — 54
   14. काले की शादी/योगेंद्र शर्मा — 58
5. **लघुकथाएं**
   15. दो लघुकथाएं/पश्चाताप/गवाही/संतोष खरे — 64
   16. चार लघु कथाएं/दर्द की दवा/और हो गया त्यौहार/मेरा क्या होगा/गलती कहां/केशव शुक्ला — 65
6. **व्यंग्य**
   17. फ ोटो खिंचवाने की कला/संतोष खरे — 68
   18. बाबूलाल का जीव/वीरेंद्र सरल — 70
7. **उपन्यास - अंश**
   19. पहली फुहार/उषा यादव — 73
8. **विविध**
   20. कबीर केंद्रित लघुनाटक : एकांकी, रेडियो सूचक/वेद प्रकाश अमिताभ — 77
   21. लोक वार्ताः शिष्ट डोगरी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में/प्रकाश प्रेमी — 80
9. **कविताएं/ग़ज़ल/दोहे**
   22. छह कविताएं/ध्रुव गुप्त — 84
   23. पाँच कविताएं/नीलोत्पल रमेश — 87
   24. चार कविताएं/उमेश चरपे — 92

25. पांच कविताएं/कृष्ण सुकुमार 94
26. लड़ोगे तम से/योगेश चंद्र शर्मा 96
27. संकल्प और साहस/केशव शरण 97
28. दो ग़ज़लें/अशोक अंजुम 98
29. दो ग़ज़लें/मधुकर अष्ठाना 99
30. चार ग़ज़लें/मधुर नज़्मी 100
31. पांच ग़ज़लें/विकास 102
32. दोहा/मौसम/मधु प्रसाद 103
33. दोहे/राजपाल सिंह गुलिया 104
34. गीत-लय/आशा गुप्ता 105

10. किताबें
35. रंगानुभूति के उद्घाटन की पहल/लव कुमार 106
36. सहरा के फूल/रामावतार सागर 108
37. छंद नहीं छोड़ूंगा/महेश दुबे 110

11. साहित्य समाचार 112

रचनाकारों से

- रचनाकारों से अनुरोध है कि रचनाएँ फुलस्केप कागज पर टंकित करवाकर ही भिजवाएँ। या samhutpatrika@gmail.com पर मेल करे। कृपया सुनिश्चित करें कि रचना शिवा-मीडियम फांट में टाइप हो जो हमारे लिए जरूरी है। प्रत्येक रचना पर नाम/पता/साफ-साफ लिखें।
- रचना के मौलिक एवं अप्रकाशित होने संबंधी प्रमाण-पत्र अवश्य भेजें।
- यदि रचना किसी अन्य भाषा से हिंदी में अनुवाद की गई हो तो कृपया मूल रचनाकार का अनुमति पत्र भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजने का नियम नहीं है। रचनाएँ उसी स्थिति में वापस भिजवाई जाएँगी जब उनके साथ टिकट एवं पता लिखा लिफाफा संलग्न होगा। पूर्व स्वीकृत रचना को पुनः न भेजें।
- 'समहुत' में 'पुस्तक-समीक्षा' हेतु लेखकों/प्रकाशकों द्वारा सद्यः प्रकाशित महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की दो प्रतियाँ भिजवाई जाएँ। पुस्तक की समीक्षा करवाने का दायित्व हमारा है।
- संपादक को किसी-भी रचना को प्रकाशित करने, न करने अथवा उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन करने का पूरा अधिकार है।
- रचनाकारों से निवेदन है कि कृपया रचना के साथ संक्षिप्त आत्म परिचय, फोटो और मोबाइल नं. भी भिजवाएं। रचना की प्राप्ति, स्वीकृति के विषय में साधारणतया फोन न करें और एस.एम.एस. या वाट्सएप के माध्यम से संवाद करें।

'समहुत' नए-पुराने रचनाकारों के साहित्यिक सरोकारों का साझा मंच

प्रकाशन, संपादन और अन्य साहित्यिक अवदान अवैतनिक

पत्रिका में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के

संपादकीय सहमति जरूरी नहीं।

(किसी भी प्रकार के विवाद का निपटारा स्थानीय न्यायिक परिक्षेत्र के अंतर्गत)

अगर विमर्शों के दृष्टिकोण से इस संग्रह की गजलों की समीक्षा करें तो वर्तमान प्रचलित सभी विमर्श कमोबेश इस संग्रह में दिखलायी देते हैं। स्त्री विमर्श दलित विमर्श बाजार के साथ-साथ वृद्ध विमर्श भी उनके यहाँ दिखलायी पड़ता है। स्त्री विमर्श के लगभग सभी रूप इनकी ग़ज़लों में समाहित हैं चाहे बेटी को बचाने की चिंता हो या कामकाजी स्त्रियों का दर्द या फिर गृहणी के प्रति संजीदा नजरिया है, संवेदनाओं से लवरेज भावनाओं से पुष्ट एक ऐसा ही संजीदा संग्रह है

"मेरे आने की तारीखें बराबर दिखती होगी
वो हरशब सोने से पहले कलेण्डर देखती होगी।
सवेरे रोज अपने वक्त पर स्कूल जाती है।
अगर खुद को हमेशा घर अन्दर भूल जाती है।
मेरे कपड़े किताब कॉपियां बस्ता मेरा खाना।
इन्हीं कामों में अम्मा खुद को अक्सर भूल जाती है।"

संग्रह की ग़ज़लें जनवादी चेतना से भी ओत-प्रोत हैं दलित हो चाहे हम आदमी की चिंता आप चाहे तो इसे विमर्श का नाम दे सकते हैं लेकिन इन सबके बीच इंसानियत को बचाने की चिंता नजर साहब करते हैं। आजादी के इतने सालों बाद भी अगर देश में गरीबी है तो वे लिखते हैं-

"सहर होने का दावा झूठ है सरकार से कह दो।
अभी तक रोशनी मजदूर के घर तक नहीं पहुँची।"

आज भी गरीबी मिटाने की योजना पाँच सितारा होटलों में बैठकर बनाई जाती है। गरीबों के वास्तविक हालातों में रुबरु होकर कोई दिखता नहीं है। आज आधी से ज्यादा सदी बीत गयी आजाद हुए, लेकिन सरकार के दावे झूठे दिखलाई देते हैं।

"कहाँ तक सब्र रक्खें बेबसों लाचार की आँखें।
ये किन मुद्दों में उलझी हैं मेरी सरकार की आँखें।"

इक्कीसवीं सदी भूमण्डलीकरण और बाजारवाद की है। आज सारा विश्व अमेरिकी पूँजीवाद से पीड़ित है। मुक्त व्यापार के दौर में आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हमारे घरेलू बाजारों को प्रभावित कर रही हैं। एक डर आदमी के भीतर समाया जाता है। आज बाजार की पहुँच सीधे हमारे घर तक हो गई है इसलिए वे लिखते हैं कि-

"डरके मैं बाजार से जब यार घर में आ गया
मेरे पीछे-पीछे सब बाजार घर में आ गया।"

जैसे-जैसे जीवन में तकनीकी विकास का प्रवेश बढ़ता जा रहा है, आम आदमी का जीना मुश्किल होता जा रहा है। वैश्वीकरण के कारण लगातार महानगरों की संख्या बढ़ती जा रही है तो जीवन में भी दशहत बढ़ती जा रही है।

"तरक्की ने अजब हालात पैदा कर दिये या रब।
नगर बढ़ता है जैसे-जैसे दहशत बढ़ती जाती है।"

नजर शाहब की शायरी में वृद्ध विमर्श की एक खास झलक दिखाई देती है कई जगह प्रतीकों के माध्यम से तो कई बार सीधे ही माँ और बुजुर्गों के हवाले से बड़े खूबसूरत शेर कहते हैं मसलन-

"बुजुर्गों का अदब रखती है गाँवों नजर अब भी। बड़ों के सामने झुक जाते हैं छोटों के सर अब भी।" माँ के हवाले से भी कई *उम्दा शेर नजर ने इस संग्रह की गजलों में कहे हैं।*

बहरहाल 'सहरा के फूल' ए.एफ. नजर की लेखनी से सृजित एक बेजोड़ संग्रह है। कथ्य की दृष्टि से जहाँ इसमें काफी विविधता है, वही शिल्प की दृष्टि से देखें तो भी यह संग्रह सुदृढ़ नजर आता है।

बादल, बरगद, समुद्र, घटा, हवा, चांद सूरज आदि प्रतीकों के माध्यम से नजर साहब ने बहुत उम्दा शेर कहे है। गजल के छन्द शास्त्र की दृष्टि से देखें तो भी गजल संग्रह दुरुस्त नजर आता है अगर कहीं टंकण की छोटी मोटी कमी है तो वह प्रूफ रीडिंग की है। ग़ज़ल के चाहने वालों को एक किताब जरूर पसन्द आयेगी। □

मो. 9414317171

❖ ❖ ❖

सहरा के फूल (ग़ज़ल संग्रह) / ए.एफ. नजर / प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर / एफ-77 / सेक्टर-9 रोड नं.-11 कतरतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया बाईस गोदाम / जयपुर-302006